बघेली साहित्य का इतिहास

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद

बघेली साहित्य
का
इतिहास

डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी

बघेली साहित्य का इतिहास

लेखक

डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी

संपादक

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

प्रकाशन सहयोग

आनंद सिन्हा

श्रवण कुमार शर्मा

रामनिवास झा

साहित्य अकादमी

मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

प्रकाशक : **साहित्य अकादमी**
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, बाणगंगा,
भोपाल-462003 (म.प्र.)
फोन : 0755-2554782 फैक्स : 2557942
Website : www.mpculture.in
E-mail : sahitya_academy@yahoo.com

प्रकाशन वर्ष : 2011

© स्वत्वाधिकार : साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल

आवरण : मध्यप्रदेश माध्यम

मूल्य : 190/- (रुपये एक सौ नब्बे) मात्र

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम
अरेरा हिल्स, भोपाल

- पुस्तक से संबंधित सभी विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल होगा।
- पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है। आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हो।

लक्ष्मीकांत शर्मा
मंत्री
उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं
कौशल विकास, संस्कृति, जनसम्पर्क,
धार्मिक न्यास और धर्मस्व
मध्यप्रदेश

निवास : बी-11 स्वामी दयानंद
नगर (74 बंगला), भोपाल
मंत्रालय : (0755) 2441128
दूरभाष { निवास : 2441695
फैक्स : 2761585
विधानसभा : (0755) 2523162
पत्र क्र. 135
भोपाल, दिनांक 08.07.2011

आह्वान

विंध्य प्रदेश का प्राचीन नाम 'डाहल' और 'चेदि' था। विंध्य प्रदेश दो प्राचीन जनपदों को मिलाकर बना है - जिनमें वत्स जनपद को आज हम बघेलखंड के रूप में और चेदि जनपद को बुन्देलखंड के रूप में जानते हैं। बघेलखंड में गुर्गी और कलचुरियों का कला साधना बनी, जैसे कि चंदेलों की खजुराहो। विंध्य भूमि में कला और साहित्य के क्षेत्र में ऐसे अनेक महारथी हुए हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी से वहाँ की सारस्वत परंपरा को पुरस्सर किया है।

डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी द्वारा रचित **'बघेली साहित्य का इतिहास'** नामक इस पुस्तक में बघेली भाषा में जिन रचनाकारों ने विपुल साहित्य की सर्जना की है- उनके स्मरणीय अंश समाहित हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि साहित्य अकादमी ने इस आह्वान को सुना है और इस दिशा में आवश्यक पहल की है। लेखक डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी की कृति **'बघेली साहित्य का इतिहास'** बघेली भाषा की महत्वपूर्ण धरोहर है।

मैं इसके लिए लेखक को हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

(लक्ष्मीकांत शर्मा)

साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

समर्पण

गार्गी-मैत्रेयी वैदिक नारियों के समान उन लोकमाताओं को, जिन्होंने लोरी गीत दिए हैं, कजरी, हिंदुली, देवीगीत, बम्मभोलिया, तथा ऋतुगीतों की जन्मदात्री हैं। अनाम-अपरिचित लोक-ऋषियों को, जिन्होंने कहानी-किस्सा, उक्खान, तथा नीति वचनों की सर्जना की है। खेतिहर मजदूर, किसान, जंगलों में गाय-बकरी चराते, बघेली गीतों को गाते हुए चरवाहे, जो अपनी बोली की अस्मिता को बचाए हुए हैं। बघेली साहित्य के रचनाकारों, विद्वान-चिंतकों, समाज से मुठभेड़ करने वालों, और अपनी बोली से प्यार करने वालों को याद करता हूँ और सबकी पहुनई करते हुए पइलगी करता हूँ।

- लेखक

संपादकीय

बघेली पूर्वी हिंदी की एक ऐसी बोली है, जिसे प्रारंभ में विद्वान अवधी के अंतर्गत ही मानते हैं। बाद में पूर्वी हिंदी की तीन बोलियाँ स्वीकार की गईं- अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। बघेलखण्ड भू-भाग में बोली जाने वाली इस बोली में अनेक गौरव ग्रंथों की रचना हुई है। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत सशक्त है। इस बोली-क्षेत्र के प्रमुख रचनाकार हैं- रीवा नरेश, विश्वनाथ सिंह, रघुराज सिंह, पं. हरिदास, बैद्यनाथ पाण्डेय 'बैजू', सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', रामदास पयासी, शंभु प्रसाद द्विवेदी 'काकू', डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, गोमती प्रसाद 'विकल', प्रो. आदित्य प्रताप सिंह, कालिका प्रसाद त्रिपाठी, डॉ. अमोल बटरोही, रामलखन शर्मा 'निर्मल', डॉ. कैलाश तिवारी, भागवत प्रसाद पाठक, डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस', बाबूलाल दाहिया, अंजनी सिंह सौरभ, सुदामा 'शरद' मैथिली शरण शुक्ल, 'मैथिली', रामप्रसाद तिवारी 'कविजी', सुदामा प्रसाद मिश्र, विजय सिंह परिहार, सनत सिंह बघेल, शिवशंकर मिश्र 'सरस', प्रमोद वत्स, रामरक्षा द्विवेदी 'शिशु', रामभद्र तिवारी 'भद्र', राजकुमार शर्मा 'राज', राजीवलोचन शर्मा 'राजीव', श्रुतिवंत प्रसाद 'विजन', रामाधार शुक्ल 'विद्रोही', डॉ. रामसिया शर्मा, चित्रेश चित्रांशी, सुधाकांत मिश्र 'बेलाला', डॉ. राधेश्याम साहू 'व्यथित', डॉ. प्रणय, रामसखा नामदेव, रामचन्द्र सोनी 'विरागी', अनूप अशेष, डॉ. रामगरीब पाण्डेय 'विकल', देवीशरण सिंह 'ग्रामीण', सम्पति कुमार सिंह, सुरेन्द्र द्विवेदी, डॉ. देवेन्द्र द्विवेदी 'देव', पं. रोहिणी प्रसाद मिश्र, शिवाकांत

त्रिपाठी, प्रहलाद दास त्रिपाठी 'प्रहलाद', धर्मेन्द्र कुमार मिश्र 'धर्म', रामलखन सिंह महगना, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद गुप्त 'बैकुंठपुरी', सुखई प्रसाद सोंधिया 'अटल', रामकुमार पाण्डेय 'अरथी', गंगा प्रसाद पाण्डेय, दयाराम गुप्त 'पथिक', धीरेन्द्र त्रिपाठी, रामनाथ सोनी 'अनाथ', बृजेश सिंह 'सरल' आदि।

इतनी समृद्ध बोली का इतिहास लिखा जाना एक अत्यंत दुरूह कार्य है। इसके प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर विद्वान लेखक डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी ने **बघेली साहित्य का इतिहास** लिखा है, वह अध्येताओं, शोधार्थियों और सुधी पाठकों के लिए अत्यंत उपयोगी है। अनेक सावधानियों के बावजूद यह संभव है कि इसमें कुछ कमियाँ रह गई हों। इसका परिहार अगले संस्करण में हो सकेगा। इस कृति के संबंध में पाठकों की प्रतिक्रियाओं का अकादमी स्वागत करेगी।

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल
निदेशक

बघेली साहित्य की बात

हमारी संस्कृति लोक-संस्कृति है। ऐसी संस्कृति जिस पर मानव जाति का अधिकार है। यह सलिला है। हमारे देवता लोक देवता हैं। उनका दायित्व समूचे संसार का पालन और रक्षण है। शिव को हमने लोकबंधु कहा है। सूर्य को लोक-लोचन, विष्णु को लोक-पालक, और ब्रह्मा को लोक-पति कहा है। सार्वभौमिकता की शिक्षा हमारे यहाँ सूर्य, पृथ्वी, आकाश, और हवा से ली गई है। यही कारण है कि यहां का गरीब आदमी भी अपनी दृष्टि में उदारमना है।

लेकिन, आज देखें कि वर्तमान में कौन से चेहरे हैं, जो ज्यादा उजागर हैं, जिनके हाथ में जनशक्ति है। जनशक्ति क्या लोकशक्ति है? सत्ता पर किसका कब्जा है? जातिवाद का..... धर्मवाद का..... क्षेत्रवाद का, या लोकवाद का? लोक-लोचन है कहीं? लोक संस्कृति है कहीं? राज है, नीति नहीं। अर्थ है, नीति नहीं। राजनीतिज्ञ, धार्मिक, सामाजिक संस्थाएं हैं, पर इसमें संस्कृति नहीं है। विज्ञान का जोर है, पर मशीनों तक। दृष्टि में अंधविश्वास है। दृष्टिहीन विज्ञान नाच रहा है। हिंसा होती है, मन नहीं दहलता। आंखों का पानी सूख गया है, हमारी आंखों से लोक नदारद है। लोक बना रहे, लोक साहित्य बना रहे, अपनी भाषा और साहित्य बना रहे, इसी का उपक्रम है - 'बघेली साहित्य का इतिहास'।

बघेली साहित्य के ज्ञात-अज्ञात रचनाकारों के शोध-सृजन का इतिहास लिखने की चिट्ठी जब साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल से मिली, तब मुझे लगा कि विंध्यांचल का एक शोध ऋषि अगस्त्य ने 'विनयशीलता' का किया था। विंध्य की ऊंचाई और दृढ़ता में सूर्य के रथ को रोकने की सामर्थ्य है, पर, विनम्रता है कि नहीं, इसका शोध करने अगस्त्य आए थे। विंध्य इस शोध

पर खरा उतरा। उसमें ऐसी लचकन, ऐसी विनम्रता, और विनय शीलता थी कि धरती से लिपट कर गुरु को प्रणाम किया।

दूसरा शोध त्रेता के राम ने किया। विंध्य की अपार शक्ति और तेजस्विता से परिचित राम, सवा बारह वर्ष तक शक्ति संचय कर, फिर उस प्राप्त शक्ति का पहला शोध-प्रयोग 'विराध' राक्षस पर किया, जो पूर्ण सफल रहा।

तीसरा शोध बाणभट्ट ने सोन-गोपदबनास के संगम-तट पर जन्म लेकर, प्रतिभा, रचना, और कविता का किया, और यह प्रयोग भी सफल रहा। 'कादम्बरी' साहित्य का प्राण-रस है।

और, अब एक शोध डॉ. देवेंद्र दीपक, निदेशक, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश ने बघेली साहित्य का इतिहास, ज्ञात-अज्ञात रचनाकारों की संचेतना, प्रतिभा, साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रभाव तथा संदेश-संप्रेषणीयता की संवाहिका का किया है। बघेली भाषा के काव्यकारों, नाटककारों एवं कहानीकारों की देश के आंचलिक साहित्य के मध्य बघेली साहित्य का गोत्र, एवं वंशधरता स्थापित करने, तथा अपने हक़ का सिंहासन प्राप्त करने की यह महत्वपूर्ण पहल है।

ऐसा नहीं है कि बघेली साहित्य को लोग जानते नहीं थे, परंतु, डॉ. देवेंद्र दीपक के इस बड़प्पन और बघेली साहित्य के प्रति उनके अपनत्व एवं दुलार को, और सबसे बड़ी बात यह कि बघेली साहित्य को अज्ञात से ख्याति की ओर ले चलने की दिशा में उनके इस अनुष्ठान को, विंध्यवासी सम्मान देते हैं, और उनके बड़प्पन को प्रणाम करते हैं। लेकिन निदेशक पद से डॉ. दीपक बिदा हो गये, और डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल का पदार्पण हुआ। गत का सम्मान करता हूं और आगत का स्वागत करता हूं। हिन्दी साहित्य के अप्रतिम तथा चर्चित हस्ताक्षर एवं संस्कृत के नदीष्ण विद्वान डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल, निदेशक, साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् का बघेली साहित्य के रचनाकार उपकार स्वीकारते हैं। उन्होंने समयावधि में बघेली साहित्य का इतिहास प्रकाशित कर सदाशयता की है।

अध्याय एक आठ खंडों में विभक्त है। बघेलखंड की पहचान, सिंहासन एवं सत्ता, संत परंपरा, लोक-कला एवं संस्कृति, लोक-साहित्य, जल-जंगल-जमीन और जीवन, साहित्यिक परंपरा एवं बघेली भाषा को रूपायित किया गया है।

एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूब गया है, या गलत समझ लिया गया है। लोक-सभ्यता, इस सभ्यता का वेद है। इस खंड में बघेलखंड की अहमियत के साथ यह भी समाहित है कि 'यह धरती तरह-तरह से गाती है'। भिन्न-भिन्न स्वरों और धुनों में गाती है, कभी पहाड़ चढ़कर गाती है, कभी कटाई-गहाई के गीत, तो कभी विरहिणी के संग आंसुओं से नहाई हुई गाती है। कभी योगी-साधुओं के बीच चिलम-हुक्का पीते हुए जोग-तपस्या का गीत गाती है, कभी रेशम की डोरी से पानी भरते हुए पनघट से आते-जाते गाती है। यह धरती बहुत गाती है और गाती ही रहेगी। कितने आक्रांता आए, घोड़ों के टापों के नीचे यह धरती कुचली-पिसी, पर गीत बंद नहीं हुए। यह गीत चलता रहा है, और चलता ही रहेगा।

अध्याय दो, बघेली भाषा के काव्यकारों की कविताओं का है। कविता में दो खंड हैं। एक पुराकवियों का है, जो पंचतत्वलीन हो चुके हैं। दूसरा आधुनिक कवियों का है। इसके अन्तर्गत आधुनिक कवियों का विवेचन क्रमशः बघेली के प्रतिनिधि कवि और बघेली के प्रतिभागी कवि शीर्षक के आधार पर किया गया है। इसके बाद बघेली हाइकू और बघेली ग़ज़ल का खंड है।

कविता, मनुष्य के कदाचरण को टोंकती है, समाज की विद्रूपता पर अंगुली रखती है। कविता समाज में पहरुए की भूमिका अदा करती है। वह सलाह देती है, और सलाह लेती भी है। कविता कभी हल का फाल बनती है, कभी अँगूठी बनती है तो कभी थके-प्यासे मजदूरों को संवेदना देती है, थपकी देती है। वह कभी प्यार का गीत गाती है, कभी जौहर और क्रांति का हुंकार करती है, कभी ऋतुओं के संग संवाद करती है तो कभी सेठ-साहूकारों तथा

राजनेताओं की कुत्सित भावनाओं से घिनाती है और थूकती भी है।

बैजू, सैफू, रामदास पयासी, शंभू 'काकू' आदि की कहन दूसरे प्रकार की है, अर्थात इनका लेखन इति वृत्तात्मक शैली में है, और बाबूलाल दाहिया, कालिका त्रिपाठी, श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' अंजनी सिंह सौरभ, अमोल बटरोही, शिवशंकर मिश्र 'सरस' हरिनारायण सिंह 'हरीश' की कहन प्रयोगवादी एवं प्रतिकात्मक है। पुरा एवं आधुनिक कवियों की हिलोरों का अंदाज अपने-आप स्पष्ट हो जाता है। रस, छंद, अलंकार, वक्रोक्ति, लक्षणा-व्यंजना की नई-नई उद्भवति की व्याप्ति और निष्पत्ति बघेली कविताओं में उसी प्रकार से सन्निहित है, जैसे महुआ के फूल में मादक रस।

इधर बघेली के जिन प्रयोगधर्मी रचनाकारों नें नये-नये प्रयोगों, नवीन प्रतीकों, नवीन विम्बों, तथा नवीन मुहावरों से बघेली काव्य वैभव को पुष्ट एवं परिमार्जित बनाया है, उनमें से सर्वप्रथम कालिका प्रसाद त्रिपाठी, अमोल बटरोही, श्रीनिवास शुक्ल 'सरस', शिवशंकर मिश्र 'सरस', हरिनारायण सिंह 'हरीश', गोमती प्रसाद विकल, सुधाकान्त बेलाला, सुदामा मिश्र एवं रामभद्र तिवारी, का नाम रेखांकित करने योग्य है।

बघेली हाइकू, बघेली साहित्य की एक निजी पहचान है। प्रदेश के किसी आंचलिक साहित्य में हाइकू की विधा अभी तक नहीं है। जापान से हाइकू उड़कर चिरहुला रीवा में प्रोफेसर आदित्य प्रताप सिंह के द्वार पर लगे आम की डालियों में बैठा हांफ रहा था। आम की टिकोरियों के मध्य बैठे 'हाइकू' को प्रोफेसर सिंह ने पहचान लिया, उसे वहां से उतार कर, बघेली भाषा से नहला-धुलाकर, हृदय की संवेदना के रस से प्लावित कर 'बघेली हाइकू' बनाकर साहित्य जगत में स्थापित किया। इससे किसी को इंकार नहीं है कि 'हाइकू' विधा के प्रथम पुरोधा प्रोफेसर आदित्य प्रताप सिंह हैं। तीन पंक्ति की यह विधा साहित्य के दरबार में अपनी धमकदार उपस्थिति से सबको भावित और प्रभावित करती है। बघेलखंड के अन्य साहित्यकारों की भी साझेदारी कम नहीं है। इसमें प्रमोद वत्स, श्रुतिवन्त

प्रसाद विजन, श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ग़ज़ल मूलतः उर्दू की विधा है, ग़ज़ल का स्वर विरह और वेदना का है। ग़ज़ल रोती अधिक है, हंसती कभी-कभी है। हिंदी में महाकवि निराला से लेकर विभिन्न गीतकारों और नए कवियों तक अनेक कवियों ने इस विधा को आजमाया है। पर, यह सभी जानते हैं और मानते हैं, कि इस विधा की पक्की शुरुआत और शोहरत 'साए में धूप' दुष्यंत कुमार से मिली। आज के ग़ज़लकारों का भी तेवर कम नहीं है। उनके कथ्य में गंभीरता भी है, और आनंद भी है। प्रकाशन की दिशा में बघेली के काव्यकार पीछे नही है, अभी तक बघेली अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। भागवत पाठक की बघेली कृति 'सझवाती' श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' की 'रसखीर', अमरउती, अँजरी भर अँजोर, बघेली शब्द-कोश इसी प्रकार अमोल बटरोही की हिमालय केर कनिया, श्रुतिवन्त विजन की पुनि के होइगा मुन्ना, दुर्योधन प्रसाद गुप्त की पगडण्डी, डॉ. कैलाश तिवारी की कृति 'हम तोहार बिरबा' तथा राजकुमार शर्मा की बघेली काव्य कृति 'भिन्सार' आदि बघेली साहित्य के भण्डार को समृद्ध करते है।

अध्याय तीन बघेली भाषा के गद्यकारों का है। यह अध्याय चार खंडों में विभक्त है, नाटक, कहानी, लोक कहानी और बघेली शब्द-कोश। यह हर आंचलिक भाषा की कठिन समस्या है कि अपनी बोली-भाषा में कविता तो लिखी जाती है, पर गद्य बहुत कम लिखा जाता है। इसका कारण शायद बोली में गद्य लिखना कठिन तो है ही, पढ़ना भी सहज नहीं होता।

ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण कर ब्रह्मा ने नाट्यवेद की सृष्टि की। देवताओं ने ब्रह्मा से निवेदन किया, कि हमें हृदय-रंजन चाहिए, जो दृश्य और श्रव्य हो। वेद में सबका अधिकार नहीं है, अतः सबके लिए पंचम वेद बनाइए। नाट्यवेद की रचना के बाद, ब्रह्मा ने इंद्र से कहा - 'इस नाट्यवेद के अनुसार, इसका मंचन देवताओं द्वारा कराओ !' तब

इंद्र ने उत्तर दिया - 'देवता नाट्यकर्म के अयोग्य हैं, मुनि और ऋषि ही इस प्रयोग में सक्षम हैं। फिर ब्रह्मा के आदेश पर भरतमुनि द्वारा अपने पुत्रों को नाट्यवेद का अध्यापन और ललित कलात्मक वृत्तियों का समाश्रित प्रयोग किया गया। नाटक की विधा प्रत्यक्ष संदेश वाहिका है और हृदय-रंजिका है।

हिंदी की आधुनिक नाट्य-परंपरा में एक बड़ा नाम मोहन राकेश का है। उसी परंपरा के अद्यतन लेखक योगेश त्रिपाठी हैं। बघेलखंड के श्री त्रिपाठी अपने हिंदी नाटकों के माध्यम से देश भर में चर्चित और विख्यात हैं। वे हिंदी नाटकों के सिद्ध सर्जक हैं। इन्हीं का 'छाहुर' बघेली नाटक है।

यहां एक बड़ी जीवंत जाति है अहीरों की, जो बकरी-गाय पालते और चराते हैं। खेती-किसानी के साथ-साथ बिरहा, कजरी, और निर्गुनिया गीतों के साथ नाचते और मस्त रहते हैं। इसी जाति की एक रस्म है - 'छाहुर'। इसी रिवाज से 'छाहुर' नाटक की उत्पत्ति हुई। श्री त्रिपाठी की नाट्यशैली, लेखनी की कला, प्रस्तुति की संवेदना, भावना एवं संदेश रंगमंच पर दर्शकों को सम्मोहित किए रहती है। 'छाहुर', बघेली भाषा का पहला, परंतु संपूर्ण और जीवंत नाटक है।

खंड दो, कहानियों का है। कविता पीछे लौटती है, कहानी आगे बढ़ती है। अच्छी कविता को श्रोता पीछे लौटा कर पुनः सुनता है, और कहानी में उत्सुकता और कौतूहल होता है, इसलिए कहानी बढ़ाकर सुनता है। कहानियों का प्राणबिंदु उत्सुकता और कौतूहल है। बघेली कहानीकारों की कहानियों में कथावस्तु की मार्मिकता के साथ उत्सुकता है और सबसे बड़ी बात सार्थक संदेश है। दो कहानियां लोक की हैं। इस बारूदी और रॉकेट युग में भी, दूरदर्शन और आकाशवाणी युग में भी, आदिकाल से अब तक मौखिक रूप में जीवित ये कथाएं, इनकी कलाएं, इनमें निहित संस्कृति, और सभ्यता आभिजात्य से आभिजात्य साहित्य को प्राणरस दे रही हैं। इस खण्ड के अन्त में बघेली शब्दकोश के लेखक डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' के योगदान को आरेखित किया गया है। बघेली शब्द

कोश रचकर डॉ. शुक्ल नें बघेली साहित्य की जो स्मरणीय सेवा की है, वो साहित्येतिहास की पृष्ठ भूमि में विशेष रूप से उद्घाटित करने योग्य है।

भरपूर प्रयत्न किया गया है कि हर विधा की उचित साझेदारी हो, और मेरे जानते ऐसा ही हुआ है।

एक बात और, जो कहना बहुत जरूरी है। बघेली भाषा पूरे देश में पहुँच रही है, और समझी जा रही है। भाषा को मुट्ठी में तो बांधा नहीं जा सकता, भाषा तो बहती है, जिसमें बहाव है, उसे कैसे बांधा जा सकता है?

बघेलखंड की लगभग सभी जातियां देश के विभिन्न नगरों मे बसती है। खासकर श्रमिक वर्ग, रसोइए (पंडित), गनमैन (क्षत्रिय), नागपुर के संतरों के बगीचों में, भुसावल में केलों की फसल की रखवाली में, मुंबई में मकान बनाते हैं, सड़क बनाते हैं, नागपुर में रोटी बनाते हैं, कलकत्ते में हाथ-रिक्शा चलाते हैं। बड़ार महाराष्ट्र में ज्वार की रखवाली करते हैं। यहां के लोगों की सर्वाधिक उपस्थिति सूरत, अहमदाबाद, मुंबई और नागपुर में है।

कहने का निष्कर्ष है कि ये बघेलखंड के संस्कार, रीति-रिवाज, आभूषण, अपनी पारंपरिक पोशाक, गीत, कजरी, बिरहा, कथा-कहानी, और अपनी बोली-भाषा भी ले जाते हैं। ये जिस अंचल में जाते हैं, वहां अपनी बोली को समझाते हैं, और उनकी बोली को समझते हैं। जिस काम को साहित्यकार, चिंतक, और बोली-भाषा के प्रचारक करने में असफल रहे, उसे बड़ी संजीदगी के साथ यह श्रमिक वर्ग कर रहा है।

बघेली पूर्वी हिंदी की प्रमुख बोली है, उसका मूल नाम 'रिमहाई' था, पर यह स्थान-वाची नाम कब उससे छिनकर जातिवाची हो गया, इसकी विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं है। फिर भी यह मानना होगा कि अर्द्धमागधी अपभ्रंश से 'रिमहाई' तक आने में जितना समय लगा होगा, उससे लगभग दोगुना समय बघेली तक आने में लगा होगा। आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच में यह 'रिमहाई'

बोली कही जाती थी। बघेलों के आगमन के बाद तेरहवीं शताब्दी तक यह नाम चलता रहा। इसके बाद राजाओं-सामंतों ने यहाँ की जन-भाषा 'रिमहाई' को राजसात करके अपना नाम दे दिया। अपनी बोली-भाषा, अपनी जननी, अपनी 'अवनी' सबको प्रिय होती है, मुझे भी प्रिय है, और इसी प्रिय भाव से ही भावित होकर बघेली साहित्यकारों ने बघेली भाषा पर साहित्य का सृजन किया है।

मेरे इस अनुष्ठान के उद्‌गाता श्री योगेश त्रिपाठी हैं। जब-जब मैं थका और हार मान लेने की स्थिति में आया, तब-तब इन्होंने मुझे पस्त होने से बचाया। मैं उनके प्रति मंगलभाव व्यक्त करता हूं। विभिन्न जिलों की विभिन्न यात्राएँ कर, विभिन्न जानकारियों से अवगत कराने वाले श्री प्रमोद वत्स का साधुवाद करता हूँ।

- आर्या प्रसाद त्रिपाठी

अनुक्रम

अध्याय : एक : परिचय

क -	बघेलखंड की पहचान	13
ख -	बघेलखंड : सिंहासन एवं सत्ता	16
ग -	बघेलखंड : संत परंपरा	27
घं -	लोककला, परंपरा, एवं संस्कृति	32
ङ -	बघेलखंड : साहित्यिक परंपरा	41
च -	लोकसाहित्य :	
	(1) धरती गाती है, तरह-तरह के गीत	48
	(2) संस्कार गीत	56
	(3) ऋतु गीत	82
छ -	जल, जंगल, जमीन और जीवन	106
ज -	बघेली भाषा	110
अध्याय : दो	**: बघेली भाषा के काव्यकार**	116
क -	बघेली कविता	
	(1) पुरा कविता	118
	(2) आधुनिक कविता	136
	(अ) बघेली के प्रतिनिधि कवि	136
	(ब) बघेली के प्रतिभागी कवि	172
ख -	बघेली गजल	221
ग -	बघेली हाइकू	227
अध्याय : तीन : बघेली भाषा के गद्यकार		
क -	बघेली नाटक	230
ख -	बघेली कहानी	265
ग -	बघेली लोक कहानी	289
घ -	बघेली शब्दकोश	296
परिशिष्ट :		
-	बघेली की प्रकाशित कृतियाँ	300
-	बघेली कवियों के पते	301

अध्याय : एक

(क) बघेलखंड की पहचान

विंध्य प्रदेश दो प्राचीन जनपदों को मिला कर बना है, जिनमें वत्स जनपद को आज हम बघेलखंड के रूप में, और चेदि जनपद को बुंदेलखंड के रूप में जानते हैं। वैसे, तीसरी शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक चेदि वंश का प्रासाद वत्स जनपद में ही अधिक रहा, और यही कालान्तर में कलचुरी 'कटच्छुरी' डहरिया या हैहयवंशी कहलाते रहे। इनकी दो शाखायें थीं, जिनमें एक शाखा दक्षिण तक थी। राजधानी त्रिपुरी, जबलपुर के पास थी। दूसरी शाखा का प्रसार काशी, गोरखपुर तक था, जिसकी राजधानी गुर्गी या गोलकी थी। इसी वंश में गांगेयदेव और कर्णदेव जैसे कला प्रेमी राजा हुए। बाद में कलचुरियों ने चालुक्यों की एक शाखा - बघेलों से वैवाहिक संबध स्थापित कर लिया। गुर्गी, कलचुरियों की कला साधना बनी, जैसे चन्देलों की खजुराहो। गुर्गी रीवा से 10 मील पर है।

पुराणों के अनुसार आर्यावर्त से दक्षिण में नर्मदा ताप्ती के मध्यवर्ती सतपुड़ा की पर्वतमालायें विन्ध्य श्रेणी के अन्तर्गत थीं। विन्ध्य की भूमि पर पूर्व की ओर चचाई प्रपात दक्षिण की ओर अमरकंटक, पश्चिम की ओर खजुराहो के मन्दिर और उत्तर की ओर पावन चित्रकूट तीर्थ है।

प्रागैतिहासिक काल के अनेक अवशेष इस भूमि पर बिखरे पड़े हैं। मांडा की गुफायें इसकी साक्षी हैं। यहाँ आर्य संस्कृति भी आई। किसी समय इसके उत्तरी भू-भाग पर करुष जाति की सत्ता थी, और दक्षिणी भू-भाग विराट संघ में शामिल था। पाण्डवों ने यहाँ शरण ली थी। विराटपुरी "सोहागपुर" विराटसंघ की, और करुषपुरी कर्बी (बांदा) करूष राज्य की राजधानी थी। ईसा के 330 वर्ष पूर्व यहाँ मौर्य समाज आया। यहाँ शुंगवंशीय राजा आये। भरहुत स्तूप 'सतना' जिला बना। ईसा के 126 वर्ष पूर्व उनकी यहां पर सत्ता थी। पुष्यमित्र प्रथम था। यहीं वरदावती नगर (जिला सतना) था। यहां नागवंशी राजा आये। ये यादव वंशीय

क्षत्रिय थे। विदिशा पर राज्य किया। शकों के आक्रमण के कारण वहां से हट गये, और विन्धभूमि में आकर नागौद-पन्ना के क्षेत्र में बस गये। नागावध का अर्थ है नागों का नगर। 'नागौद' शब्द इसी से निकला। नागौद, उनकी राजधानी थी। यह शैव थे। शकों से युद्ध कर उन्होंने अपना नाम नवनाग या भरशिव रखा। भुमरा का शिवालय और चौमुखनाथ (जिला सतना-पन्ना) इनका ऐतिहासिक स्थान है।

विन्ध्य प्रदेश का प्राचीन नाम 'डाहल' और 'चेदि' था। यहां चेदि वंशीय राजा हुए। दो सम्राज्य हुए। एक की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर) थी, दूसरे की कालिंजर या महोबा। एक का कल्चुरि राजवंश और दूसरे का चन्देल। दोनों साम्राज्य यहाँ पर कुछ-कुछ हिस्सों में नौवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक रहे। बघेलखण्ड का हिस्सा कल्चुरियों के, और बुंदेलखंड का चन्देलों के अधीन था। खजुराहो उनकी यादगार है। कल्चुरियों का स्मारक रीवा जिले में गुर्गी एवं सीधी में चन्दरेह का शैव मठ मंदिर है। बुन्देल और बघेल क्षत्रियों ने यहां के आदिवासी, लोधी और खंगारों को हराकर इस क्षेत्र में अपनी राज्य सत्ता स्थापित की।

वाकाटक वंश का उद्‌भव सन् 255 में हुआ। बाद में ये गुप्त साम्राज्य के अधीन हो गये। गुप्त साम्राज्य सन् 319-20 से सन् 540 तक रहा। कुषाणों का भी आधिपत्य सन् 80 से सन् 120 तक था। सन् 400 में कुछ भाग पर उच्छकल्पों की सत्ता आई। इनकी राजधानी उचेहरा (उच्छकल्प) थी। इन्हीं के आसपास परिव्राजकों की भी राज्य सत्ता थी। वर्म्मगिरि नाम के संन्यासी ने सन् 343 के करीब यह राज्य स्थापित किया। यह राज्य वर्म राज्य कहलाता था। इसी राज्य में परिहारों की सत्ता आई। सोहावल भी परिव्राजकों का केन्द्र था। सन् 606-647 में यह भू-भाग हर्षवर्धन का राज्य था। बघेलखंड के उत्तरी-पूर्वी भाग में सेंगरों की सत्ता सन् 686 में थी। कुछ भूभाग पर गोड़ों का राज्य था। बघेलखंड पहले भटगोंड या भटदेश कहलाता था।

विन्ध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के बीच अक्षांश 20 30 और

16 15 उत्तर और देशान्तर 78 15 और 82 50 पूर्व के बीच स्थित था। इसमें 35 रियासतें थीं। वन-सम्पदा और खनिज पदार्थो में यह भू-भाग धनी है। इसका क्षेत्रफल 24,600 वर्गमील था। कई गांव सन् 1950 जनवरी में पड़ोसी प्रान्तों में मिला लिये गये। अतः इसका क्षेत्रफल 22867 वर्गमील हो गया था। सन् 1951 में जनसंख्या 35,69,455 थी। आठ जिले थे - रीवा, सतना, सीधी, शहडोल, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ, दतिया। वार्षिक आय ढाई करोड़ रूपया थी ।

रियासतों की जो परिभाषा ब्रिटिश सरकार ने बनाई थी उसके अनुसार देश में बटलर कमेटी और साइमन कमीशन ने 562 रियासतें माना था पर भारतीय संविधान सुधारने के लिये जो संयुक्त संसदीय समिति बनी उसने भारत में 600 देशी रियासतें मानी। सलामी वाली रियासतें 120, और बिना सलामी की 442 थीं। सन् 1941 में भारत का क्षेत्रफल 1,581,410 वर्गमील था। जनसंख्या 38,9000000 थी। रियासतों का क्षेत्रफल 7,15,964 वर्गमील था, जो पूरे भारत के क्षेत्रफल का 45 प्रतिशत था। रियासतों की जनसंख्या 9,32,00000 थी। बंटवारे के बाद सन् 1947 में भारत का क्षेत्रफल 1,221,072 वर्गमील था। जनसंख्या 31,8900000 थी। रियासतों का क्षेत्रफल 5,87,949 वर्गमील था। जनसंख्या 8,9000000 थी।

सेन्ट्रल इंडिया में 62 रियासतें थीं। क्षेत्रफल 80,046 वर्गमील था। जनसंख्या 1,23,54,304 सन् 1941 में थी। सालाना आय 7,63,25000 रूपये थी। देश में 5454 रियासतें ऐसी थीं जिनमें से हर एक का क्षेत्रफल 1000 वर्गमील से कम था, व आबादी एक लाख से कम थी, और 374 रियासतों में हर एक की सालाना आय एक लाख रूपए से कम थी। सिर्फ 12 रियासतें ऐसी थीं जिनमें प्रत्येक का क्षेत्रफल दस हजार वर्गमील से ऊपर, आबादी दस लाख से ज्यादा, और आमदनी सालाना पचास लाख से ज्यादा थी। 15 रियासतें ऐसी थीं जिनमें प्रत्येक का क्षेत्रफल 1-1 वर्गमील से कम था। 27 ऐसी थीं जिनका एक-एक मील का इलाका था, 14 रियासतें ऐसी थीं जिनमें हर एक की सालाना

आय तीन हजार रूपया से कम थी। तीन रियासतों में प्रत्येक की आबादी 100 से भी कम थी। पांच रियासतों में प्रत्येक की सालाना आमदनी एक सौ रुपए थी। एक रियासत की आबादी 32 और सालाना आय बीस रुपए थी। ब्रिटिश सरकार के साथ 40 रियासतों की संधि हुई थी। शेष रियासतों के ताल्लुकात शर्तमान, सनद, रिवाज तथा राजनीतिक परम्परा और नीति पर आधारित थे।

विन्ध्यभूमि में कला और साहित्य के क्षेत्र में अनेक महारथी हुए हैं जिन्होंने अपनी लेखनी से मां सरस्वती के भंडार को भरा है, और ऐसे वीर हुए हैं, जिन्होंने इतिहास के पृष्ठों को तलवार की नोक से पलटाया है। 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ठाकुर रणमत सिंह, श्यामशाह, धीर सिंह, पंजाब सिंह, रणजीत राय दीक्षित, और गांधी जी की अगुआई में लड़े गए स्वाधीनता आंदोलन में शहीद केदारनाथ चतुर्वेदी, लाल पद्मधर सिंह अग्रणी योद्धा थे।

(ख) बघेलखण्ड : सिंहासन एवं सत्ता

वर्तमान मध्यप्रदेश में रीवा संभागातंर्गत - रीवा, सतना, सीधी, सिंगरौली और नवनिर्मित शहडोल संभाग के अंतर्गत आने वाले जिलों को सामूहिक रूप से बघेलखण्ड नाम से जाना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस क्षेत्र का नाम समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है, यथा करूष जनपद, आटवि राज्य, डाहल मण्डल व रेवापत्तला आदि।

उल्लेखनीय है कि वैदिक विवेच्य क्षेत्र करुष का उल्लेख नहीं मिलता। रामायण और महाभारत में इसकी अनेक बार चर्चा हुई है। सम्भव है कि करुष जन वैदिक काल में इतने सभ्य न रहे हों कि वैदिक ऋचाओं के प्रणेताओं ने उनका वर्णन किया होता। वाल्मीकि रामायण में करुष जनपद की उत्पत्ति से सम्बन्धित एक रोचक कथा मिलती है- पूर्व काल में यहॉ दो समृद्धिशाली जनपद थे - मलद और करुष। वृत्तासुर का वध करने के पश्चात् देवराज इन्द्र मल से

लिप्त हो गये। क्षुधा ने उन्हें पीड़ित किया और उनके भीतर ब्रह्म-हत्या प्रवृत्त हो गई। देवताओं और ऋषियों ने यह देखकर उन्हे यहाँ गंगाजल से भरे हुए कलशों से स्नान कराया तथा उनके मल विष्ठ करुष क्षुधा को छुड़ा दिया। इन्द्र जब पूर्ववत निर्मल और निष्करुष, क्षुधाहीन हो गये, तब उन्होंने इस देश को वरदान दिया कि ये दो जनपद लोक में मलद और करुष नाम से विख्यात होंगे। इस आख्यान से ऐसा प्रतीत होता है कि इस जनपद में बसने वाली जाति आरम्भ में अनार्य थी। कालान्तर में उसे आर्यो में सम्मिलित कर लिया गया।

महाभारत के अनेक पर्वो में करुष का उल्लेख मिलता है। भीष्म पर्व के जम्बूखण्ड - विनिमणि पर्व में करुष का वर्णन चेदि, मत्स्य, सिन्धु और पुलिन्द के साथ किया गया है। आदि पर्व, भीष्म पर्व, व कर्ण पर्व में दस देश का नाम चेदि और काशी जनपदों के बाद आया है। द्रोण पर्व में उल्लेख है कि कृष्ण ने रणक्षेत्र में अंग, वंग, कलिंग, मगध, काशि, कोशल, तत्स, गर्ग, करूष तथा पौण्ड आदि देशों पर विजय प्राप्त की थी। मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और वामन प्रभृति पुराणों में करुषों को विन्ध्य पृष्ठ निवासिनः कहा गया है। विष्णु पुराण में 'करूष' का उल्लेख चेदि के साथ आया है। भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि करूषों का एक उपनिवेश पुण्डवर्धन उत्तरी बंगाल में भी था।

पार्जिटर के मतानुसार करुष जनपद वत्स तथा कौशल के दक्षिण में चेदि और मगध के मध्य में स्थित था। इसका विस्तार भूतपूर्व रीवा राज्य क्षेत्र 'बघेलखण्ड" से मिलता जुलता था। यादव प्रकाश करुष का दूसरा नाम 'वृहदगृह' बताता है। हेमचन्द के अभियान चिन्तामणि में इस जनपद के 'करुष' और 'वृहद्गृह' नाम मिलते हैं। पी. सी. सरकार और एस. के. दीक्षित के विचार हैं कि यह वृहदगृह स्थान वर्तमान शाहाबाद (बिहार) था। रामायण के अनुसार प्राचीन करुषों का मूल स्थान आधुनिक सोण तथा गंगा नदियों के मध्य का भूभाग था। प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार शाहाबाद के दक्षिणी भाग सोण और कर्मनाशा नदियों के दोआब को करुष देश कहते थे। इस तथ्य की पुष्टि शाहाबाद जिले में

स्थित मसार से प्राप्त अभिलेख से भी होती है, जिसमें इस जनपद को करुष देश कहा गया है।

उपरोक्त तथ्यों के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तव में करुषजन दुर्गम प्रदेश के निवासी थे, जो विंन्ध्यांचल की पर्वत मालाओं में स्थित था। संभवतः इनका मूलस्थान बिहार में था, कालान्तर में ये पश्चिम की ओर स्थानान्तरित हुए और विन्ध्यांचल के बघेलखण्ड क्षेत्र में जम गये। इस सन्दर्भ में यहाँ भूगोलविद् एस. एम. अली का यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि करुष राज्य की पूर्वोत्तर सीमाएं यमुना नदी के निकट विन्ध्य के ढलान तक, दक्षिण में कैमोर पर्वत की श्रेणियों तक, और पश्चिम में केन नदी तक विस्तृत थीं। इस प्रकार इसमें वर्तमान रीवा, सीधी, शहडोल और सतना जनपद सम्मिलित थे।

विन्ध्यांचल में इस करुषांचल का नाम इतिहास में समय के साथ बदलता रहा है। प्रागैतिहासिक काल में यह अंचल उस काल की संस्कृति से सम्पन्न था, जिसके अवशेष आज भी यहां की घाटियों में बिखरे पड़े हैं। इन घाटियों में उपलब्ध प्रागैतिहासिक चित्र व उपकरण उस काल की प्रागैतिहासिक सभ्यता पर प्रकाश डालते हैं। इस अंचल में धीरे-धीरे अर्ध सभ्य राज्यों का विकास हुआ और इनका विकास इस क्षेत्र में सदियों तक चलता रहा।

युवराज देव 'प्रथम' न केवल प्रारम्भिक कल्चुरि नरेशों में बल्कि अपने समकालिक नृपतियों में भी एक महत्वपूर्ण शासक था। वह कला और साहित्य का बड़ा संरक्षक था। वह शिव का परम भक्त था। उसने शैव धर्म के उत्थान एवं प्रसार के लिए शैवाचार्य प्रभाव शिव (सद्भाव शम्भु) अपने को अपने राज्य में आमंत्रित कर रेवहुटा के निकट गुर्गी में प्रतिष्ठित किया। काकतीय नरेश रूद्रदेव के मलकापुरम अभिलेख में स्पष्ट उल्लेख है कि युवराज देव ने सद्भाव शम्भु (प्रभाव शिव) को डाहल मण्डल के तीन लाख ग्राम दान में देकर वहाँ उन्हें सम्मानित किया था। कोकल्लदेव 'द्वितीय' के गुर्गी अभिलेख से यह स्पष्टतः ज्ञात

होता है कि युवराजदेव प्रथम ने प्रभाव शिव को यहाँ एक शैव मठ बनवा कर सादर भेंट किया। यह शैव मठ ही गुर्गी का गोलकी मठ था।

कालान्तर में यह गोलकी मठ प्रभाव शिव का प्रमुख पीठ बन गया। युवराजदेव ने इस मठ के अतिरिक्त वहाँ अन्य वास्तुओं का भी निर्माण कराया था। राखालदास बनर्जी ने अपने सर्वेक्षण विवरण में लिखा है कि युवराज देव ने गुर्गी तथा अन्य स्थानों पर अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया था। कोकल्लदेव द्वितीय के गुर्गी अभिलेख से ज्ञात होता है कि युवराज देव ने यहाँ पर कैलाश पर्वत सदृश्य एक विशालकाय मन्दिर का निर्माण करवाया था। इस विशाल मन्दिर का तोरण द्वार रीवा दुर्ग के द्वार पर आज भी प्रतिष्ठित है। गुर्गी के निकट महसॉव में प्राप्त वृत्ताकार गर्भगृह शैली का शिव मन्दिर भी सम्भवतः युवराज देव के समय में प्रभाव शिव द्वारा निर्मित कराया गया था।

युवराज देव प्रथम का उत्तरातधिकारी उसका पुत्र लक्ष्मण राज प्रथम हुआ। उपरोक्त मलकापुरम् अभिलेख से ही ज्ञात होता है कि प्रभाव शिव के पश्चात् सोमशम्भु कलचुरियों का राजगुरु बनाया गया था। अतः सोमशम्भु लक्ष्मण राज का राजगुरु रहा होगा। इसके अतिरिक्त लक्ष्मणराज ने हृदय शिव नामक अन्य शैव आचार्य को भी अपने राज्य में आमंत्रित किया, जिसे उसने वैद्यनाथ शैव मठ भेंट किया था। राखालदास बनर्जी के मतानुसार यह वैद्यनाथ मठ रीवा जिले में गुर्गी से लगभग 16 मील दूर कलकत्ता बम्बई मार्ग पर स्थित वैद्यनाथ में था। इधर गुर्गी में शैवाचार्य प्रभाव शिव का शिष्य व उत्तराधिकारी प्रशान्त शिव हुआ जो लक्ष्मणराज का समकालिक था। उसने लक्ष्मणराज के संरक्षकत्व में गुर्गी चन्द्रेह सीधी तथा वाराणसी में अनेक शैव स्थापत्यों का निर्माण करवाया।

लक्ष्मणराज का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र शंकरगण हुआ। उसके समय में कल्चुरियों को चन्देलों से मात खानी पड़ी। शंकरगण के बाद उसका लघु

भ्राता युवराज देव द्वितीय कल्चुरि गद्दी पर बैठा। वह बड़ा निर्माण-प्रिय शासक था। गुर्गी में उसका समकालिक शैव आचार्य प्रबोध शिव था, जो प्रशान्त शिव का शिष्य था। प्रबोध शिव ने सीधी स्थित चन्दरेह में शैव मठ का निर्माण करवाया, और चन्द्रेह को गुर्गी से संबद्ध करने के लिए मार्गो आदि का भी निर्माण करवाया। युवराज देव द्वितीय के बाद उसका पुत्र कोकल्लदेव द्वितीय कल्चुरि शासक बना। अपने पूर्वाधिकारियों के समान वह भी शैव था। शैव आचार्य विमलशिव सम्भवतः उसका परम्परागत राजगुरु था। कोकल्लदेव द्वितीय के गुर्गी अभिलेख का कुछ भाग भग्न हो गया है, जिससे डाहल मण्डल में उसके निर्माण कार्य का ज्ञान नहीं होता ।

कोकल्लदेव द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका गौरवशाली पुत्र गांगेयदेव हुआ। वह भी कला एवं साहित्य का संरक्षक व निर्माता था। उसके राज्य काल में डाहल मण्डल में अनेक कलाकृतियों का निर्माण हुआ। रीवा जिले में स्थित मुकुन्दपुर में उसके एक श्रेष्ठि दामोदर ने जलाशयीन विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाया। रीवा जिले में स्थित गंगेव में भी उसके काल में कलाकृतियों का निर्माण हुआ था, जिसके कुछ अवशेष वहाँ बिखरे मिलते हैं। गांगेयदेव का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कर्णदेव हुआ। वह अपने वंश का महान शासक ही नहीं, कला का महान संरक्षक व निर्माता भी था। उसने डाहल मण्डल में अनेक कलाकृतियों का निर्माण कराया। कर्ण के रीवा प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में उसके कायस्थ अमात्य द्वारा एक शिव मन्दिर बनवाया गया था। कर्ण के दूसरे प्रस्तर अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके सेनापति वपुल्ल ने एक शिव मन्दिर का निर्माण इस क्षेत्र के कादम्बरी नामक स्थान पर करवाया था। इसी अभिलेख से मालूम होता है कि वहीं पर एक और मन्दिर का भी निर्माण करवाया गया था, जो श्री वत्स विष्णु को समर्पित किया गया था। यह एक पंचायतन प्रकार का मन्दिर था जिसके चारों ओर अन्य छोटे मन्दिर भी बने थे। इस मन्दिर के सामने एक बाग भी लगाया गया था, जिसमे सैकड़ों आम्र तथा अन्य प्रकार के वृक्ष

लगाये गये थे, और वहीं पर पर्याप्त जल से सम्पन्न एक कूप भी बना था। उल्लेखनीय है कि इसी अभिलेख के 18 वें श्लोक में एक और मन्दिर के निर्माण का सन्दर्भ मिलता है। यह शिव का एक पंचायतन मन्दिर था, जिसमें पॉच लघु मन्दिर थे। कर्ण ने शहडोल स्थित सोहागपुर व अमरकंटक में भी मन्दिरों का निर्माण करवाया था। यह भी ज्ञात होता है उसने रीवा स्थित रेवहुटा में भी कुछ निर्माण कार्य करवाया था। अपने राज्य के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में स्थित वाराणसी मे कर्ण ने एक 12 तलीय कर्ण मेरू मन्दिर बनवाया था। प्रबोध चिन्तामणि के अनुसार कर्ण ने भोज परमार से अपनी वास्तु प्रतियोगिता में, वाराणसी में एक राज प्रासाद भी बनवाया था। कर्ण ने प्रयाग में गंगा तट पर कर्ण तीर्थ नामक घाट भी बनवाया था।

कर्णदेव ने वृद्ध हो जाने पर अपने पुत्र यशकर्ण को कल्चुरि गद्दी पर आसीन किया। यशकर्ण ने लगभग 50 वर्ष तक शासन किया। साक्ष्यों के अभाव में उसके निर्माण कार्य का ज्ञान नहीं है। यशकर्ण का पुत्र एवं उत्तराधिकारी गयाकर्ण हुआ। ग्रहणकाल और चन्देल सत्ताओं के प्रमाद के कारण कल्चुरि सत्ता अब धूमिल पड़ती जा रही थी। चन्देल मदनवर्मन ने उत्तरी बघेलखण्ड को कल्चुरियों से छीन लिया। बघेलखण्ड में कल्चुरि सत्ता के पतन का अप्रत्यक्ष सन्दर्भ अभिलेखों के अतिरिक्त सिक्कों से भी मिलता है। रीवा के त्योंथर तहसील स्थित पनवार से चन्देल मदनवर्मन के सिक्कों का एक गागर मिला है, जो इस क्षेत्र में चन्देलों के प्रभुत्व का द्यौतक है। यशकर्ण के बाद उसका पुत्र नरसिंह देव कल्चुरि गद्दी पर बैठा। वह कल्चुरि वंश का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक था। उसने अपने पिता द्वारा खोये उत्तरी बघेलखण्ड को पुनः जीत लिया, और इस क्षेत्र में अपने पूर्वजों की निर्माण परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। रीवा जिले के मऊगंज तहसील में स्थित देवतालाब का शिव मन्दिर सम्भवतः उसी ने निर्मित करवाया था। नरसिंह देव पुत्र-रहित मरा, अतः उसका भ्राता जयसिंह गद्दी पर बैठा। जयसिंह का संघर्ष चन्देलों से बराबर चलता रहा। उसने चन्देल सीमा

ककरेड़ी में अपने सामन्त महारजक कीर्तिवर्मन को नियुक्त किया। जयसिंह के बाद उसका पुत्र विजयसिंह देव गद्दी पर बैठा, जो कलचुरि वंश का सबसे दुर्बल शासक था। उसकी दुर्बलता के कारण डाहल मण्डल से उसकी सत्ता समाप्त हो गई।

तेरहवीं शताब्दी ई. में इस अंचल में बघेलों का पदार्पण हुआ। वे गुजरात से आकर मड़फा (कालिंजर) नामक स्थान में बसे। तदनन्तर, बघेलों ने गहोरा जिला बॉदा (उ0प्र0) को अधिकृत कर उसे अपना केन्द्र बनाया। इसके बाद बघेल नृपति वलनदेव के दो पुत्रों दलकेश्वर और मलकेश्वर ने अपनी वीरता का प्रदर्शन कर अपनी शक्ति का प्रसार कालिंजर से टमस और सोण के भू-भाग तक कर लिया। मलकेश्वर के बाद उसका पुत्र वरियारदेव बघेल राजा हुआ। उसके बाद सिंहदेव शीघ्र दिवंगत हो गया। सिंहदेव के पश्चात वीरमदेव बघेल वंश के प्रतापी शासक हुआ। उसने कालपी के मलिकजादा नासिरूद्दीन महमूद 1490-1441 ई. से कड़ा संघर्ष किया। वीरमदेव के बाद उसका पुत्र नरहरिदेव गद्दी पर बैठा। उल्लेखनीय है कि 15 वीं शती ई. से पूर्व बघेलों का इतिहास तिमराच्छादित है।

भीरदेव बघेल (1470-1495 ई.) अपने वंश का प्रतापी शासक हुआ। उसका राज्य उत्तर में कान्तित मिर्जापुर और अरैल इलाहाबाद पश्चिम में गहोरा बॉदा और दक्षिण में बान्धवगढ़ शहडोल तथा सरगुजा के समीप तक विस्तृत था। राजीवलोचन अग्निहोत्री का विचार है कि उसने बान्धवगढ़ में अपनी राजधानी स्थापित की। वह अपने काल में लोदी-शर्की संघर्ष में उलझा रहा और शक्रियों का हितैषी बन गया। मेघदेव के बाद शालिवाहन देव 1495-1500 ई. बघेली गद्दी पर बैठा। उसके काल में बघेल-लोदी मैत्री का सूत्रपात हुआ। शालिवाहन का उत्तराधिकारी वीर सिंह देव (1500-1540 ई.) हुआ। उसने बघेल-लोदी मैत्री को पुनर्जीवित किया। वीरभानूदय काव्य के अनुसार उसने नरौं दुर्ग (राजा विक्रमादित्य) पर अधिकार कर लिया। गढ़ामंडला के अपने पड़ोसी राज्य से

उसने निकट सम्बन्ध स्थापित किया। उसने रतनपुर के शासक बहरशाह को पराजित कर अपना करदायी बना लिया। पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) के बाद, जब बाबर और राणा सागा में खनुआ में युद्ध हुआ तब वीरसिंह बघेल ने अपने 4,000 सैनिको को लेकर राणा का साथ दिया। इस युद्ध में राणा सागा पराजित हुआ, पर उसने अपनी वीरता से बाबर को आकर्षित कर लिया। फलतः, बाबर ने भट देश (बघेलखण्ड) वीर सिंह को नानकार जागीर के रूप में दे दिया।

वीर सिंह के बाद वीर भानु सिंह (1540-1555 ई.) बघेल शासक हुआ। राजीवलोचन अग्निहोत्री ने लिखा है कि उसने उज्जरदेश व द्वादस राज्य चक्र को अधिकृत किया और रतनपुर के कल्चुरियों का दमन किया। उसने मुगलों से हुण्डा ग्राम ले लिया, पर शेरशाह के विरुद्ध मुगल शासक हुमायूँ की सहायता भी की। शेरशाह ने कुपित होकर उस पर आक्रमण कर दिया। फलतः वीर भानु सिंह को कालिन्जर में शरण लेनी पड़ी। शेरशाह ने उसके विरुद्ध आक्रमण किया। उसने कालिंजर घेर लिया और अपने पुत्र जलाल खॉ सलामशाह को रेवांचल पर आक्रमण के लिए भेज दिया। कालिंजर के शासक कीरत सिंह ने उसका मुकाबला किया। शेरशाह कालिंजर घेरे के बीच बारूदी सुरंग के विस्फोट में मर गया। सलीम शाह ने रेवांचल में बीहर व बिछिया के संगम पर रीवा दुर्ग की आधारशिला रखी, पर शेरशाह के बाद अफगान आपसी कलह में टूट गये, जिसका लाभ बघेलों को मिला और बघेलों ने अपनी सत्ता बघेलखण्ड पर स्थिर कर ली।

वीर भानु के बाद रामचन्द्र (1555-1592 ई.) बघेली गद्दी पर बैठा। उसने अपने आप को बान्धवगढ़ में स्थिर किया। मुगल बादशाह अकबर के सूबेदार आसफ खॉ ने बान्धवगढ़ पर दो बार आक्रमण किया, पर असफल रहा। अकबर के विद्रोही सरदार गॉजी खॉ तन्दूरी को रामचन्द्र ने शरण दे दी थी। इस बहाने आसफ खॉ ने बघेलों पर पुनः आक्रमण किया। रामचन्द्र ने सुरक्षात्मक

युद्ध किया। अन्त में बीरबल के प्रयत्नों से बघेलों और मुगलों में समझौता हो गया। अकबर की दृष्टि कालिंजर पर लगी थी। रामचन्द्र ने कालिंजर मुगलों को सौप दिया, और मुगलों ने अरैल इलाहाबाद का क्षेत्र बघेलों को दे दिया। अकबर के आग्रह पर रामचन्द्र ने अपने दरबारी संगीतकार तानसेन को मुगल दरबार में भेज दिया। अंततः बाध्य होकर रामचन्द्र ने अकबर से फतेहपुर सीकरी में औपचारिक भेंट की।

रामचन्द्र के बाद वीरभद्र (1592-93) उत्तराधिकारी हुआ, जो उस समय मुगल दरबार में था। मुगल दरबार से आते समय मार्ग में वीरभद्र की मृत्यु हो गई। तदुपरान्त अवयस्क विक्रमादित्य (1593-1624 ई.) बघेल गद्दी पर बैठा। मुगलों ने उसे राजा स्वीकार नहीं किया, और अन्ततः 1598 मेंबान्धवगढ़ पर अधिकार कर लिया। 1602 में वीरभद्र का दासीपुत्र दुर्योधन बान्धवगढ़ का राजा बनाया गया। जहाँगीर के काल में विक्रमादित्य को राजा स्वीकार कर लिया गया। अब विक्रमादित्य ने रीवा को बघेल राजधानी बनाई। विक्रमादित्य के बाद अमर सिंह (1624-40 ई.) रीवा की बघेल गद्दी पर बैठे और मुगलों से उनके सम्बन्ध मधुर बने रहे। अमर सिंह के उत्तराधिकारी अनूप सिंह (1640-60 ई.) हुए। अनूप सिंह को अपने पड़ोसी पहाड़ सिंह बुन्देला से काफी त्रस्त होना पड़ा। अनूप सिंह के बाद भाव सिंह (1660-90) बघेल राजा बने। उनके काल में भी बुंदेल-बघेल संघर्ष चलता रहा। वह मुगलों के सहयोग से अपने राज्य की रक्षा कर सके। भाव सिंह के बाद उनके दत्तक पुत्र अनिरूद्ध सिंह (1690-1700) बघेल गद्दी पर बैठे। मऊगंज के सेंगरों का विद्रोह दबाने में अनिरूद्ध सिंह मारे गये। तदुपरान्त, अल्पवयस्क अवधूत सिंह (1700-1755) गद्दी पर बैठाये गये। उनके काल में सामन्तों के विद्रोह से बघेल कमजोर पड़ गये, और बुन्देला राजा हृदय शाह ने रीवा पर आक्रमण कर उसे अधिकृत कर लिया। मुगलों की सहायता से अन्ततः बघेलों ने रीवा को मुक्त कराया। अवधूत सिंह के बाद रीवा की गद्दी पर अजीत सिंह (1755-1809 ई.) बैठे। मुगल पतनोन्मुख थे। मुगल शासक शाह

आलम जब 1758 ई. में लार्ड क्लाइव से हारा तब राजा अजीत सिंह ने शाह आलम को अपने मुकुन्दपुर की गढ़ी में सपरिवार आश्रय दिया। अजीत सिंह का जब लखनऊ के नवाब से सरहदी विवाद उठा, तब नवाब ने फ्रेन्च जनरल ओसबर्न द्वारा बघेलों पर आक्रमण कराया। अन्ततः ओसबर्न त्योंथर में हारा और बाँदा भाग गया। बुन्देला धोकन सिंह को शरण देने के कारण अर्जुन सिंह बुन्देला ने रीवा पर आक्रमण किया। फलतः नैकहाई का युद्ध हुआ, जिसमें मराठा नायक यशवन्त पराजित हुआ। पर, अली बहादुर के नेतृत्व में मराठों ने बघेलों से एक लाख रूपया वसूल किया। अंग्रेजों ने मराठा प्रभाव रोकने के लिए अजीत सिंह से सन्धि की, और मुकुन्दपुर में अपनी सेना रख दी। यहीं से बघेलखण्ड पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा। अजीत सिंह ने वर्दी के चन्देलों की अराजकता का शमन अवश्य कर दिया, पर चँदिया व सोहागपुर उसके राज्य से निकल गये। इन इलाकों पर मराठों ने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया।

अजीत सिंह के बाद जयसिंह (1809-33 ई.) बघेल राजा हुआ। जयसिंह ने अंग्रेजों से 1812 ई. में सन्धि की। फलतः बघेलों का पड़ोसी राज्यों से सम्बन्ध निपटारा अंग्रेजों के हाथ में चला गया, और अंग्रेजों की सेना का खर्च रीवा दरबार देने लगा। अंग्रेजों ने रीवा राज्य में डाक व्यवस्था स्थापित की। जब चुरहट के राव ने वहां की डाक लुटवा दी, तब अंग्रेजों ने रीवा पर आक्रमण कर दिया। अन्त में 1813 की सन्धि हुई। जयसिंह को हर्जाना देना पड़ा और रीवा में अंग्रेज एजेन्ट रखना पड़ा। जयसिंह के उत्तराधिकारी विश्वनाथ सिंह हुए।

विश्वनाथ सिंह (1833-54 ई.) एक योग्य शासक ही नहीं, कला एवं साहित्य का प्रेमी भी थे। युवराज के रूप में उन्होंने अपने पिता जयसिंह को काफी सहयोग दिया था। उन्होंने विद्रोही सामन्तों को त्रस्त कर अधीन किया। अपनी धार्मिक अभिरुचि के कारण रीवा में लक्ष्मणबाग जैसे धार्मिक स्थल की स्थापना कराई। उन्होंने साहित्यकारों को आश्रय ही नहीं दिया, अपितु स्वयं भी साहित्य का सृजन किया। वह संगीत प्रेमी शासक थे। विश्वनाथ सिंह के बाद रघुराजसिंह

(1854-1880) बघेलखण्ड शासक बने। उन्हीं के शासन काल में 1857 ई. की क्रान्ति हुई, जिसकी लपट से बघेलखण्ड अछूता न रहा। रीवा राज्य की सेना के एक योद्धा ठाकुर रणमत सिंह ने बघेलखण्ड में क्रान्ति का बिगुल बजाया, उनके साथी श्यामशाह और रणजीत राय दीक्षित थे। रघुराज सिंह के बाद अवयस्क वेंकटरमण सिंह गद्दी पर बैठे। वेंकटरमण सिंह के अल्पायु होने के कारण 1880 से 1895 ई. तक कर्नल वार पोलिटिकल एजेन्ट के रूप में शासन प्रबन्ध देखता रहा। 1895 में वेंकटरमण सिंह स्वयं शासक बने। उन्होंने राज्य में अनेक सुधार किये, जिसमें उनके सैन्य सुधार उल्लेखनीय हैं। वेंकटरमण सिंह के बाद गुलाब सिंह बघेल गद्दी पर बैठे। उनकी अल्पायु होने के कारण 1919 से 1924 तक बघेलखण्ड में रेजिडेंसी शासन चलता रहा। महाराजा गुलाब सिंह योग्य शासक सिद्ध हुए। उन्होंने अनेक प्रशासनिक सुधार किये। तदुपरान्त उनके पुत्र मार्तण्ड सिंह 1945-47 ई. बघेल शासक हुए। 1947 में भारत के स्वाधीन होने पर रीवा राज्य विन्ध्य प्रदेश का अंग बन गया और 1956 ई. में विन्ध्य प्रदेश मध्य प्रदेश का अंग बन गया। मार्तण्ड सिंह के पुत्र पुष्पराज सिंह है, जो राजनीति में सक्रिय है।

(ग) बघेलखंड : संत परंपरा

विंध्यांचल से लेकर कैलाश तक, तथा मगध (कुर्दिस्तान) से लेकर गांधार और उससे भी आगे उत्तर देवगुरु तक का विस्तृत भू-भाग प्रारंभिक आर्यावर्त है। संसार के इसी भाग में सभ्यताओं का उदय हुआ। एक के बाद एक कई सभ्यताएँ विकसित हुईं, एक दूसरे से मिश्रित हुईं, विलीन हुईं, और नए-नए रूप में पुनः फली-फूलीं। विंध्य पर्वत-श्रृंखला भारतीय उप महाद्वीप को उत्तर से दक्षिण को जोड़ने की रज्जु है। विंध्य को पार करके ही उत्तर एवं पश्चिम की संस्कृति दक्षिण में लंका तक, एवं दक्षिण की संस्कृति ईरान तक पहुँची है। विंध्य क्षेत्र दोनों ओर की संस्कृतियों को उदारता से ग्रहण करता और एक दूसरे तक पहुँचाता रहा है। यही कारण है कि यहाँ आर्य, द्रविण, शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, तथा जैन, सभी धर्म एवं मत समय-समय पर खूब फले-फूले। इनके स्मृति चिन्ह

आज भी शैल चित्रों, मठों, मंदिरों, गुफाओं एवं विहारों, ऋषि आश्रयों और अनेकानेक पुरा संपदाओं के रूप में बहुतायत के साथ यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। संत प्रवर कबीर, तुलसीदास, सेन, रविदास, धर्मदास, प्राणनाथ, इत्यादि का भी यह कार्य क्षेत्र रहा है। इन सभी संतों के स्थान, शिष्य परंपरा, साहित्य और विचार आज भी इस क्षेत्र में बड़ी जीवंतता के साथ विद्यमान है।

जहाँ यह क्षेत्र परम शैव रावण का सिंधुकर सुदास के राज्य तक पहुँचने का यात्रा पथ है, वहीं परम वैष्णव राम का अयोध्या से चित्रकूट प्रवास और लंका तक पहुँचने का यात्रा पथ भी है। महात्मा बुद्ध ने भी अपनी सारनाथ से सांची तक की धर्मयात्रा इसी क्षेत्र से हो कर की है। रामानुजाचार्य और शंकराचार्य ने भी अपनी दिग्विजयी यात्रा इस क्षेत्र से होकर ही की है। यह क्षेत्र कबीर के काशी से बांधवगढ़ तक और प्राणनाथ के मथुरा से पन्ना तक पहँचने का मार्ग भी है। यही कारण है कि यहाँ भरहुत और गुर्गी का विशाल क्षेत्र आज भी अपने शैव संस्कृति के अवशेषों और खंडहरों को सँजोए हुए है। चित्रकूट और दंडकारण्य वैष्णव संस्कृति की याद दिलाता है। देउर कोठार के बौद्धकालीन शैल चित्र एवं भरहुत क्षेत्र के विहार बौद्ध मत के साक्षी हैं। कबीर मत को बांधवगढ़, अमरकंटक, भंड़रा, और रीवा की गद्दियां, तथा प्राणनाथ का पन्ना स्थित मंदिर और गंगेव रीवा के मंदिर आज भी क्रियाशील रखे हुए हैं।

संतमत, पूर्व की सभी संस्कृतियों एवं विचारों का नवनीत है। यह मनुष्य के उत्तमोत्तम ढंग से जीने की सर्वोत्तम अनुभव सिद्ध एवं व्यावहारिक शैली है। इसके प्रवर्तक और सटीक व्याख्याकार, युगपुरुष कबीर माने जाते हैं। वैसे कबीर के पूर्ववर्ती संतों ने उसकी पूर्व पीठिका तैयार की थी। कबीर का जन्म विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विद्वानों के गढ़ काशी में हुआ था। वे असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उनका ज्ञान स्वानुभूत था। उनके विचारों को लोगों ने बड़े पैमाने पर ग्रहण किया। बांधवगढ़ के तत्कालीन नरेश वीरसिंह जूदेव पर कबीर का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, और वे उनके शिष्य बन गए। महाराज वीर सिंह प्रायः

काशी जाते रहते थे। कबीर की यात्रा भी बांधवगढ़ तथा राज्य के अनेकानेक क्षेत्रों में हुई है। कबीर के जीवनकाल में ही संपूर्ण विंध्य क्षेत्र उनके प्रभाव क्षेत्र में आ गया था जो आज तक विद्यमान है। महाराज वीरसिंह बघेल ने ही काशी में कबीर चौरा का निर्माण कराया है, जिसका विवरण वहां एक शिला पर उत्कीर्ण है। महाराज स्वयं महात्मा कबीर की अंत्येष्टि के अवसर पर मगहर पहुंचे थे। वहां उन्होंने कबीर की समाधि का निर्माण करवाया है। आपके पुत्र वीरभानु सिंह बघेल ने भी महात्मा कबीर से विधिवत् दीक्षा ली थी। इसका उल्लेख गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री द्वारा लिखित 'रीवा राज्य का इतिहास' में किया गया है।

विंध्य क्षेत्र में एक-दूसरे से मिलने पर अभिवादन के लिए 'साहेब सलाम' या 'साहेब बंदगी' का प्रचलन है। यह भी कबीर साहब की देन है। साहेब का तात्पर्य ईश्वर से है। बघेलखंड एवं बुंदेलखंड, दोनों में ही आज लाखों की संख्या में कबीरपंथी हैं, और जगह-जगह पर उनकी गद्दियां हैं। रीवा नगर में भी एक प्रमुख गद्दी लगभग जीवंत और क्रियाशील है। किला रोड पर पंथ का मठ आज भी विद्यमान है। कबीर मठ रीवा के प्रथम महंत संत अमर साहब (संवत 1850) हुए हैं। वर्तमान समय में रीवा कबीर मठ के महंत संत सनाथ दास हैं। बीजक के प्रथम टीकाकार सद्गुरु पूरन साहब ने यहीं पर रहकर वि.सं. 1874 से 1886 तक के बारह वर्षो में टीका पूर्ण की है। यह रीवा नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह का राज्य काल था। महाराज विश्वनाथ सिंह ने भी 'पाखंड खंडिनी' नाम से बीजक की टीका लिखी है, जिसकी हस्तलिखित प्रति जीर्ण स्थिति में कबीर मठ में मौजूद है। महाराज विश्वनाथ सिंह के पुत्र रघुराज सिंह, रीवा दरबार के कवि 'युगलेश' जी, तथा महारानी कीर्ति कुमारी ने भी कबीर पर लेखनी उठाई है।

संत कबीर के प्रधान शिष्य संत धर्मदास कार्य क्षेत्र भी यही विंध्य क्षेत्र है। ये कबीर पंथ की छत्तीसगढ़ी शाखा के मूल प्रवर्तक हैं। आपका जन्म स्थान बांधवगढ़ है। संत कबीर के विचारों का जनता में प्रचार करने वाले संतों में धर्मदास का नाम सर्वप्रथम आता है। इन्होंने कबीर के उपदेशों को संवाद के रूप

में लिखकर कई ग्रंथों की रचना की है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सुखनिधान' है। इसे कबीर पंथी अत्यधिक महत्व देते हैं। कबीर साहब के सिद्धांतों की उत्तम व्याख्या इनके अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता। इनके काव्य में विशेष कलात्मक पक्ष तो नहीं है, परंतु भाषा स्वाभाविक और प्रवाहमयी है। इनकी भाषा बघेली और पूर्वी अवधी है। संत धर्मदास के भजन एवं साखियां संपूर्ण विंध्य क्षेत्र में आज भी बड़ी श्रद्धा से गाए जाते हैं।

संत प्रवर सेन का जन्म भी बांधवगढ़ में हुआ है। ये बांधवगढ़ नरेश के सेवक थे। इनके गुरु रामानंद कहे जाते हैं। इनका एक पद 'आदिग्रंथ' में संग्रहीत् है। इसके अतिरिक्त इनकी फुटकर बानियां कई मराठी एवं हिंदी संग्रहों में पाई जाती हैं।

कबीर के समकालीन संत रैदास का भी आगमन विंध्य क्षेत्र में हुआ है। उनके बांधवगढ़ नरेश वीरसिंह बघेल से मिलने के भी प्रमाण हैं। अस्पृश्य होने के कारण ऊंची जाति के लोगों ने उनकी प्रभु भक्ति का कड़ा विरोध किया था, और तरह-तरह की बाधाएं उत्पन्न करने लगे थे। उनसे त्रस्त होकर संत कवि रैदास बांधवगढ़ नरेश वीरसिंह बघेल के समक्ष प्रस्तुत हुए और उन्होंने न्याय की मांग की। महाराज ने उनके ईश्वर भक्ति के अधिकार को उचित ठहराया और संरक्षण प्रदान किया। संत रविदास एक क्रांतिकारी विचारक थे। उन्होंने अपने विचारों को बड़े तक्रपूर्ण, वैज्ञानिक और प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने कबीर की भांति वर्णाश्रम व्यवस्था, जाति-पांति, कर्मकांड और अंधविश्वास का घोर विरोध किया। उन्होंने श्रम को ईश्वर-तुल्य माना है। दीनदुःखियों की सेवा और कर्म के प्रति पूर्ण आस्था को श्रेयस्कर कहा है। संत कवि रैदास की बानियां देश के अन्य भागों के साथ-साथ विंध्य क्षेत्र में भी बड़ी भाव-भक्ति से गाई जाती हैं, और स्थान-स्थान पर उनके गुरुद्वारे बने हुए हैं। उनके अनेकानेक अनुयायी स्वयं को रैदास कहते हैं।

प्रणामी मत के प्रवर्तक महाराजा छत्रसाल बुंदेला के धर्मगुरु स्वामी प्राणनाथ जी का आगमन भी इस क्षेत्र में हुआ है। उनके पंथ के अनुयायी समस्त विंध्य क्षेत्र में आज भी अत्यधिक संख्या में हैं। पन्ना स्थित प्राणनाथ का मंदिर पूरे देश के प्रणामी मतावलंबियों का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान है। सारे देश के प्रणामी भक्त प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में आते हैं। पन्ना के अतिरिक्त प्राणनाथ के और भी कई छोटे-बड़े मंदिर विद्यमान हैं। इनका जन्म औरंगजेब के शासन काल में जामनगर काठियावाड़ में हुआ था, और 29 जून सन् 1694 ई. को चित्रकूट में अपने हजारों शिष्यों के समक्ष समाधिस्थ हुए थे। स्वामी प्राणनाथ जी एक अत्यंत जागरुक युगगुरु थे। वे विश्वधर्म की स्थापना करना चाहते थे। उनका प्रणामी धर्म अथवा निजानंद संप्रदाय व्यापक मानवधर्म का ही एक रूप है। इस धर्म के उपास्य क्षर-अक्षर से परे परमब्रह्म श्रीकृष्ण माने जाते हैं। इस संप्रदाय में सूक्ष्म भक्ति भाव और कर्म को प्रधानता दी गई है। मूर्तिपूजा इसमें स्वीकृत नहीं है। इस संप्रदाय में एकमात्र उपास्य ग्रंथ 'कुलजम स्वरूप' है। इन्होंने सभी धर्मो का समन्वय किया गया है। मध्य युग के अन्य संतों की भांति इन्होंने अविरोधी मानवधर्म स्वीकार कर, न केवल हिंदू और इस्लाम धर्म की एकता का समर्थन किया, बल्कि हिंदुओं के धर्मग्रंथ वेद, उपनिषद्, गीता और भागवत, मुसलमानों के धर्मग्रंथ कुरान, ईसाइयों के इंजील, यहूदियों के जंबूर तथा दाऊद पैगंबर के अनुयायियों के धर्मग्रंथ तोरेत में मौलिक एकता मानकर विश्वधर्म समन्वय का ऐसा स्वप्न देखा जो उस समय के लिए असाधारण कहा जा सकता है।

इन संतों के अतिरिक्त भक्तशिरोमणि कवि तुलसीदास जी ने इस क्षेत्र में भ्रमण किया है, तथा चित्रकूट में रहकर अपनी अमरवाणी का उद्घोष किया है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास का चिंतन मध्ययुगीन निर्गुनिया संतों से भिन्न है, फिर भी उन्होंने सगुण और निर्गुण दोनों की स्पष्ट व्याख्या की है। भगवान श्रीराम के जीवन-चरित के बहाने आम लोगों को मर्यादापूर्ण जीवन जीने का ढंग बताया है। इनका जन्म भी इसी क्षेत्र में चित्रकूट के निकट राजापुर गांव जिला बांदा में हुआ

था, जो वर्तमान में उत्तरप्रदेश में है। पूरे हिंदी-भाषी समुदाय में जन-जन में व्याप्त श्रीरामचरित मानस के रचनाकार तुलसी के जीवन से विंध्य की माटी का जुड़ाव इसको गरिमा प्रदान करती है।

इस प्रकार विंध्य भू-भाग संतों की प्रखर वाणी और उत्कृष्ट ज्ञान के प्रकाश से आलोकित रहा है, और आज भी है। सांप्रदायिक एकता, जाति-विहीन समाज की रचना, नैतिकता, कर्म के प्रति अनुराग, श्रम की प्रतिष्ठा, सेवा की उपयोगिता, सदाचार, सत्य अहिंसा और प्रेम इत्यादि उदात्त गुणों को प्राप्त करना ही संतों का लक्ष्य रहा है।

बघेलखंड : लोककला, परम्परा एवं संस्कृति

बघेलखण्ड के अंचल की तासीर कुछ भिन्न है। यहां के जन जीवन, पुरातन काल, इतिहास, कला, परम्परा, संस्कृति, चेतना में विविध रंग हैं। भारत की संस्कृति में इस अंचल की बड़ी साझेदारी है। संगीत, साहित्य, कला, नृत्य, धरती, पहाड़, नदियां, सब के सब भारत को श्रेष्ठ बनाने में ग़जब का हिस्सा इस अंचल ने लिया है।

क बाणभट्ट भंवरसेन में जन्मते हैं, बाणभट्ट की कादम्बरी और महाश्वेता की गीली अलकें विंध्याटवी में सूखती हैं, और कादम्बरी का पाठ सोन की तरंगें करती हैं। लेकिन, बाणभट्ट कश्मीर और पटना में गाए जाते हैं।

ख तानसेन बांधव दरबार के संगीतज्ञ हैं, लेकिन अकबर, विन्ध्य से सुरसंगीत छीन कर ले गया।

ग नर्मदा में शत्-शत् शिव गढ़ने की उमंग है, लेकिन शंकर की स्थापनाएं कहीं और होती हैं।

घ जब देश में सगुण-निर्गुण के बीच चौड़ी खाई बनती जा रही थी, तब यहां पर कबीर पर सगुणवादी टीका लिखी गई, यहां हिन्दी का पहला नाटक

लिखा गया लेकिन, सब बनारस चला गया।

ड चित्रकूट सवा बारह वर्ष राम-सीता को छाती से चिपकाए थपकी देता रहा, सवा बारह वर्ष तक सोया नहीं, राम में रामत्व भरता रहा। प्रमाण है, पंचवटी सो गई, सजग नहीं रही, तो सीता का हरण हो गया।

च आल्हा का देवी दर्शन और अखाड़ा मैहर में है, लेकिन उसके गीत महोबा में गाए जाते हैं।

छ प्रणाम सब हाथ जोड़कर करते हैं परंतु विंध्य ने अगस्त्य को दण्डवत् प्रणाम किया था। प्रणाम के इतिहास में यह पहला प्रणाम है कि उसे आज तक उठाया नहीं गया।

ज जिस समय दूसरी जगहों में वैष्णवों-शैवों के बीच, बौद्धों और जैनों के बीच, वाममार्गियों और दक्षिणमार्गियों के बीच पाशुपतों-पांचरात्रों के बीच, परम्परा-विवाद उग्र था, उस समय इन सब के बीच समरसता खोजने के प्रयत्न हुए। साक्षी के रूप में आज भी गुर्गी, बांधवगढ़, खजुराहो, भुमरा, सोहागपुर, माड़ा और भरहुत हैं।

भ ओरछा, रीवा, और पन्ना के नाम राजनीति के इतिहास में कभी खो भी सकते हैं पर, साहित्य के इतिहास में सर्वदा उजागर रहेंगे। यहां कवि की पालकी कहार के कांधे पर नहीं, राजा के कांधे पर चली है।

उक्त पुरातन संदर्भ मात्र 'फैशन' के लिए उद्घृत नहीं किए हैं, न ही इन संदर्भो की अस्मिता गैरहाजिर हुई है, न ही विंध्याटवी की धरा ऊसर हुई है। जरूरत इस बोध की है कि पहले जो हुआ, उससे बेहतर अब करें। विंध्य में जो शुभ हो, उससे पहले विंध्य शोभा पाए। पड़े हुए आलसी लोगों को उठना होगा। ताजा इतिहास बनाना होगा।

क – आदिम जन–जीवन

नंग-धड़ग, कमर के पास लट्ठा का पुछेटा, बस। महुआ, ऊमर, बरगद, पीपल, जिमीकंद खाकर जीते रहे हैं, और जी रहे हैं। शिकार करना, जंगल-जंगल भटकना, पत्थरों की कठोरता से टकराना, जंगली भैसों, सुअरों से लड़ना, धनुष-तीर चलाना, नाचना-गाना, तुरही-मादल बजाना आदिम जातियों का मरना-जीना है। मस्त-बेपरवाह रहना इनकी जिन्दगी का गायत्री छन्द है।

ख – सामान्य जन

गुबरीले-घमीले गांव, उदास-थके लोग।

डलिया सूप बिनते बसोर

पनही खीलता चमार

पालकी ढोता-हांफता कहार

कौरी ढोता कोल

बकरी चराता अहीर

डांड़ी मारता बनिया

हल जोतता हरवाहा

बोझा ढोती हरवाहिन

गाय-बैल चराता चरवाहा

यह जन -

किसी गांव में गाली खा रहा है

किसी गांव में पीठ पर कोड़े सहकर

किसी गांव में गोदली की जर खन कर पेट पाल रहा है

फिर भी उटंग बंडी, उटंग धोती पहने हुए,

ढोलक, नगरिया, खंजनी बजा रहा है।

डफला, धुतुआरा बजा रहा है।

पैरों में नृत्य है, कंठ में कजली हिन्दुली...

तथा बिरहा के स्वर हैं।

यह सामान्य जन विंध्य की धरती को

कला, संस्कृति एवं गुणवत्ता से भरता चला आया है।

ग – विप्र जन

कही ढोंग है, कहीं पोंग है, कही चंदन है

कहीं जनेऊ है, कहीं शिखा है, कहीं पत्रा है

कहीं पत्री है, कहीं कथा है, कहीं सुदिन है,

कहीं पंडिताई है, कहीं सचमुच में विद्वताई है,

कहीं-कहीं तो ग़जब के पंडित हैं।

लेकिन समरसता नहीं है, समन्वय नहीं है।

सामान्य जन को पोथी-पत्रा में बांधे हुए फिर रहे हैं।

घ – सामंत जन

सामतों, जमींदारों के घोड़ों की टापों से

गांव का कांपता हुआ कांव,

कोड़ों की फटकार से सहमा जन-जीवन,

सामंत की मदभरी तरेरती आंखों से

सहमी-दुबकी - गुलबसिया, रतिया, रधिया।

सामंत की मूछों की ऐंठ से, सिसकता किसान,

खलिहान में लगी आग की घुंध से चुंधियाता किसान।

लेकिन सब कुछ ऐसा ही नहीं।

अपने गांव के गरीब की सहायता करता सामंत,

लड़की के विवाह में गेहूं चावल देता सामंत

भी है।

बघेलखण्ड का तितर-बितर जीवन। यहां का जीवन कभी समरस नहीं रहा, ऊंचाई-निचाई का भेद रहा। गरीब-अमीर की खाई रही। पागा-पगड़ी, सभ्य-असभ्य की घिन रही। चमरौरी टोला, बम्हनौटी टोला का परहेज रहा। यही कारण है कि समाज खिलखिला नहीं सका। ठठ्ठा मार के हंस नहीं सका। घिन, पीक, भेद, ईर्ष्या में आदमियत हांफती रही। एक-दूसरे की बातें एक साथ कम हुई। गरीब के घर का ठाठ-छप्पर चढ़ाने के लिए अमीर की बाहें ऊपर नहीं उठीं, गरीब की लाश को उठाने, अमीरों के कांधे आगे नहीं बढ़े। यही सब बिन्दु हैं और रहे हैं, कि उच्चवर्ग, सर्वहारा वर्ग का हृदय एक दूसरे से मिठास से नहीं भरा, और आज उसी का परिणाम है कि सर्वहारा वर्ग सिसकती ललकार की मुद्रा में आ रहा है, ज्वालामयी हो रहा है।

किसी के घर

रोटी

कृष्ण पक्ष के चांद के समान

घटते-घटते

अमावस्या हो गई है।

किसी के घर

धोती

फटते-फटते

लंगोटी हो गई है।

किसी के घर

महतारी की दुलार भरी

महुआ सी बोली

अभाव में

खोंखिआते-खोंखिआते

कडुआई नीम हो गई है।

साजन का

खाया-अघाया चेहरा

देखने की साध लिए

कितनी दुल्हनें मर चुकी हैं।

यह सब तब भी था, अब भी है। बड़ा आश्चर्य होता है कि मनीषी, इतिहासकार, चिंतक कहते हैं कि यहां बुद्ध आए थे, महावीर आए थे, राम रहे हैं, तब फिर उनका जीवन-आदर्श क्यों नहीं क्रियान्वित हुआ इस भूमि पर?

बघेलखण्ड की कलायें

अफ्रीका के आदिवासी ने अमरकंटक के आदिवासी को कब चिट्ठी लिख दी! लद्दाख की द्रोगपा जातियों ने करन पठार (शहडोल) के गोंड़ बैगाओं से कब सलाह कर ली, कि अफ्रीका से, लद्दाख से, सीधी-शहडोल तक की आदिम जातियां एक तरह जी रही हैं, एक तरह नाच रही हैं!

अरब देशों से, जापान से, अफ्रीका से, काला-काला, स्याह-स्याह रंग कैसे यहां उड़ के आया और यहां से रंग उड़ के कैसे वहां गया, जो अदिवासी यौवनाओं के अंगो में लाख-लाख कोस की दूरी पर एक तरह के चित्र उभर रहे हैं!

और इससे भी बड़ा आश्चर्य - उपनिषद् का वह सत्य कहां पढ़ लिया कि 'एको न मोदते', अकेला मनुष्य आनन्द नहीं मना सकता ! यह उपनिषद् का ही सत्य है कि सायंकाल झुकपके में बैठकर सहभोज, सहपान गुफा के अंधेरे में निर्विकार और निर्वसन सोना, सहनृत्य, सहमस्ती और जी भरकर जीना, अंगो को रेखाओं से सजाना, तरह-तरह की रंगबिरंगी सीपियों से अंगों को रूपायित करना, आदिम जीवन की रंग और रस से लबालब भरी जिन्दगी लोक कलाओं के पवित्र अध्याय हैं।

विंध्यांचल में अमरकंटक, मझौली, मड़वास, कुसमी, करनपठार, वसनिहा के गोंड़-बैगाओं के करमा शैला। नवरात्रि के दिनों में मैहर में शारदा देवी के गीत, काली और जवारों का नृत्य, देवतालाब रीवा, बिरसिंहपुर सतना, बढ़ौरा सीधी में बमभोलिया के गीत, चित्रकूट में दीवाली पर्व पर मंदाकिनी-पयस्विनी की धाराओं में लाख-लाख दीपों की ज्योति के साथ राम-सीता के दुःख दर्द भरे गीत, सोने के तट पर मकर संक्रान्ति के पर्व पर देवलोन्द, गऊघाट भमरसेन के मेले में

लोककलाओं के प्रदर्शन से, लोकगीतों की कूक से, विंध्यांचल की घाटियां गुनगुना उठती हैं।

उक्त संदर्भ बघेलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत हैं। लोक-जिन्दगी की रहाइश है, लोक की अपनी आस्था है, लोक की अपनी रीति और नियति है।

गुदना कला

अंग आलेखन, अंग चित्रांकन, अंगों पर व्याख्यान लिखने की प्रथा पुरातन है। सोन और नर्मदा के तटों पर वास करने वाली जातियां पहले शत-प्रतिशत अंगों पर प्रतीकों, बिम्बों एवं चिन्हों को अंकित करती थीं। अगड़ी जातियां भी, पिछली जातियां भी।

गुदना की कला आज भी विध्यांचल में जीवंत है। गोंड़, भील, बैगा, कंजर, बसदेवा, पासी, कंहार, महार, बसुहार, अहीर, जाति की नारियां थोड़ा-सा टस से मस हुई हैं। कारण साफ है, नागरिकों का प्रवेश ग्राम्याओं और वन्याओं तक होने लगा है। यात्रायें सुलभ हो गई हैं। वन्यायें सीधी, सिंगरौली, मझौली, शहडोल, बुढ़ार, रीवा, सतना के शहरों की घटित घटनाओं से प्रभावित हुई हैं। सिनेमा, दूरदर्शन की विज्ञापित नारियों की अलंकारहीनता ओर वेपरदगी को देखकर उनके अंगों के चित्रों की काली रेखा कम हुई है, लेकिन गायब नहीं हुई है।

गुदना कला, नारियों में सौन्दर्य की वृद्धि के रूप में प्रचलित हुआ, अफ्रीका, अरब और जापान में भी नारियों के अंगों पर रेखांकन करने की प्रथा है। उच्च जाति की नारियों के हाथों में अपने प्रिय का नाम, बाहुओं में अपने उपास्य की आकृतियां अंकित करवाना आज भी जारी है। सीधी-शहडोल, की आदिवासी नारियां हाथ, पैर, जांघ, छाती, कपोल, चिबुक और माथे पर गुदना गुदवाती हैं।

आभूषण कला

राजा की रानी पालकी से जब अपना पहला पैर राजमहल में उतारती थी, तो पैरों में सोने का नूपुर होता था। साड़ी की घूंघट वाली किनारी पर चांदी की कटोरियों की लट टंकी रहती थी। साड़ी के पल्ला या आंचर पर चांदी की झनझुनियां टंके रहने का रिवाज था।

आभूषण सर्वदा लोकप्रिय श्रृंगार रहा है। वैदिक युग से लेकर कलियुग तक। देवी, देवता, राक्षस, राक्षसियां, वानर, वानरी, यक्ष-गंधर्व, किन्नर, मानव, मानवी सभी बहुत रुचि के साथ आभूषण धारण करते थे। सीता को अनुसूइया ने समस्त अंगो के आभूषण धारण करने के लिए दिये थे। सीता वन में थीं, तपस्या के दिनों में थीं। राम के साथ थीं। राम के लिए वन की शर्त थी -

चौदह वर्ष राम वनवासी।

तापस वेश विशेष उदासी।।

लेकिन सीता राम के साथ उदासी की स्थिति में भी आभूषण का लोभ नहीं त्याग सकी थीं। विप्पति में पड़ गईं, हरण हो गया। उदास राम, सीता के पहने हुए आभूषण कभी देखे नहीं थे। सुग्रीव-हनुमान जब आभूषणों की पहचान कराने लगे तो राम ने स्पष्ट इंकार कर दिया, मैं कोई आभूषण नहीं पहचानता, लक्ष्मण तुम बताओ -

"नाहं जानामि केयूरे,

नाहं जानामि कुण्डले।

नूपुरे त्वभिजा नाभि,

नित्यं पादामि वन्दनात्।।

लक्ष्मण ने बता दिया नूपुर के अतिरिक्त कुछ नहीं पहचानता। कुल

मिलाकर आभूषण, नारियों, बालाओं, कन्याओं को आकर्षित करता है।

बघेलखण्ड के आभूषण

" रीमा कै गोरी, गहोरा कै झुलनी "

इस लोकगीत की अर्द्धाली में रीवा की गोरी अन्य अंचलों की गोरियों से सुन्दर और सुघड़ निरूपित की गई है। जैसी जातियां हैं, वैसे ही आभूषण हैं।

कंदराओं, जंगलों और नदी के किनारे बसने वाली वन्याओं ने पहली बार सेमल, टेसू के फूल, केला के फूल तथा विभिन्न प्रकार की पत्तियों, सीपियों-घोंघियों से अपने अंगों को सजा कर प्रियतम को विहंसित कर दिया था। पत्ते की झोपड़ी में रहने वाली, माटी के घरौंदे में रहने वानी ग्राम्याओं में धीरे-धीरे गिलट के आभूषण प्रचलन में आए। मध्यमवर्गीय नारियों में सोना-चांदी का प्रचलन हुआ। राजा-रानियों में हीरा, जवाहर, पन्ना, मूंगा, नीलम, मोती, सोना, चांदी की शान रही।

बघेलखण्ड राज्य स्थापना काल में जैसे विभिन्न वर्गो में विपन्नता-सम्पन्नता के अनुसार आभूषणों का प्रचलन था, उसी प्रकार आज भी है।

बघेलखंड : साहित्यिक परम्परा

विन्ध्य की साहित्य परम्परा का प्रस्थानबिन्दु जगनिक का 'आल्हखण्ड' तथा बान्धवेश कर्णदेव के शासनकाल में लिखा गया ज्योतिष ग्रंथ 'सारावली' को माना जा सकता है। महाराज कर्णदेव के पश्चात लगभग 250 वर्षों तक साहित्य-सृजन की धारा क्षीण रही। सोलहवीं शताब्दी में महाराज वीरदेव, वीरभान, रामचन्द्र और वीरभद्र के काल में प्रसुप्त धारा को पुनः गति मिली। यद्यपि ये नरेश स्वयं कवि नहीं थे, फिर भी इनका साहित्यानुराग विन्ध्य की साहित्य परम्परा में मील का पत्थर है। इस काल में साहित्य की लोकव्यापी सगुण और निर्गुण भक्ति धारायें विन्ध्य की साहित्य परम्परा में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। कबीर की गद्दी के उत्तराधिकारी धर्मदास, ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। धर्मदास बान्धवगढ़ के निवासी थे। महाराज रामचन्द्र, वीरभान और वीर सिंह, तीनों नरेश, कबीर के शिष्य माने जाते हैं।

सेन नाई सगुण धारा की रामाश्रयी शाखा के कवि रहे हैं। रघुराज सिंह ने अपने भक्तमाल 'राम रसिकावली' में इनका उल्लेख किया है -

बान्धवगढ़ पूरब जो गायो ।
सेन नाम नापित तहं जाओ।।
ताकी रही सदा यह रीति ।
करत रहै साधना सों प्रीति।।
तहं को राजा राम बघेला।
बरन्यों जोहि कबीर का चेला।।

कृष्ण भक्ति शाखा का अधिग्रहण ओरछा के कवि मधुकर शाह ने किया। मधुकर शाह को ओरछा वृन्दावन की भांति प्रिय था-

ओरछौ वृन्दावन सो गाँव।

गोवरधन सुख-शील पहरिया

जहाँ चरत तृन गाय।।

हरी राम, मनसाराम, कृपाराम और चतुर्भुज आदि ओरछा से जुड़े कवि हैं। अलंकारवादी कवि आचार्य केशव की साहित्य साधना -स्थली भी ओरछा ही है। आचार्य केशव की मान्यता है कि -

"जद्यपि सुजाति सुलच्छनी,सुवरन सरस सुवृत्त।

भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता भित्त ।।"

श्रृंगार का इन्द्रधनुषी आभामण्डल विन्ध्य की साहित्य परम्परा की निजता है। दतिया निवासी पृथ्वीसिंह रसनिधि का नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। रसनिधि की तेरह रचनाओं का उल्लेख मिलता है। विष्णुपद और कीर्तन, बारहमासी, हिंडोरा रसनिधि की कविता, स्फुट दोहा, रसनिधि सागर, रतन सागर, गीत संग्रह, अरिल्ल, विष्णु पद कवित्त, रतन हजारा, और रसनिधि के दोहे। बक्सी हंसराज, रूप सिंह, हरि सेवक मिश्र तथा ब्रजेश के नाम भी इसी परम्परा में है। ब्रजेश की ये पक्तियाँ कितनी रससिक्त हैं -

"छैल मन मोहन की छवि में छकी ही छिन,

एकहूँ न भूलत लगाई प्रेम डोरी है।

भनत ब्रजेश साँची सरल सुभाय भरी,

चाय भरी वृन्दावन चन्द की चकोरी है।।"

विंध्य में साहित्यसृजन का चरमोत्कर्ष उन्नीसवीं शताब्दी में दिखाई पड़ता है। बांघवेश विश्वनाथ सिंह और रघुराज सिंह इस कालखण्ड के अग्रणी सृजनधर्मी हैं। विश्वनाथ सिंह का हिन्दी और संस्कृत पर समान अधिकार रहा है। इनकी श्रेष्ठ

कृति 'आनन्द रघुनन्दन' को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया गया है। किला रीवा के ग्रंथालय में विश्वनाथ सिंह की रचनाओं का विवरण इस प्रकार है -

हिन्दी में - परमतत्व, आनन्द रघुनन्दन, संगीत रघुनन्दन, गीत रघुनन्दन, व्यंग प्रकाश, विश्वनाथ प्रकाश, आहिक यष्टयाम, धर्म शास्त्र त्रिंशत् श्लोकी, परम धर्म निर्णय, पाखण्ड मण्डिनी कवि, शस्त्र शतक, ध्रुवाष्टक, अयोध्या महात्म्य, अवध नगर का वर्णन, फुटकर भजन।

संस्कृत में - तत्वमस्पर्थ सिद्धान्त भास्य, राधावल्लभी भास्य, रामगीता की टीका, सर्व सिद्धान्त की टीका, राम रहस्य की टीका, राम मंत्रार्थ की टीका, सुमार्ग स्त्रोत, वैष्णव सिद्धान्त, धनुर्विद्या, राम सागराहिक, संगीत रघुनन्दन, मुक्ति-मुक्ति सदानन्द संबोध, राम चन्द्राह्निक, दीक्षा निर्णय, सुमार्ग की टीका ज्योत्सना, राम परत्व, वासुदेव सहस्त्रनाम मुक्ति प्रभा।

महाराज रघुराज सिंह को रचनाधर्मिता विरासत में मिली। इनकी रचनाओं का विवरण सरस्वती पुस्तकालय रीवा के अनुसार निम्नवत् है -

1, आनन्दामबुनिधि 2, रूकमिणी परिणय 3, भ्रमर गीत 4, हनुमान चरित 5, रघुपति शतक 6, परम प्रबोध 7, शम्भु शतक 8, जगन्नाथ शतक 9, रघुराज मंगल 10, व्यगार्थ चन्द्रिका 11, विनय प्रकाश 12, भक्तमाल 13, भक्ति विलास 14, विनय पत्रिका 15, गद्य शतक 16, राम स्वयंवर 17, राम रंजन 18, जगदीश शतक 19, नर्मदाष्टक 20, सुधर्मा विलास 21, रामष्टायाम ।

रघुराज सिंह, रचनाकारों के आश्रयदाता थे। भक्ति और श्रृंगारपरक गीतों के रचयिता मधुरअली को राज्य-कोष से एक सौ पचास रुपये की साहित्यिक वृति मिलती थी। मधुरअली का पूरा नाम छोटेलाल सिंह था। इनकी रचना 'युगल विनोद' लोक मानस की धरोहर है।

प्रकृति ने विन्ध्य-वसुन्धरा को सधे हाथों संवारा तथा मुक्त हस्त से

मानवीय मूल्यों को लुटाया है। इसका स्पष्ट प्रभाव विन्ध्य की साहित्य सर्जना में दिखाई पड़ता है। इतिहास बोध, राष्ट्रीयता का उदय, समाजवादी चिन्तन तथा सामन्तवादी व्यवस्था के विखण्डन ने सृजन-प्रक्रिया के लिए उर्वरक का काम किया है। विन्ध्य की साहित्य परम्परा ने निस्संकोच तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से रस ग्रहण किया है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह का कृतित्व इस बात का प्रमाण है। युगदृष्टा कवि ने ऐसी कविताएं लिखी हैं, जो उन्हीं के खिलाफ जाती हैं। गोपालशरण सिंह ने अपनी कविता के केन्द्र में गरीब, मजदूर, शोषित और पीड़ितों को रखा है। उनको पता था कि उनकी कविताओं के प्रभाव से यह वर्ग जागेगा, अंगड़ाई लेगा, और उन्हीं सामंतों के विरुद्ध खड़ा होगा, जिनके बीच से वे स्वयं निकले हैं। फिर भी, कवि ने संकीर्ण स्वार्थ की चिन्ता नहीं की, ईमानदारी से कवि कर्म का निर्वाह किया।

छतरपुर से सम्बंधित वियोगी हरि का सर्जनात्मक अवदान अविस्मरणीय है। उनकी 15 कृतियां प्रमाणित हैं- प्रेमाजंलि, प्रेम पथिक, प्रेम शतक, प्रेम परिचय, मेवाड़ केशरी, शुकदेव, असहयोग वीणा, वकील की राम कहानी, चरखे की गूंज, कवि कीर्तन, वीर वाणी, वीर सतसई, श्री गुरू पुष्पांजलि, मन्दिर प्रवेश, तथा अनुराग वाटिका।

दुआरी रीवा के रचनाकार पंडित परशुराम पाण्डेय की अमृत रचना, 'वह शक्ति हमें दो दयानिधे ...' आज भी बालकों की प्रिय प्रार्थना है। विन्ध्य की साहित्य परम्परा में कवियित्रियों की भूमिका भी सराहनीय रही है। महाराज रघुराज सिंह की धर्मपत्नी कीर्तिकुमारी, व्यंकटरमण सिंह की पुत्री सुदर्शन कुमारी, और एक अन्य कवयित्री चन्द्रमुखी ओझा सतत् साहित्य-साधिका रही हैं। कीर्ति कुमारी के 24 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है - कीर्ति सुधा, कीर्ति लता, कीर्ति रमण, ज्ञान दीपा, ज्ञान माला, भक्त प्रभाकर, राधा कृष्ण विनोद, जगदीश कीर्तिशतक, कीर्ति शिरोमणि, कीर्ति बहार, कीर्ति निधि, कीर्ति त्रिवेणी, कीर्ति कौमुदी, कीर्ति

किरण, कीर्ति भास्कर, कीर्ति प्रकाश, कीर्ति कली, कीर्ति प्रमोद, कीर्ति चिन्तामणि, कीर्ति जया, कीर्ति माधुरी, कीर्ति गोविन्द, कीर्ति गंगे, एवं कीर्ति पुष्पांजलि।

माधवगढ़ जिला सतना निवासी हर शरण शर्मा, शिव राधिका प्रसाद, राधिकेश के पुत्र अम्बिका प्रसाद 'अम्बिकेश', अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' की साहित्य साधना विन्ध्य की साहित्य परम्परा की अक्षुण्ण धरोहर हैं। दिव्य जी बुन्देलखण्ड लोक साहित्य, संस्कृति, कला और इतिहास के विश्वसनीय विद्वान रहे हैं। वे कथाशिल्पी और चित्रकार भी रहे हैं। गोपाल शरण सिंह के आत्मज सोमेश्वर सिंह की चार कृतियां प्रकाशित हैं।

लोककवि बैजनाथ 'बैजू', बघेली के अनन्यतम रचनाकार हैं। बैजू की सूक्तियां लोककंठ में आज भी बसती हैं। सैफुद्दीन 'सैफू', रामदास पयासी और हरिदास इसी परम्परा के लोककवि हैं। बघेलखण्ड की लोककथाएं और लोकोक्तियों का संकलन रामदास प्रधान ने किया, लखन प्रताप सिंह 'उर्गेश', सतना ने बघेली लोकगीतों का संग्रह कर बघेली लोक साहित्य की श्रीवृद्धि की।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म झगरपुर जिला उन्नाव में भले ही हुआ हो, किन्तु उनकी आरम्भिक शिक्षा रीवा में हुई, और यहीं से उनकी साहित्य साधना का यज्ञ प्रारम्भ हुआ।

विद्रोही कवि शेषमणि 'रायपुरी' ने अपनी समर्थ काव्यचेतना से विन्ध्यांचल को गौरवान्वित किया। 'बागी की डायरी' (अप्रकाशित) और 'कैकेयी' खण्डकाव्य मणि जी की श्रेष्ठ कृतियां हैं। सिद्ध विनायक द्विवेदी एक सिद्धहस्त रचनाकार रहे हैं। द्विवेदी जी के उपन्यास 'प्यासी मीन' का अनुवाद रूसी भाषा में हुआ है। उनके इस प्रसिद्ध उपन्यास का रेडियो-नाट्य धारावाहिक भी बनाया गया, जिसका नाट्य रूपांतरण योगेश त्रिपाठी ने किया। समाजवादी चिन्तक जगदीश चन्द्र जोशी मूलतः कवि हुए हैं। विन्ध्य और ऋषि अगस्त के मिथक पर आधारित उनका 'शैल रेखा' काव्य, हिन्दी साहित्य का गौरव है। डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल के

अनेक आचंलिक उपन्यास विन्ध्य की माटी के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। डॉ. शुक्ल का शोधग्रंथ 'बघेली भाषा का इतिहास' बघेली लोकसाहित्य को उजागर करने का प्रथम और अब तक का श्रेष्ठतम प्रयास है। आदित्य प्रताप सिंह अपने गद्य काव्य, कविताओं और कहानियों के लिए तो स्मरण ही किये जायेंगे, किन्तु उनका सर्वाधिक साहित्यिक योगदान जापानी छन्द 'हाइकू' की तर्ज पर बघेली हाइकू की संरचना है। ज्योतिप्रकाश सक्सेना (छतरपुर) भगवान दास सफड़िया (सतना), धन्य कुमार सुधेश (नागौद), आदि प्रभृति रचनाकारों ने विन्ध्य की साहित्य-परम्परा को निरन्तर गतिशील रखा है। प्रो. महावीर प्रसाद अग्रवाल, राम सागर शास्त्री, कुंवर सूर्यबली सिंह, अख्तर हुसैन निजामी, हरि कृष्ण देवसरे, प्रद्युम्न सिंह की सृजन-क्षमता और साधना-दृष्टि से विन्ध्यांचल का साहित्य-लोक आलोकित हुआ है।

विंध्य से समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता आया है। 'प्रकाश' का प्रकाशन सामंत युग में हो रहा था। दैनिक जागरण, कीर्तिक्रांति, कीर्तिप्रभा, आलोक यहां से प्रकाशित होने वाले प्रमुख समाचार पत्र हैं। वाटिका, गांवदेश आदि साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिकाएं यहां से प्रकाशित हुईं। वर्तमान में उपनयन और टेसू केर फूल पत्रिकाएं बघेली साहित्य परिषद् सीधी के सौजन्य से हो रही हैं।

काव्य पाठ और मंच के माध्यम से विन्ध्य की साहित्य परम्परा में योगदान देने वाले रचनाकारों में शम्भू द्विवेदी 'काकू', अमोल बटरोही, देवेन्द्र बेधड़क, गिरिजाशंकर गिरीश, कालिका त्रिपाठी, सुदामा शरद, राजीव लोचन शर्मा, हसन रीवानी, नूर रीवानी, रफीक रीवानी, रदीम रीवानी, शिवशंकर त्रिपाठी शिवाला, रामलखन जलेश, सत्येंद्र सेंगर, सुधाकांत बेलाला, बाबूलाल दाहिया, डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस, डॉ. सुमेर सिंह शैलेश, अंजनी सिंह सौरभ, हरिनारायण सिंह हरीश, डॉ. देवेन्द्र द्विवेदी देव, पारस नाथ मिश्र, प्रमोद वत्स का नाम उल्लेखनीय है। घनश्याम सिंह, बी. सिकन्दस्स, कृष्णनारायण सिंह, धन्यकुमार सुधेश, उर्मिला

प्रसाद, डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी, नीरज जैन, देवीशरण ग्रामीण, सूर्यप्रकाश गोस्वामी, राम प्रसाद शास्त्री, डॉ. सुरेन्द्र भटनागर, प्रमोद पाण्डेय नीलकंठ, भैरवदीन मार्तण्ड, की सक्रिय सृजनधर्मी ऊर्जा से विन्ध्य की साहित्य परम्परा परिपूर्ण है।

डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, सतना, डॉ. सुधाकर तिवारी, डॉ. चन्द्रिका 'चन्द्र', डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी, डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, डॉ. नागेन्द्र सिंह 'कमलेश', डॉ. कौशल मिश्र, डॉ. अभयराज त्रिपाठी आदि का अवदान विन्ध्य की साहित्य परम्परा की दिशा और दशा का मूल्यांकन है। डॉ. अब्बास अली फरहत, दर्शन 'राही', डॉ. लहरी सिंह, डॉ. रामलला शर्मा, डॉ. हीरालाल शुक्ल, डॉ. सतेन्द्र शर्मा, विन्ध्य की साहित्य परम्परा के विकास में अनवरत सक्रिय रहे हैं। नई पीढ़ी में योगेश त्रिपाठी (नाट्यलेखन) के नाटक दिल्ली, मुंबई, लखनऊ, भोपाल जैसे बड़े शहरों में खेले जा रहे हैं, डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस के उत्कृष्ट बघेली अवदान के लिये अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय द्वारा "डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस का काव्य-लोक : एक अध्ययन" विषय पर लघुशोध प्रबंध लिखा जा चुका है, इससे बघेली के साहित्य को सम्बल एवं प्रोत्साहन मिला है, रचनाकार के लिये यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, इतना ही नही डॉ. सरस की पाँच बघेली कविताएँ एवं जीवन परिचय बी.ए. फाइनल (हिन्दी साहित्य) के पाठ्यक्रम में ससम्मान पढायी जाती हैं। डा. विवेक द्विवेदी, डा. लालजी गौतम, ओमप्रकाश मिश्र (कहानी और उपन्यास) की रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छप रही हैं। विन्ध्य की साहित्य परम्परा, शैली और प्रवृत्ति की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के साथ निरन्तर जुड़ी रही है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग की सचेष्ट सृजन प्रवृत्तियों की धड़कन विन्ध्य की साहित्य परम्परा में सुनाई पड़ती है।

लोक साहित्य : धरती गाती है तरह-तरह के गीत

रूपयानी !

आज का बुद्धिजीवी पढ़ रहा है, लेकिन पुराण, शास्त्र, बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति को नहीं। न ही उसने कोई सांस्कृतिक वातावरण ही पैदा किया है। वह अपने अंचल के जन-जीवन, लोककला, परंपरा तथा संस्कृति की अनभिज्ञता जताता है। पारंपरिक संस्कारों से इंकार करता है। उत्तर देना तो दूर, आज प्रश्न करना भी भूल गया है। वास्तव में आज उसे प्रश्न करना ही नहीं आता। जिंदगी की जरूरतें नहीं समझता, फिर भी हंसी-ठठ्ठा कर अपने को खुश बताता है। मनुष्य की यह कितनी बड़ी आत्मघाती प्रवृत्ति है, उसका यह श्मशानी रवैया कितना खतरनाक है, वह नहीं जानता।

कहां है वह यक्ष ..... और कहां है वह युधिष्ठिर, जिसने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर न देकर, मरे हुए अपने भाइयों को जिलाया था ? और कहां है वह अष्टावक्र, जिसने जनक की सभा में देश के सभी पंडितों को चकित कर दिया था और शास्त्रार्थ में पराजित होने पर जल-समाधि से निकाल कर अपने पिता को मुक्त किया था ?

रूपयानी ! इस देश के जन-जीवन, इतिहास, कला, परंपरा, लोकसंस्कृति और लोकगीतों में बड़ा 'दम' है। भारत की संस्कृति के लिए इसके हर अंचल की बड़ी साझेदारी है। आज भी संदर्भो की अस्मिता गैरहाजिर नहीं हुई है, न ही धरती ऊसर हुई है। जरूरत इस बोध की है, कि पड़े हुए आलसी लोगों को उठाएं, और जो मन मर गया है, उस मरे हुए मन को पुनर्जीवित करें।

इतिहास साक्षी है कि जब-जब भारत की धरती पर विदेशी आक्रांताओं ने उसकी संस्कृति को विनष्ट करना चाहा, तब-तब लोक-मानस ने ही उसकी रक्षा की है। मैकाले जैसा आदमी यदि यह कह सका, कि भारत का साहित्य,

विदेश की तुलना में आलमारी के एक हिस्से-सा है, तो मैकाले ने केवल अपनी नीचता ही प्रदर्शित की है। उसने ईर्ष्या भाव से यह कहा है, क्योंकि उसे भारत के लोकव्यापी विराट साहित्य का पता नहीं था। दरअसल, यहां के लोकगीत और लोक कथाएं, भारत की जिंदगी का हिस्सा हैं। लोकगीतों की उपादेयता और उनकी विशेषता पूरी तौर पर भारतीय ही नहीं समझ पाए, मैकाले की समझ क्या रही होगी ?

लेकिन, सच यह भी है कि अब, इस सत्य से सूरदास बने रहना बड़ा ही घातक सिद्ध हो रहा है। दादी, नानी, चाची, मौसी की अर्थियां श्मशान पहुंच रही हैं, और उन्हीं अर्थियों के साथ, लोकगीत, लोक पुराणों की कथाएं भी भस्म हो रही हैं।

रूपयानी ! छुटपन की याद आ रही है। हमारे घर की महिलाएं दिन ढलते, दिया-संझबाती करके, आंगन में धान दर रही हैं, रोटी बना रही हैं, भिंडी-तरोई की सब्जी बना रही हैं। बच्चों को कथा सुना रही हैं, गीत गा रही हैं। फुफू, दीदी, दिद्दा, काकी, अम्मा, जुआं बीन रही हैं, मेंहदी लगा रही हैं। अपने-अपने मायके की सुधि कर रही हैं, वहां की सुनी हुई कथाओं और गीतों को यहां अपनी ससुराल में सुना रही हैं। बच्चों को नहला-धुला रही हैं, खेत में बोने के लिए बीज निकाल रही हैं, गीत गा रही हैं। इतने दिनों बाद भी वे मायके की याद में रो रही हैं। रूपयानी, याद आती है तो आंखें आंसुओं से नहा जाती हैं।

पंडित कुल का जातक हूं। घर में भागवत का पारायण होता था। रोज संपूर्ण 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ बाबा पंडित धर्मदत्त और बाद में, पिता पंडित कालिका प्रसाद त्रिपाठी किया करते थे। अठारहों पुराण अब भी हमारे परिवार में हैं, लेकिन भैया भारती त्रिपाठी की आलमारियों में बंद हैं। वे न पढ़ते हैं, और न पढ़ने को देते हैं। बेचारे पुराण सिसक रहे हैं।

है न यह अजीब संयोग कि ओसरिया में भागवत और दुर्गा सप्तशती का

पाठ होता था, और ओसारे में चूल्हे के पास दीदी से भूत-प्रेत, देवी-दानव, तोता-मैना, दुलहा बाबा, बसामन मामा की कथाएं सुनता था। हम बच्चे कभी ओसरिया में आभिजात्य पुराण सुनने नहीं गए, ओसारे में लोकगीत, लोक कथाएं सुनते-सुनते ही सोए हैं। गांव की बड़ी बूढ़ियां, फुफू, दूधी दिदी अपने कंठ से गीत उतार कर गांव की लड़कियों के कंठ पर चढ़ाती थीं। लड़की विदा के साथ अपने कंठ में गीतों को भर कर ससुराल जाती थी।

धरती का किसान हल जोतते समय, फसल काटते समय गीतों के छंद बोलता था, धरती की नारी अनाज पीसते हुए, पानी भरते हुए गीत गाती थी। प्राचीन भारत की समृद्धि और गौरव को आज भी ये ग्रामवासी, झोपड़ी वासी अपने गीतों में सुरक्षित रखे हैं।

रूपयानी, आज भी लोकगीतों की जरूरत है। कंठों से गीतों को खंगाल कर फेंकना नहीं है, अंधराना नहीं है। शुद्ध लोकगीतों में सिनेमाई गीतों को मिलाना बड़ा हानिकारक होगा, जैसा कि आजकल हो रहा है। यह तो वैसे ही हो जाएगा जैसे, शास्त्री जी, भाभी के हजार मना करने पर भी दूध में पानी मिला कर बेचते थे, और वह पनियल दूध फेंकने लायक ही रह जाता था। न दूध, न पानी। इसी प्रकार लोकगीतों में यदि आधुनिक छंदों का मिश्रण किया गया तो वह फिर फेंकने लायक ही होगा।

मेरे गांव के पड़ोस का गोंदुआ अहीर है। वह न रात देखता है न दिन। जब जैसा मन में भाव-कुभाव आया, उगल देता है -

हाथ गोड़ फूलि जइहीं, पेटवा निकरि अइहीं।
दक्खिन देश का पानी है, खराब रे बिदेसिया।।

कितना गहरा दर्द छितरा देता है गोंदुआ। यह गीत अंचल के हर गांव के कंठ का दर्द है। प्रिय परदेस जा रहा है, जहां जादू है, जहां का पानी खराब है।

कोई प्रिया अपने पति को कैसे परदेस जाने दे ? फिर भी यहां के लोग दक्खिन जाते हैं। उन्हें जाना पड़ता है। उनके घर की रिक्तता, खेतों का उजड़ापन, गरीबी की अ-सूझ उदासी, उन्हें धकेल देती है। गरीबी, पति को परदेस जाने के लिए विवश करती है। नदी, पहाड़ और धन की कमी उन्हें घर नहीं लौटने देती। पत्नी को पति से मिलने की वर्षो प्रतीक्षा करनी पड़ती है, वर्षो साधना करनी पड़ती है। लोक और जीवन के कवि कबीर को भी यह मालूम था -

आइ न सकौं तुज्झ पै, सकूं न तुज्झ बुलाय।
जियरा यों ही लेहुगे, विरह तपाय तपाय।।

लोकसंस्कृति की दृष्टि से अहीर अब भी एक जीवित जाति है। दुर्भाग्यवश उन्नीसवीं शती के नवाबी 'कल्चर' और उसकी वर्णसंकर उपज, तालुकेदार-जमींदार संस्कृति के उत्तराधिकारी, आज भारतीय जीवन पर छाए हुए हैं। इनके द्वारा निर्धारित मूल्य परंपरा, जो एक दोगली दरबारी संस्कृति पर अंग्रेजियत की कलम लगाकर तैयार हुई है, का विकासोन्मुख पिछड़ी जातियां भी अनुकरण करने लगी हैं। वे अपनी असली संस्कृति के संशोधन-परिष्कार की चिंता न करके, उसे हेय या त्याज्य मानने लगी हैं। यह एक तथ्य है कि उत्तर भारत में लोक संस्कृति बनी है, छोटी जातियों के भीतर ही।

रूपयानी ! अहीर का छोरा जब चांदनी रात में मन की सारी पीर और कंठ का सारा बल ढालकर एकांत को चीरता हुआ टेर उठाता है, तो उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम, चारों दिशाओं में 'प्रति-टेर' उठने लगती है -

भरा ताल जल लहकै, पुरइन लहरा लेय।
साजन के मिलन का, जिया लहरिया लेय।।

यह बिरहा, विरहणी नारी का है। जिस प्रकार भरे तालाब में पानी की हिलोरों से टकराकर पुरइन का पत्ता मथमथा जाता है, उसी प्रकार प्रियतम से

मिलने को मेरा हृदय मथमथा रहा है। इस मानव कंठ की साहसी उद्घोष की पीड़ा सुनकर गंगा का किनारा, बेतवा का पानी, चंबल का बीहड़, धसान की चट्टानें, तमसा का किनारा, सोन का बालू, सरयू-घाघरा के कछुए, यमुना के तट के करील, और नर्मदा के शंकर का हृदय गनगनाकर कंपायमान हो उठता है।

काली रात में न जाने कहां से स्वर उठ रहा है। टेर की प्रति-टेर आ रही है -

ऐ.... हे... हे... बर पाके, पीपर पाके, सुआ कनेठी देय।
पातर मुंह कइ छोकरी, मोर जिया लइ लेय।।

युवा अहीर, छरहरे अंगों वाली नववयी अहीरिन और उसके पतले मुख को पीपल, बरगद के फलों को खाते देखकर रसमय होकर उसके लिए तड़प उठता है। अपने प्रेमी को देखकर प्रेमिका भी कुहुक उठती है -

ए...हे... हे... हाय ! पतरैला हो जवान
देखइ मां लागे सुहावन रे... !!

रूपयानी, भय की काली रात में निराशा की नष्ट चंद्रनिशा में भी यह जाति जीवित है। सूर्य के अस्त हो जाने पर भी, चंद्र के अस्त हो जाने पर भी, अग्नि के शांत हो जाने पर भी यह जाति एकांत को वाणी से मथती हुई, परस्पर पुकारती है, और उत्तर देती है। लोकसंस्कृति की इस जीवित आग का उपयोग होना चाहिए। यदि अहीर युवक, अहीरिन युवती को गीत से पुकारता है, तो वह भी उसे गीत से ही पुकारती है, पीछे नहीं रहती -

कोइली ऐसे चिरई, सुरही ऐसी गाय।
साजन ऐसे मितवा, नित दरस दइ जाय।।

मेरा प्रिय, कोयल पक्षी, और सुरही (कामधेनु) गाय के समान मुझे रोज दर्शन दे जाया करे, क्योंकि उसकी बोली में बड़ी मिठास है और उसके गुण गाय

जैसे हैं। वह मुझे बहुत सुहावना लगता है। उसे देखने को जी तरसता है।

रूपयानी, इन गीतों की तथ्यात्मक सूत्रात्मकता को देखो ! दो पंक्ति के बिरहे में सौ पंक्ति की बात कही हुई है -

सुघड़ नारि ठंडे पिया, रैन अकारथ जाय ।

मुरगा पापी बोल दे, जो मुरदा उठि जाय ।।

नारियां सब तरह से दुःखी थीं। कभी गरीबी की मार से, कभी सास-ननद की मार से, कभी परदेसी पिया से, तो कभी नामर्द पुरुष से। इस गीत में तो नारी नव-वय की आंधी लिए हुए है, और पुरुष का तन-मन, दोनों मरा हुआ है। उसे नारी की सरसता से कोई मतलब नहीं है, इसलिए, युवती का दर्द गीतों में उबलकर खदबदा गया है। इसी प्रकार एक और बिरहा है -

कबहूं न हंसि पिय कर गहे, कबहुं न रिसि कर केस।

जइसे कंता घर रहे, तइसइ रहे बिदेस।।

'ओ सखी, मेरा प्रियतम चाहे घर रहे, चाहे बिदेस रहे, दोनों बराबर है। घर रहने पर भी उसका न अनुराग दिखाई पड़ता है और न की क्रोध। प्यार में आकर न कभी कलाई पकड़ता है और न क्रोध में आकर बाल ही खींचता है। बिल्कुल नीरस और ऊसर है।' नारी के जीवन की कितनी साफ और खुली कहानी कहते हैं ये गीत।

रूपयानी, देखो न ! कैसी-कैसी अभिव्यक्तियाँ हैं, कैसे - कैसे बोल हैं ... कैसे-कैसे दर्द हैं और कैसी-कैसी उक्तियाँ हैं !

नदी किनारे गेढ़रा, लफ-लफ दूनर होय।

दो गोरी के बालमा, सूख छोहारा होय।।

'दो नारियों वाला बालम उसी प्रकार सूख जाता है जैसे छुहारा।' यह

समझाइश है। मंत्र है, और सुझाव है। देश के हर पुरुष के लिए, कि नारी की बहुतायत में नहीं पड़ना चाहिए। दो नारी वाले पुरुष का शौर्य, उसका तेज सूख जाता है, और कुछ दिनों बाद उसका पौरुष भी समाप्त हो जाता है।

रूपयानी ! यहाँ पर कई ऐसे गीत हैं, जिनमें प्राचीन सभ्यता, संपन्नता, और वैभव का वर्णन है, तो दूसरी ओर ऐसे भी गीत हैं जिनमें विपन्नता, मँहगाई, अकाल, भुखमरी का वर्णन है। टूटे छप्पर और टपकती छान्ही का चित्र है -

जोन्हरी हो गई, मन भर की
मुंसी आए पटवारी आए
होन लगी कुरकी।
राजा के बांधन को पागा बिक गओ
हमरी बिक गई चुनरी।।
जोन्हरी हो गई मन भर की।।

गाँवों में विपन्न जीवन व्यतीत करने वाले किसानों की स्थिति अत्यंत करुण है। न भोजन के लिए अन्न है, न पहनने के लिए कपड़ा। किसानी में कुछ ज्वार मिला भी, तो मुंशी और पटवारी ले गए। और इस तरह की निर्धनता में छप्पर भी टपक रहा है -

टूट छपरबा टपकइ हो, अब कइसे छबाई।
जेठ छबाबइ आपन बंगला हो,
जेठनिया खड़ी मुस्काय।
देवरबा छबाबइ चौपरवा हो,
देवरनिया खड़ी मुस्काय।
हमरी ता भीजै चुनरिया हो,

मोरे बलम कइ पगड़िया,

अंखियां भरि-भरि आई हो।।

'जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी सब अपना-अपना घर छबा रहे हैं, छाजन सुधार रहे हैं। मेरा घर भरी बरसात में चू रहा है, टपक रहा है। जेठानी-देवरानी कड़ुई मुस्कान सहित देख रहे हैं, हमारी गरीबी पर हंस रहे हैं। मेरी चुनरी भीग रही है, प्रियतम की पगड़ी भीग रही है और... मेरी आंख भी भीग रही है।' रूपयानी, कैसी निरीहता है ! कैसी विवशता है !

गीत परिवर्तन के साथ ही रस परिवर्तन करते हुए इस गीत को सुनो, जिसमें धरती का श्रृंगार किया गया है -

धरती माता तैंने काजर दए, सेंदुरन भर लई मांग

पहिर हरियर धोती ठाढ़ी भई, तूने जान लए संसार।

धरती मैया तोरी, शोभा बरनि न जाय !

'काली घटाओं का आंखों में अंजन, मांग में लाल रंग का अरुणोदय और बदन में हरी-हरी फसल की साड़ी पहन कर तू धरती मैया बहुत सुंदर लगती है, तेरी शोभा तो अपार है धरती माता !'

रूपयानी, रामहित्त बाबा बताया करते थे, कि काशी में मणिकर्णिका घाट की चिता, अग्नि, और धरती के जनगीत अमर हैं। मणिकर्णिका घाट की अग्नि कभी बुझने वाली नहीं है, वहां रातदिन शव जलेंगे ही, उसी प्रकार धरती पर लोकगीत गाए जाते रहेंगे ही।

रूपयानी ! बाबा की वाणी कभी अकारथ नहीं गई। बाबा ने बताया है कि जिस दिन मणिकर्णिका घाट की अग्नि बुझी, और लोकगीत चुप हुआ, उसी दिन यह धरती समुद्र में डूब जाएगी।

ऋतु गीत – संस्कार गीत

संस्कार गीत

रूपयानी ! बंध्या की पीड़ा तो सभी जगह एक है, पर पीड़ा व्यक्त करने के तरीके अलग-अलग हैं। विन्ध्याचल के सोन और तमसा के मध्य रहने वाली नारियों की पीड़ा की जो अभिव्यक्ति है, वह मैं तुम्हें बताता हूं।

'बंध्या' नारी को लेकर जितना मंथन लोकगीतों में है, उतना मंथन शिष्ट साहित्य में नहीं है ! नारी बंध्या की पीड़ा का भार ढोते-ढोते गीतों में परेशान है। उसके हृदय में पुत्र के लिए संचित विभिन्न कल्पनाएं है। पुत्र होगा, उसके तरह-तरह के खिलौने होंगे, वह दौड़ेगा, नाचेगा, बोलेगा कितनी अंतहीन कल्पनाएं हैं ! पुत्र नहीं है तो पुत्र के खेलने वाले खिलौने से ही अपनी व्यथा कम करना चाहती है और अपने पति से कहती है -

'लील वरन घुनघुनमा, घुनघुनमा हम लेबइ हो।'

किंतु, पत्नी के सहज करुण भावों तक पति की पहुंच नहीं थी, वह उसे व्यंग्य वाणों से बेध देता है -

धौं तोरे खेलइ भइया, धौं रे भतिजवा
धौं तोरे ललनमा, घुनघुनमा का करिहउ हो।
पत्नी को पति की वंचना भरी वाणी से कष्ट होता है -
कहेउ मोरे मालिक बहुत कुछ, कहेउ न जान्या।
मालिक, मारितिउ कटरिया कै मार,
जिया तजि देतिउं हो।

समाज में यदि नारी का सम्मान है तो वह संतानवती का है। कोख सूनी निपूती का तो कोई अर्थ ही नहीं है। न उसे अच्छा खाना, न अच्छा वस्त्र और न

आभूषण ही मिलता है। देखो न रूपयानी ! वह नारी अपने पति से गले का एक साधारण आभूषण मांग रही है -

डेहरी कै ओट धनि ठुनकंइ, त ठुनुन-मुनुन करैं।
हमरे तिलरिया कइ साध,
तिलरिया हम पहिरव हो।।

पति से कितनी आत्मीयता से कहती है। नयनों की भंगिमा बदल कर कहती है। उसमें लगाव है, प्रीत है, पर उस जड़ पति के वचन तो सुनो, क्या कहता है -

एक तो काली कोइलिया,
तो दूसरे छछुंदर हो।
तेहरे तिलरिया कइ साध,
तिलरिया नहिं साहइ हो।
इस कटु वचन को सुनकर, पत्नी तिलमिला जाती है -
एतना वचन रानी सुनिन
त मन मा वियोग भए,
जियरा दुखित भए हो !

पति की घृणित-नीच वाणी से आहत होकर अंतरिक्ष के पितरों, देवी-देवताओं की ओर अदृष्य में प्रार्थना करती है और उसकी प्रार्थना की अर्जी स्वीकार कर ली जाती है, उसे पुत्र की प्राप्ति होती है। अपमान का जहर पीते-पीते थक गई थी, और अब उसे अमृत वचनों से स्नान कराया जा रहा है। उसका पति तिलरिया लेकर स्वागत के लिए उपस्थित हो जाता है। तब, पत्नी की सोई पीड़ा जाग उठती है, उसका नारीत्व सहज स्वाभिमान से व्यक्त हो उठता है -

राजा, हम धना कारी कोइलिया।

तिलर नहिं सोहइ हो।

हमरे पलंग नहिं बइठा, सामर होइ जइहा हो।

राजा, होरिला दिहिन भगवान, त हमरे करम तें।

अब, पायन रतन अमोल, तिलरिया का करवइ हो।

पत्नी ने पुत्र प्राप्त कर लिया, मानो सब कुछ प्राप्त कर लिया। गोद भर गई, अब उसे आभूषण की जरूरत नहीं है। वह अपने पति को सटीक उत्तर देती है कि यह जो पुत्र हुआ है, वह मेरी तपस्या का प्रतिफल है, वह मेरा कर्म है, वह मेरा अनमोल रतन है।

रूपयानी ! इस गीत की तासीर देखो, इस गीत का रंग-विरंग देखो ! और देखो, घृणित व्यवस्था का घृणित व्यापार ! 'सामाजिक धर्माधिकारियों' की नीच हरकत ! तुम देखो नारी- अवमानना की दाहिका ! वह कितना सहती थी और कैसे सहती थी ? सच रूपयानी, नारी सचमुच में धरती थी, और धरती ही है। धरती पर थूको, धरती को खौंदो, रौंदो, पर उसकी कोई शिकायत नहीं ! गीत सुनो -

तोर बाप जतिया केर ऊंच,

दइया भलि दीन्हिस हो।

बदना तोर दुइज के चांद,

पै कउने अरथ केर हो!

जाति कइ नीच सुअरिया,

त बदन घिनामन हो।

ओके आगे पीछे चलै,

छउनमा देखत नीक लागइ हो।

पुरुष कह रहा है कि हे प्रिया ! तुम श्रेष्ठ कुल की हो, तुम्हारे बाप ने विवाह में दहेज भी बहुत दिया और तुम्हारा बदन तो द्वितीया की चंद्रमा के समान बंकिम और लुभावना है ! पर तुम पुत्र-हीना हो, इसलिए तुम तो उस घृणित 'सूकरी' से भी अधिक घृणित हो। सूकरी का बदन घृणित है, लेकिन उसके छोटे-छोटे बच्चे जब उसके आगे-पीछे दौड़ते हैं तो वह सूकरी भी बहुत अच्छी लगती है।'

रूपयानी ! आखिर समस्त अशुभ भार नारी को ही क्यों सौंप दिया जाता है ? पुरूष उसकी जिम्मेदारी क्यों नहीं लेता ? पुरूष 'सुअर' क्यों नहीं माना जाता ? बच्चे नहीं हो रहे हैं तो उसके पुरूषत्व पर सवाल क्यों नहीं उठाया जाता ? नारी के गर्भ को ही इतनी लानत-कुलानत क्यों मिलती है ? ये बहुत बड़े प्रश्न हैं। प्राचीन से लेकर वर्तमान तक यह अवमानना, प्रताड़ना की धारा आज भी तनिक भी सूखी नहीं है। नारी को कुलबोरनी कहा जाता है, उसकी परछाई अस्पृष्य है, उसका मुंह देखना पाप है, क्यों ? ऐसा क्यों हो रहा है ?

इसीलिए, इन गीतों की व्याख्या होनी चाहिए। गीतों में वर्णित सवालों का उत्तर देना चाहिए। यह मैं मानता हूं कि मां की ममता पुत्र के प्रति अमित है। मां ही नहीं, पूरा परिवार शिशु की बोली सुनकर तृप्त होता है। पर उस शिशु की जननी उस नारी पर ही सारा दोष मढ़ देना कतई उचित नहीं था और न है।

सूर्योपासना, तुलसीपूजन, गंगा-स्नान, पुत्रप्राप्ति के अचूक साधन लोक-समाज में माने गए हैं। पुत्र देने का सर्वाधिक सामर्थ्य सूर्य में माना गया है, इसलिए बड़ी समझदार नारियां सलाह देती थीं -

तरी धइले थरिया, ऊपर धरा नरियर हो।

अउतइ का सुरुज मनावा, सुरुज लाल देइहीं हो !

रूपयानी ! भवभूति के करुण रस के चित्रण ने साहित्य में बहुत यश कमाया है, पर लोकगीतों का करुण रस ऐसे रिसता है जैसे चित्रकूट के अनसुइया

पर्वत से हजार धाराओं से मंदाकिनी रिस रही हो ! ऊपर से कठोर चट्टानें दिखती हैं, पर भीतर-भीतर इतनी आर्द्रता, इतनी पिघलन ! और उस पिघलन का ऐसा रिसाव कि 'मंदाकिनी' प्रकट हो जाती है ! कहते हैं कि ताप मिटाने के लिए ही मंदाकिनी का जन्म हुआ था। उसी प्रकार बंध्या नारी के हृदय से जो रिसाव लोकगीतों में होता है, उनमें दर्द और करुणा का जो पानी है, वह हृदय को बहुत सालता है, बहुत तकलीफ देता है।

रूपयानी ! नारी के लिए 'कोख' से 'कब्र' तक की यात्रा भारतीय समाज की बड़ी विगलित यात्रा है। हर ठौर पर, उसे जहर पीना पडता है। पैदा होते ही उसे यह कहना पडता है :

भाई बहिनिया एकइ घर जन्मेन
पइ, बिरन कलेउना।
माया, हंसि दिहिन
पइ, हमका दिहिन रिसाइअ, हो ना।

और जब अन्तहीन सुघड़ भावनाओं के साथ ससुराल की डेहरी पर वह पैर रखती है तो कुछ ही महीनों के बाद, उसकी सम्पूर्ण कल्पनाएं कड़वी नीम हो जाती हैं। एक नारी, अपना दर्द राम से कहती है :

एक फूल फूलई अजुधिया,
दूसर फूल मथुरा हो।
अब तीजै फूल फूलई हो काशी,
चौथ मोरे अँचरा हो।
साहेब अँचरा बिछाइ पइँयाँ,
लगतेउ अरज कछु करतेउ हो।
कोहू का दिहे दुइ चार,

कोहू का दस पांच हो।
कोहू का राखे ललचाइ,
त एक ललन बिनु हो।।
अमबा तौ फरा है घउदवन,
अमिलिया झपकि बन हो।
रामा तिरिया का रखे ललचाय,
त एक ललन बिनु हो।।

और राम से वह यह भी पूछती है 'किसी को दो चार, किसी को दस-पाँच पुत्र दिया है, और कोई एक पुत्र के लिए ललच रही है ? यह कैसा न्याय-धर्म है तुम्हारा राम ? तुम मिल जाते राम, तो आँचल पसार कर तुमसे निवेदन करती कि इस दुखियारी के आँचल में भी एक पुत्र का फूल दे देते।'

वह राम से कहती है कि समाज की व्यवस्था में और तुम्हारी व्यवस्था में कोई अन्तर मालुम नहीं पड़ता। समाज और परिवार अपमान कर रहा है, दुखियारी को ज़लील कर रहा है। भदेस शब्दों से मार रहा है 'देखो न राम, आम तो गुच्छ-गुच्छ फलों से लदा है, इमली झपक-झपक कर फली है, लेकिन मुझ दुःखियारी को एक पुत्र का फल नहीं दे सके, ऐसा क्यों राम ? .....मेरी इस व्यथा को न घर का कोई समझता है, न तुम समझते हो ? अब मैं जाऊँ तो कहां जाऊँ, कहूँ तो किससे कहूँ ?

रूपयानी ! संतानरहित नारी, जीवन से निराश होकर घर छोड़ कर चली जाय, तो घर के बाहर भी उसे अपमान ही मिलता है। उसके दर्द से साझेदारी करने को कोई तैयार नहीं है :

घरबा ते निकरी बँझिनिया,
बिरछ तरी ठाढ़ी हो।

बाँमी ते निकरी नगिनिया,
बाँझिन डस लेतिउ हो।
बाँमी ते निकरी नगिनिया,
बॉझिन कैसे डसबै, बाँझिन होइ जाबै हो।
हुअउँ ते चली रे बँझिनिया,
वृन्दाबन आइ हो।
वृन्दावन केरि बघिनियां,
बांझिन खाइ लेतिउ हो।
बाघिन कइसे खाबइ,
बाँझिन होइ जाबै हो।
हुअउँ ते चली है बँझिनिया,
नैहर चली आई हो।
नैहर ते निकरा मोरी माया,
बाँझिन बइठाबा हो।
बाँझिन का कइसे बइठाई
बहुआ बाँझिन होइ जइहैं हो।।
तिरिया एकउ लहरि न देबइ,
जंत्री (यात्री) बाँझिन होइहै हो
जाहु तिरिया घर अपने,
ता पुतबा खेलाइ.....।
तोर पिय बिदुरइहैं हो।।

संतानहीन नारी का कितना अनादर है गीत में - 'घर से निकाल दिए जाने पर कोई वन, कोई जंगल, कोई वृक्ष उसे आश्रय देने को तैयार नहीं है। गाय, सांपिन, बाघिन, मायका सब निरादर करते हैं। गाय कहती है, तुम्हें शरण देने से मेरे थनों में दूध नहीं उतरेगा, धरती कहती है, मै बंजर हो जाऊंगी, नागिन कहती है, मै इसीलिए तुम्हें नहीं डसूंगी कि कहीं मै भी बंध्या न हो जाऊं ? बाघिन कहती है, मैं तुम्हें नहीं खा सकती क्योंकि बंध्या का मांस खाने से मै भी बंध्या हो जाऊंगी ! मायके से मां निकाल देती है कि बहुएं बंध्या हो जाएंगी ! इस प्रकार चारों ओर से निराश होकर गंगा के पास आती है और कहती है, गंगा एक लहर हमें देतू ! गंगा की एक लहर मांगना समस्त अभावों की प्रतिपूर्ति मांगना है, क्योकि गंगा इस देश की संस्कृति की प्रतिरूप है। गंगा तो भीतर का विश्वास है, उपयोग में लाया जाने वाला पानी है। वह तो भारतीय महाजाति का वह पानी है जो असंख्य दुर्दान्त, बर्बर आक्रामकों के अत्याचारों से भी नहीं मरा।

पुराणों की इस कहानी का अर्थ निकलता है कि गंगा, भगवान के हृदय में स्थान पाई हुई थी, इससे लक्ष्मी जी को क्रोध हुआ, और उन्होंने शाप दिया कि तुम मृत्युलोक में जाओ और गंगा भगवान के चरणों के नख से निकल कर मृत्युलोक में आने के लिए उमड़ पड़ीं। गंगा के बिना कैसा बैकुण्ठ और कैसा स्वर्ग ? ब्रहा ने गंगा को कमण्डल में भरना चाहा परंतु वे कमण्डल में भरी न जा सकीं, गंगा वहां से भी उफन कर निकल पड़ीं ! शिव ने अपने जटा-जूट में बांधना चाहा, बांधा भी, पर वे वहां भी नहीं बंधी और असंख्य-असंख्य मरणधर्मा जीवों के भीतर जीवन का भाव जगाने के लिए, उनका संताप निवारने के लिए बड़ी ऊँचाई से नीचे चली आईं। यह जो स्वयं शाप का वरण है, सेवा के द्रव से गंगा की उत्पत्ति की कथा है। छोटे सा छोटा आदमी गंगा के साथ जुड़ता है और गंगा उसे अपने साथ जोड़ती है, उसे निराश नहीं करती।

रूपयानी ! गंगा में एक अद्‌भुत सौन्दर्य है। बच्चा पानी को देखते ही 'गं-गॅ' कहने लगता है। देश के किसी भी कोने का बच्चा स्नान करने के लिए पहले

'गं-गं' ही बोलता है और 'पानी' को 'म म' कहता है। 'म म' से ममता और 'गं' से गंगा।

इसीलिए, रूपयानी ! अंत में वह नारी गंगा के पास जाती है, गंगा की लहरों में समा जाने का निर्णय करती है। यह गीत विध्यांचल, ब्रज, अवध, भोजपुर, मिथिला तक दर्द की टीस से भरा है। यह गीत दर्द का सार्वभौम बन गया है। कह सकती हो कि पूरे भारत में बंध्या नारी की व्यथा एक समान है, और पूरे भारत की बंध्याएं गंगा के तीर पर ही पहुंचती है। गंगा नारी है, शायद नारी-नारी की पीड़ा का उपाय सुझाए, वह तो मुक्ति-प्रदायिनी भी है शायद मुक्ति दे ! घर में घुट-घुट कर मरने से तो गंगा की लहरों में सो जाना अधिक अच्छा है। अपने-अपने अंचल की बंध्याएं, अपने अपने अंचल की गंगा के पास पहुंचती है :

गंगा किनारे एक तिरिया, तिरिया दुःख रोबइ हो।
गंगा एक बेरि लहरि लइ अउतेउ,
अउर मुकुति दै देतिउ हो।
गंगा विकला नारी से दुःख का कारण जानना चाहती है-
धौं दुख देंइ सासु ननद, धौं नइहर दूर बसै हो।
धौं तोरे पिय परदेस कउन दुख रोइउ हो।
कोख की वेदना से संतप्त नारी, कारण बताती है -
न मोरे सासु-ससुर दुख दीन्हें, ना नइहर दूर भए हो।
गंगा, मोर पिया परदेस, कोख दुख परिगा हो।

सब की कामना पूर्ण करने वाली गंगा, उस नारी को पुत्र प्राप्ति का उपाय बताती है :

भरि भरि लेतिउ मोतिया, ऊपर धरा नरियर हो।
अउतय केर सुरुज मनावा, सुरुज लाल तुंही देइहैं हो।।

नारी के प्रार्थना पर गंगा लहर तो देती है, पर संतान के आशीर्वाद की लहर देती है। और इस आशीर्वाद से उस दुःखियारी की कोख से पुत्र का जन्म होता है :

होत बिहान पहु फाटत ललना जनम भें हइ हो।

बाजइ लागी आनन्द बधइया, गावंइ सखि सोहर हो।।

इस पर भी नारी गंगा को भूलती नहीं। उस उपकार को अपने सौ मन से स्वीकार करती है :

हकरहुं नगर केरे सोनरा, हंकरि वेगि आवा हो।

गढ़िलावा सोने केर कलसा, त गंगा कलस लेसवइ हो

स्वर्णकार को कहती है कि सोने का कलश बनाकर लाओ, उसे सजाकर, दीपक जला कर मैं गंगा की अर्चना करूंगी, अनुग्रह व्यक्त करूंगी और गंगा मइया को दीप दान करूंगी :

गंगा-जमुनवा के बिचवा

तेवइया (नारी) एक तपु करइ हो।

गंगा अपनी लहरि हमैं देतिउ

मैं मझधार मां डूबित हो।

की तोहे सास ससुर दुख की नैहर दूरि बसै

तेबई (नारी) की तोरे हरि परदेस, कउन दुख डूबइ हो।।

गंगा न मोरे सास ससुर दुःख, नाही नैहर दूरि बसइ

गंगा ना मोरे हरि परदेस, कोखि दुख डूबइ हो।

जाहु तेबइया घर अपने, हम न लहर देबइ हो।

तेबई आजु के नवमें महिनवां होरिला (पुत्र) तोरे होइहैं हो।
गंगा गहवर पियरी चढ़उवै होरिल जब होइहैं हो।
गंगा देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो।

अवधी

चलहु ना सखिया सहेलरि, गंगा नाहायहु हो।
सखिया गंगा के निर्मल नीर, कलस भरि लायहुं हो
केहू सखी जल भरैं, केहू सखी मुंहवा धोबली हो।
आहों केहू सखी ठाढ़े निहारई, तिरिया एक रोवली हो
की तोहें सास ससुर दुख देले, नइहर दूरि बाटे हो
बहिन की तोर कंत विदेस, कवन दुःख रोवली हो।
ना मोर सासु ससुर दुख देले, न नइहर दूर बाटे हो।
नाही मोरे कंत विदेस, कोखि के दुख रोवल हो।

भोजपुरी

राजा, गंगा किनारे एक तिरिया सु ठाढ़ो अरज करै।
गंगे, एक लहर हमें दउतौ जामें डूबि जइयां।
कै दुखरी तोइ सासुरी-ससुर, कै तोरे पिया परदेस।
ना दुखरी मोइ सासुरी ससुर कौ, नाइ मोरे पिया परदेस
ना दुख री माता-पिता कौ, ना भा जाए पीर।
सासु बहु कहि नाइ बोलइ, ननद भाभी न कहइ।
न हो राजे, हरि बांझ कहि टेरइ, ता छतिया जुझल गई।
राजे, लौटि उलटि घर जाइ, लाल तिहारे होई

व्रज

रूपयानी! ये गीत पूरे देश की नारी-व्यथा का प्रतिनिधित्व करते हैं। गीतों के बोल में आंचलिक रीति-रिवाजों का अलग-अलग तरीके से समावेश है, लेकिन दर्द का रंग एक ही है, एक ही प्रकार की टीस है, एक ही प्रकार की अपवंचना है, और एक ही प्रकार का तिरस्कार है।

नारी कोख का दुःख कब्र तक भोगती है और इस संसार से विदा लेती है। 'कर्मफल' मानकर चुपचाप इस पीड़ा को झेलती है। कोख, कर्मफल का जिस तरह विवेचन करती है, उसमें कितने दार्शनिक तत्व समाहित हैं, देखें :

तेल त लीन्हेंन उधारे, नोन उधारे कोखिया का कउन
कोखिया अपने करम गुन।
अमबा त फरा हइ लौदबन, इमलिया झपकबन
बैरी त फरिहै, निरफल त अपने करमगुन।
कोखिया केर कउन हइ दोख, कोखिया अपने करम गुन।।

पुत्र के अभाव में नारी उदास है। मन खाली-खाली और रिक्त है। तपस्या और साधना भी किसी काम की नहीं। उसे लगता है कि उसके पूर्वजन्म के अभिशाप का ये फल है। रोटी, नमक, तेल तो उधार मिला जाता है, पड़ोसी दे जाते हैं। पर कोख का उधार कहाँ से मिले? आम-इमली की डालियों को फलों से झुकी हुई देखकर, उसे वेदना होती है। वह चाहती है कि 'गर्भभार' से इसी प्रकार मैं भी झुक जाऊँ, किन्तु उसे अलभ्य समझकर, अपने ही कर्मों का परिणाम मानती है, और स्वयं को समझाकर चुप हो जाती है।

रूपयानी! पुत्र, वात्सल्य और स्नेह के गीत भारत के प्रत्येक अंचल में गाए जाते हैं। लोकगीतों के माध्यम से जन-नारियाँ अपना अलग महाकाव्य बनाए हुए हैं, उनके अपने अलग छंद और दोहे हैं। शास्त्रों, पुराणों की बातों को सीधे

न कह कर, उसे अपने द्वारा रचती हैं, फिर अपनी ही सर्जना को गाती हैं। चाहे दुःख हो, चाहे सुख हो। वे अपना सुख-दुःख स्वयं रचती हैं और आपस में मिलकर, उसे समेटकर कहती हैं। इनकी सृजित रचना सीधे हमारे हृदय तक पहुँचती है। एक गीत में राम अपनी माँ कौशिल्या से वन जाने की आज्ञा माँगते हैं :

माया मुँह भर देय हो असीस, बनइ हम जाबइ हो।

भला बताओ, माँ के मुख से कभी असंगत और अशुभ वचन कैसे निकल सकते हैं ? बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना है :

अंखिया मा खोंसइ सरइिया, त जिभिया अंगार धरउँ हो

छतिया बजुर परि जाइ, बचन कइसें बोलेंउ हो।

राम कहते हैं कि माँ मुझे वन जाने के लिए आशीर्वाद दो! यह सुनकर कौशिल्या के लिए तो धरती डोल जाती है। वह कहती है आंखों को फोड़ लूँ, जीभ में अंगार रख लूँ, छाती में वज्र गिरे, मैं यह कैसे कह सकती हूँ कि राम तुम वन जाओ ? उस राम को, जिसे न जाने कितनी साधनाओं के बाद प्राप्त किया है, जिसको छाती का दूध पिला-पिला कर बड़ा किया है, आँखों में अंजन लगाया है, अंगों में उबटन लगाया है, झूला झुलाया, लोरी गीत सुनाकर थपकी देकर सुलाया, कभी आँख से ओट नहीं होने दिया। अब उसी को वन कैसे भेज सकती हूँ। यह दुःख अकेली कौशिल्या का नहीं है, यह भारत की हर नारी का दुःख है, भारत की हर नारी की परिस्थिति का वर्णन है। रूपयानी ! राम को तो वन जाना ही था, वे गए भी। पर अब, माँ की भाव व्यंजना को देखे :

रामा कइ भींजइ मुकुटबा, लखन सिर पगड़ी हो।

अब सीता कइ भींजइ चुनरिया, तीनहुँ मोरे बन गें हई हो।

शुभंकर बताता है कि 'माँ' कौशिल्या, सावन-भादों के बरसते बादलों,

कड़कती बिजली, बहती पछुआ से अयोध्या के राजमहल में रहते हुए तड़प कर रह जाती है ! सुरपुर के समान बनी अयोध्या राम के बिना उसे भूतों का अड्डा लगती है। जानती हो रूपयानी ! चौदह वर्ष तक माँ, जब-जब पानी बरसता, बिजली कड़कती, हवा चलती, तो वह इतना डरती, इतनी भयभीत होती कि मेरा राम इसमें में भीग रहा होगा ! मेरा राम ऐसे कड़कते बादलों की टकराहट से डरता होगा ! सीता-लक्ष्मण की क्या दुर्गति हो रही होगी ! मेरा आंचल भी उससे बहुत दूर है, मैं होती तो आंचल से उसे ढक देती, आंचल में छिपा कर छाती से लगा लेती, मैं भीगती तो भीगती, पर उसे न भीगने देती, और यह सोचते-सोचते कह उठती है :

पहिले ता कैकेयी बहिन रहिउ, अब ता सबति भइउ।
मेरे रामा कइ लिखी पिढ़इया, ता कोउ नहिं बांचइ हो
मेरे सीता कइ दीन्हि केबड़िया, त कोउ नहिं खोलइ हो।
राम के गए सून अजुधिया, लछिमन बिन चउपारी।
सीता के गए सून रसोइया, तीनउ जन बन गें हंइ हो।
अंगना ता मोरे लेखे मरघट, डेहरी ता पर्वत।
भीरत घर अंधिआर, तिनउ जन वन गें हंइ हों।

देखा रूपयानी ! कौशिल्या कह रही है कि कैकेयी, मैंने तुम्हें कभी सौत माना ही नहीं, तुम मेरी सर्वदा बहिन रही हो, लेकिन तुमने निश्चित सौत का काम किया है, बड़ा कुघात किया है। राम जिस पिढ़ई, यानी जिस स्लेट पर स्वर-व्यंजन लिख- लिख कर पढ़ते थे, उनके चले जाने पर भी, उसमें सब लिखा है। वे अक्षर मिटा भी नहीं पाए और वन चले गए ! आज वे राम द्वारा लिखे अक्षर मेरी आंखों में शूल जैसे चुभ रहे हैं।

वाह रे कैकेयी ! मैंने तुम्हें कभी भी सौत नहीं माना, बहिन ही समझती रही ! और, तुमने मेरे साथ कितना बड़ा अपघात किया ! अब उसी अपघात का

परिणाम है कि इस राजमहल का आंगन मरघट हो गया है, श्मशान हो गया है ! राम यहां दौड़ते नहीं हैं, राम यहां ठुमुकते नहीं हैं, राम यहां दौड़ते-दौड़ते मेरे आंचल से लिपटते नहीं हैं। सच कैकेयी ! अंदर जाने से भय लगता है। यह देहली पर्वत सी लगती है, इसे पार कर भीतर जाया नहीं जाता ! राम के बिना तो यहां घुप्प अंधेरा है !

रूपयानी ! वात्सल्य और करुण रस का ऐसा परिपाक भवभूति-तुलसी में कहां ? इन लोकनारियों की करुण व्यथा के सामने भवभूति पानी मांगते नजर आते हैं। राम का चरित्र लिखने वाले छंदों के बड़े-बड़े सर्जक मुंह छिपाते से लगते हैं।

रूपयानी ! मातृहृदय का पुनीत प्रतीक - शिशु, नारी- जीवन की सफलता की भव्यता है। जननी की गोदी का लाल, जैसे, भरे सरोवर में लहराता लाल कमल ! कमल से निकलती सुरभि और मां के हृदय से निःसृत स्नेहरस एक जैसे लगते हैं। शिशु की सुन्दरता का चित्रण सोहर गीतों में किन-किन उपमाओं तथा रूपकों से छन्दबद्ध किया गया है, बहुत ही दर्शनीय और सुखद है। बालक के अंगों की कमनीय शोभा, उसका मंद-मंद चलना, उसके पैरों में लसित नूपुर, उसकी लुटुरी झालरें कैसी कमनीय हैं :

मोरे ललना कइ लुटुरी झलरिया, बड़ निक सोहइ हो
अब ललना रे ललना, तुहिन मोरे ललना हो।
गुहि दे कमल एइसी पंखुरी, भंमर एइसी गुंजइ
भंमर एइसी गुंजइ हो।
ललना कइ छोटी छोटी गोड़ली, नेवरिया भलि सोहइ हो।
धरइं उमकियन पांव, नेवरिया छुन्नुक बोलइ हो।
मेरे ललना कइ बड़ी बड़ी अंखियां, कजल भलि सोहइ हो।

आंजइ लागी फूफू सुभद्रा, अंगुरिया नहिं डोलइ हो।

मोरे ललना कइ छोटी छोटी हंथुलिया,

चुरइया भल सोहइ हो।

हम ऐसा क्यों कहें कि सूर-तुलसी से यह बड़ा चित्रण है? लेकिन शिशु की शोभा का ऐसा भाव-चित्रण इन ग्रामीण और जंगली नारियों को मिला कहां से? इन्होने कब ज्ञान प्राप्त कर लिया कि शिशु की बुआ सुभद्रा हैं! ये नारियां अक्षर चीन्हती नहीं, पुराण सुनती नहीं। सूर तुलसी से भी पहले की ये नारियां भाव, छन्द सृजन की परिकल्पना कहां से सीख लीं? बल्कि, लगता है, जैसे स्वयं सूर और तुलसी ने ही इनसे सीखा है। ये गंमई-गांव की नारियां मूल सरस्वती हैं! क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि इन्हीं की भावना और इन्हीं के हृदय से सरस्वती बहकर साहित्य में आई है?

छठी, बरहौं और अन्नप्राशन के दिन एक ऐसा करुण गीत गाया जाता है जो मन को बहुत भारी कर देता है। और यह गीत सोन-नर्मदा, तमसा, यमुना, गण्डक और गंगा के तट पर बसने वाले लोगों के बीच और विन्ध्याचल के जन जीवन में रचा बसा है :

छापक पेड़ छिउलिया त पतबन झापक हो।

रामा, तेहि तरि ठाढ़ी हिरनिया ता मन अति अनमन हो।

चरतइ चरत हरिनमा, त हरिनी से पूंछइ हो।

हरिनी कि तोरदा चरहा झुनरा कि पानी बिन मुरझेउं हो।

ना मोरा चरहा झुरान, ना पानी बिन झुरझेउं हो।

हरिन आजु रामा कइ पसनिया, तोंहिं मारि डरिहंइ हो।

छोड़ अजुध्या कइ राज, नंदन वन भागी हो।

भल बउरानी हरिनियां तोहि को बउराइस हो।

मेरे रामा कइ आजु पैसनिया, हमहिं मारि डरिहइं हो।
मंसु केर रचिही जेउनरिया, ता खलरिया साधु देइही हो।
छापक पेड़ दिउलिया ता पतवन गहवर।
मचियन बइठी हंय कोसिला रानी,
त हरिनी अरज करइ हो।
रानी मंसुआ ता सीझइ रोंसइया,
खलरिया हमहिं देतिउ हो।
पेड़वा ते ढंगतेउं खलरिया, ता हेरि फेरि देखतिउं हो।
रानी मन समझुउतिउं जानउ हरिना जीतइ हो।
जाउ हरिनी घर अपने, खलरिया न देवइ हों
हरिनी खलरी कइ खंझनी मढ़उबइ,
रामा मोरि खेलिहइ हों।
जब जब बाजइ खंजड़ियां, सबद सुनि अनकइ हो।
हरिनी ठाढ़ि ढंकुलिया के नीचे ता हरिनका विसुरइ हो।

रूपयानी! तुम इस गीत को सुनकर चकित हो? सोच रही हो कि यह गीत कैसा है? लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियां गाती हैं, ऋतु त्यौहार, व्रत और परम्पराएं गाती हैं, लेकिन इस गीत में कौन गा रहा है?

निश्चित है किसी गाँव के ठाकुर, किसी अंचल के जमींदार, किसी देश के राजा ने, किसी दीन गरीब के साथ बेरहमी की है, ज्यादती की है, किसी को मारा है, किसी की हत्या की है, किसी गरीब को जमीन से बेदखल कर अपने राजकुमार का जन्मोत्सव मनाया है। यदि ऐसा न किया जाता तो इतनी करुणा-भरी कहानी की भूमि आखिर कहां से मिलती? निश्चित ही सामंती प्रथा के निशान इस गीत में अंकित हैं।

घने पलाश के वृक्ष के नीचे अनमनी हिरणी खड़ी है, वहीं बगल में चर रहा हिरण, उदास हिरणी से पूछता है कि तुम्हारी उदासी का क्या कारण है? क्या जंगल का चारागाह सूख रहा है या कि तुम प्यासी हो? इस तरह से अनमनी होने का कारण क्या है?

हिरणी उत्तर देती है कि यह सब नहीं है। उदास इसलिए हूँ कि आज ठाकुर के घर में राम की पसनी है, अन्नप्राशन है, इसलिए तुम्हें मार कर, तुम्हारा मांस रसोई में पकाया जाएगा।

हिरण का उत्तर बिल्कुल अवर्णनीय और अद्‌भुत है, वह कहता है कि ऐ पागल हिरणी, तुम इस कारण तुम उदास हो? अरे! मेरे राम की पसनी है, मेरा मांस खाकर राम सहित सब तृप्त होंगे। और मेरें शरीर की यह खाल किसी सन्यासी को दे दी जाएगी जिस पर बैठकर वह साधना करेगा।

रूपयानी! हिरण तो दार्शनिक-सी बात कर चुप हो गया। उसे मार भी डाला गया। पर हिरणी अपने साथी के बिना विकल है, दुःख से छटपटा रही है। वह 'राजदुआर' पहुँच जाती है। ऊँचे आसन पर बैठी ठकुराइन से प्रार्थना करती है : 'हे रानी! मेरे प्रिय हिरण का मांस तो रसोई में पक रहा है, उसे तो अब पकना ही है, पर मेरे हिरण की खाल मुझे वापस दे दीजिए, उसे लौटा दीजिए! मैं उसे ले जाकर पेड़ से लटका कर उसे रोज देखा करूँगी और अपने जलते हृदय को धीरज बधाऊंगी कि अभी भी मेरा हिरण, मेरे साथ ही है!

लेकिन बड़ी ठकुराइन ने हिरणी को खाल नहीं दिया और कहा कि तुम अपने घर जाओ। इस खलरी से मैं खंझड़ी मढ़ाउँगी, उससे मेरा राजकुमार बाजा बजाकर खेलेगा। विवश, दीन हिरणी मन मारकर जंगल लौट जाती है और जब-जब खंजड़ी बजती है, और उस बाजे का स्वर सुन कर हिरणी के हृदय में मरोड़ उठती है। उस पलाश के वृक्ष के नीचे खड़ी हिरणी अपने हिरण की याद में बिसूरती रहती है।

रूपयानी! मुझे तो लगता है कि शायद इससे बड़ा करुण गीत और नहीं हो सकता! कभी कहीं ऐसी घटना निश्चित घटी होगी, तभी तो करुण हृदय की आर्द्रता रिस-रिस कर गीत की पंक्तियों में चू पड़ी है।

हमारे समाज में एक नारी का जीवन, दुःख की करुण कहानी है। अपने को पराया और पराए को अपना बनाकर, वह जीवनपथ पर अग्रसर होती है। कभी-कभी जीवनपर्यन्त वे पराए अपने नहीं बन पाते हैं। जिनके लिए वह जीवन समर्पित करती है, वे उसके साथ बड़ी बदसलूकी करते हैं। ऐसी-ऐसी हरकतें करते हैं कि मानवीयता तक लज्जित हो जाती है। इन सब की कहानी और इन सब का चित्र ही यहां के लोकगीतों में वर्णित और व्याख्यायित है।

रूपयानी! इस सुहाग गीत की भंगिमा और तेवर देखो :

ननचू का बुंदिया, छिमा करा मेधिया।

सेंदुर भरइ मोरी मांग, राजा के सोहगवा।

विवाह के समय कन्या की मांग सिंदूर से भरी जा रही है कि इतने में बदली टप-टप बूंदे गिराने लगती है, और मांग का सिंदूर पानी की बूंदों से पुछने लगता है। तब, कन्या अधीर हो कर बदली से प्रार्थना करती है - हे मेघनी! जरा पानी की बूंदे बरसाना बंद कर दो, इस समय मेरी मांग में मेरा प्रियतम सिंदूर भर रहा है, मुझे सुहागिन कर रहा है। लेकिन मेघनी, पानी बरसाना बंद नहीं करती :

मड़ए तरे बइठी है ढेरिया (कन्या),

सुना भइया विनती हमार।

काहे मां जोगाबउ माथे कै मौरिया,

कइसे भरै मोरी मांग.....राजा के सोहगवा!

मड़ए तरे बैइठा है भइया,

सुन बहिनी विनती हमार।

ढाल जो गबउं माथे कइ मौरिया,

तरवरिया जोगवउं मंगिया के सिंदूर .....राजा के सोहगवा!

तब कन्या अपने भाई से प्रार्थना करती है कि हे भाई! मेरे माथे की मौरी भी भीगी जा रही है। इस बरसते पानी में किस प्रकार सिंदूर भरा जाएगा! भाई बहिन को आश्वस्त करता है कि मेघनी को बरसने दो, मै अपनी ढाल से भौरी की रक्षा करूंगा और तलवार से तेरी मांग की रक्षा करूँगा, पानी की बूंदे कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं तुम्हारा! मांग में सिंदूर भरा जाएगा, सुहागवती, सौभाग्यवती तुम बनोगी मेरी बहिन!

रूपयानी! किशोर वय की लड़की का विवाह किया जाता है, उसमें 'रानीत्व' नहीं आ पाता था और विवाह कर दिया जाता था। ऐसी छोटी उम्र में कन्या का विवाह होता था कि वह कुछ समझती ही नहीं थी :

सेवत रहेंउ जजकि उठि बइठेउ भोर भए भिनसार

काखे दुआरे नौवत बाजइ, काखर होत विआह।

शहनाई की आवाज सुनकर सोती हुई लड़की जग जाती है और मां से पूछती है, यह बाजा कहां बज रहा है और किसका विवाह हो रहा है ? मां उसे बताती है :

तोंहरे दुआरे बेटी नौबत बाजै,

तोंहरइ होत बिआह।

लड़की को आश्चर्य होता है। वह मां से सवाल करती है, इतनी जल्दी बिआह हो रहा है? अभी तो मेरी कुछ समझ ही नहीं है, मैं घर-गृहस्थी, सास-ननद, और ससुराल का कायदा कुछ जानती ही नहीं हूँ :

सिखइ ना पायउं गुन गिरहथिया तथउना राम रसोइया।

माटी कइ चुल्हना सिखइ ना पाएउं, हमका दिहे परदेस।।

मां समझाती है कि बेटी! मैं तुम्हें ससुराल में सुख से रहने का एक मंत्र देती हूँ, उसे तू अपने आंचल के छोर में गांठ लगा ले। यदि तू इस मंत्र का जाप करती रही, तो और सारे गुण तुम में अपने आप आ जाएंगे :

सासु-ननद म्ठिालि गरिया ज देइहीं।

लइ लिहिउ अंचरा पसारि, बिटिया।।

'यदि, सासु और ननद मिलकर किसी कारण से तुम्हें गाली दें, तो तुम मुँह मत खोलना, जीभ मत चलाना बस, उनकी दी हुई गालियों को तुम आँचल पसार कर ले लेना, बिटिया।'

कितनी करूणा-विगलित समझाइश है मां की। बिटिया को भी मालूम है, और मां को भी मालूम है कि ससुराल में कष्ट मिलना ही है। ऐसा क्यों होता आ रहा है, रूपयानी! गुलबिया, रतिया, तिजिया क्यों ससुराल में भस्म होती आ रही हैं? समाजशास्त्र के पंडित क्यों नहीं विचार कर रहे हैं, इस सामाजिक बेहूदेपन पर?

रूपयानी! तुम भी जानती हो। सभी जानते हैं कि कन्या की विदाई का दृश्य बहुत कारुणिक होता है। माता कन्या को जन्म देती है, दूध पिलाती है, आंचल से धूल पोछती है, नहलाती धुलाती है, ऑख में काजल लगाती है, लोरी सुनाती है, वेणी गूंथती है, फिर उसे डोली में बिठाकर जब विदा करती है। ऐसे कलेजे के टुकड़े को विदा करने का दुःख सिर्फ मां जानती है और कोई नहीं जानता। मां के कलेजे का टुकड़ा, पिता के नयनों की जोति, पूरे घर-परिवार की श्रीशोभा। जिसने इसी घर मे जन्म लिया है, इसी आंगन की धूल में लोट-लोट कर जो बड़ी हुई है, भाइयों ओर सहेलियों के साथ जो खेली-कूदी है, सम्वाद

किया है। जो मां के दुलार से नहाई है। कोई उसे लक्ष्मी कहता तो कोई उसे सरस्वती कहता, वह घर की, गांव की स्पंदन थी। वह गौरइया के साथ फुदकती थी, कौआ हाथ से रोटी छीन ले जाता था तो रोती थी, दूध दुहने के लिए दुधंहड़ी पहुंचाती थी, वह दुहिता थी। गाय-बछड़े को चारा खिलाती थी। आंगन लीपती थी, द्वार बटोरती थी। तुलसी की संझबाती करती थी, दीपक जलाती थी। भइया के साथ खेत जाती थी, कजली-हिंदुली गाती थी और नीम की डाल पर झूला झूलती थी। और वही आज डोली में बैठकर विदा हो रही है :

माया के रोए नदिया बहति हय, बापा कूे रोए ताल।
भइया के रोए हिया फटत हइ, बहिन चली है परदेस।।

- विंध्याचल

माया के रोए से नदिया बहत है, बाबू कहै छै मास।
भइया के रोए से छतिया फटति है,
भउजी के हियरा हुलास।।

- बुन्देली

माया कहई बेटी नित नित आए, बाबू कहै छै मास।
भइया कहै बहिनी काजे-औसरे, भउजी कहै कौन काम।।

- बघेली

सब रो रहे है, उन्हें रोना ही है। रोंना भी चाहिए। बिटिया जो विदा हो रही है। जब ऋषि रोते हैं, देवता रोते हैं, धरती रोती है, वृक्ष रोते हैं, हिरण-हिरणी रोते हैं, तब हम तो मनुष्य हैं, हमें तो रोना ही है। पर, एक बात है रूपयानी ! ननद-भाभी के रिश्ते में खटास जरूर रहती है। सब रो रहे हैं, पर भाभी के हिय में हुलास है, वह प्रसन्न है कि ननद जा रही है। वह उसे अपना कंटक मानती है,

उसका कंटक विदा हो रहा है, इसलिए वह प्रसन्न है। और रूपयानी! लड़की की भाभी कहती है कि ससुराल से पुनः मायके आने का कोई काम नहीं है। भाई कहता है कि बहिन शादी-अवसर में आएगी, लेकिन वह कहती है कि आने का कोई काम नहीं है!

दूसरा विदा का गीत देखो! मां अपनी बिटिया के विदा के समय अपनी चेतना, गवां बैठती है, और अपना धीरज खो बैठती है। कन्या को तो विदा होना ही है, वह तो पराए घर में जाने के लिए पैदा ही हुई, फिर भी मां उससे क्या कहती है :

अरे-अरे कारी कोइलिया, तुही को भरमिस हो।
अइसन अनन्द बन छॉड़ि, बिंद्राबन तूं काहे चलिउ।
माता के अधीर प्रश्न लड़की देती है :
काह करौं मोरी मइया, बहइ सुगउना भरमिस हो।
अइसन अनन्द बन छॉड़ि, बिंद्राबन काहे चलेन।
माँ के प्रश्न और लड़की के उत्तर से गीत आगे बढ़ता है:
अरे अरे बेटी दुलहिन देई तुम्हइ किन भोरइस हो!
अइसन बाबा केर घर छाँड़ि, सजन घर काहे चलिउ?
काह करौं मोरी माई, उहै दुलहा भोरइस।
अइसन बाबा केर घर छॉड़ि, सजन घर हम चलेन।

कन्या का दुलारा भाई अबोध है। उसे इन सब बातों का आभास नहीं है कि विवाह होने पर बहन जो मुझे दुलराती रही है, बहलाती रही है, वह किसी दूसरे के घर चली जाएगी। वह खेल रहा था, धूल-धूसरित आता है और बहन से लिपट कर पूछता है:

गलिया खेलत मोर भइया, झपटि घर आएन।
छेंका है बहिन कइ राह, बहिन मोर कहाँ चलिउ।

जाय दे भैया, जाय दे हम ता फंदे परी।

काज परे हम अउबइ, ये भइया पाँव उठाय।

बहन, अपनी विवशता, उस अबोध भाई को करा देती है, और उससे मीठे शब्दों में वायदा करती है कि मैं तुम्हारे हर छोटे-बड़े कार्य में दौड़ती आऊँगी मेरे भाई ! और, बहन की मीठी बातों का संस्पर्श पाते ही, उसकी आँखें भर आती हैं, वह खड़ा-खड़ा पालकी देखता रहता है, और पालकी रास्ते के मोड़ के साथ अदृश्य हो जाती है।

रूपयानी ! आंगन में शहनाई अब भी रो रही है, माँ के आँसू कम नहीं हो रहे हैं। वन्दनबार और मण्डप कुम्हला गए हैं। आँगन का कोंड़र छितर-बितर गया है, दीवाल पर रचा पुरइन का पत्ता सूख गया है। कोहबर के पुतली-पुतला उदास हो गए हैं, घर की बिल्ली दूध नहीं पी रही है, चौगान में लेटा कुत्ता चुपचाप उस गली की ओर देख रहा है, जिस गली से उसकी बहन डोली पर बैठ कर चली गई है। द्वार का आम, पछीत का महुआ चुप है। नीम पर बैठा कौआ कुछ समझ नहीं पा रहा है, और पूरे गाँव की आँखो से आँसू बहकर सूख गए हैं।

रूपयानी। अब मुझ से नहीं सुनाया जाता, ये न जाने कब के गीत हैं, पर ये आज भी वैसे ही कलेजे पर मार करते हैं, कि मै इस मार से बेदम हो गया हूँ।

रूपयानी ! अब तनिक विषय-परिवर्तन करता हूँ। बड़ी कठिनाई से एक बहुत ही मधुर गीत मिला है। उसे मैं सुनाता हूँ। यह गीत सुलभरति का गीत है। कितनी मधुमयी कल्पना है, कितने रसमय भाव है :

आज सुहाग कइ रात, चंदा तुम उइहौं।

चंदा तुम उइहौं, सुरूज मति उइहौं।

मोर हिरदा बिरस जानि किएउ, मुरग मति बोलेउ।

मोर छतिया बिहरि जनि जाइ, तूं पहु जिनि फाटेहु।

आजु करहु बड़ी राति चंदा तुम उइहौं।

धिरे धिरे चलि मोरा सुरूज, बिलम करि अइहौं।।

सुहाग की वासक शैया पर प्रियतम से लिपटी पड़ी मुग्धा नायिका कितनी मधुमय कामना करती है :

वह चंद्रमा से अपनी शीतल किरणों को झराने के लिए कहती है, और सूर्य से कहती है कि आज तुम मत उदित होना। मुर्गे को सचेत करती है कि मेरे हृदय में उतर रहे रस को बीच में बोलकर विरस मत कर देना। और 'पौ' से न फटने का निवेदन कर रही है, कि आज भोर मत करना। क्योंकि पौ फटने के साथ मेरा हृदय भी फट जाएगा, क्योंकि प्रियतम द्वारा दिया जा रहा 'रस' बंद हो जाएगा ! इसलिए सूर्य, आज तू धीरे-धीरे चलकर आना, और चांद, तू अपनी जगह से हिलना ही नहीं ! ऐसे ही आकाश में चिपक कर खड़े रहना और अपनी मधुमय किरणों को बरसाते रहना !

सचमुच बड़ा मधुर गीत है। नायिका की कल्पनाएं सराहनीय हैं। यही तो साहित्य की महत्ता है। रूपयानी ! अभी इस भाव को यहीं रहने दो और उस गली को ओर चलो, जिस गली से लड़की ससुराल से मायके आई है। वह क्यों आई है ? और मां उससे क्या कह रही है ? आओ, इसे सुनें :

एक घर के बत्तीस दुआर हो।

सेर भर मिरच, हो सासू सिलवटी धरि देई हो।

मिरच पीसत, हो सासू थके आठो अंग हो।

अपने बाबा घर से, चेरिया बोलावा हो।

हमरे बाबा जी के, का करबू जोर हो

नाचइ नचनियारे, भइया बकसीस देइं घोड़।

मोरे विछुअरवा कहंरवा हित भइया हो।

अइसन लोलारी बहुआ का, नइहर पहुंचावा।

झटरे झरोखा चढ़ी अम्मा निरखइ हों।

कस देखउं बेटी कइ डोलिया, झलकत आवइ हो।

किया बेटी चोरिनी रे, किया बेटी चटनी हो।

किया बेटी दीहिलु हो सासु के जबाब ।

नाहीं बेटी चोरनी हो, नाहीं बेटी चटनी हो।

ई बेटी दिहिन हो, सासू के जबाव।

एक भर अइउ हो बेटी, दुई भर जाहू हो।

ढकले ओरहवा बेटी, सासुर घर जाहू हो।।

रूपयानी ! यह वही मां है, जो अपनी कन्या के विदा के समय कितनी अधीर हुई थी, आसुओं से सरोवर भर लिया था। लेकिन, जब वही कन्या ससुराल की कठिनाइयों और परिस्थितियों के बवण्डर को न झेल पाने के कारण, मां के गृह आती है, तब मां, उसके माथे का पसीना नहीं पोछती, एक घूंट पानी नहीं देती और कहती है जिस पांव से आई हो, उसी पांव से लौट जाओ !

लोकजीवन में नारी की सब तरह से उपेक्षा की गई है। उसका जन्म परिवार में अवसाद के रूप में होता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती जाती है, 'जनक-जननी' के मानस में विविध प्रकार की चिंताएं उभरने लगती हैं। सच तो यह है कि नारी का उदय और अस्त दोनों ही अनादर, उपेक्षा, व्यथा, करुणा और धिक्कार से भरा है। वह तो अपने भाग्य जीती है, और अपने भाग्य मरती है। 'कोख' से 'कब्र' तक की उसकी यही कहानी है। चलते-चलते मां से लड़की यह कह कर जाती है :

विरन कलेउना माया हंसि हंसि दीहिन,

त हमका दिहिन रिसाइउ होना।

भाई बहिनिया एकइ घर जन्मेन,

भइया का दिहिन माया महल अंटरिया।

पै हमका दिहिन परदेसउ होना।

सहोदर भाई-बहन के रिश्तों में जो पासंग है, वह समाज में लोक-अदालत का बेबाक फैसला है। मां को वंशधर चाहिए, मां को वंश पालने वाली नहीं चाहिए।

इन लोकस्वरों में समाज के अत्याचारों की कहानियां और उत्पीड़न की गहरी रेखाएं हैं।

ऋतु गीत : फागुन-कजली

रूपयानी! जीवन में आज भी 'वेद' और 'लबेद' का सम्वाद जारी है। पंडित कहते है कि 'वेद' विष्णु के उच्छ्वासों से निकलता है, जिसे 'ब्रह्मा' ने छंदोबद्ध किया और बाद में ऋषियों ने संहिताएं जोड़कर उसे गा-गाकर प्रसारित किया। 'लबेद' भी लोकजनों की अनुभूति का 'उच्छ्वास' है, जिसे ऋषियों ने नहीं, पूरे लोक ने गाया और प्रसारित किया।

लोकगीत, एक कान से दूसरे कान तक, एक कंठ से दूसरे कंठ तक विभिन्न अंचलों और गांवों की सरहदों को पार करता हुआ जीवित रहा, और है। आज किताबें हैं, छापाखाने हैं, दूरदर्शन और दूरभाष है, कोई भी बात हो तो पर्चियां छापी जाती हैं, लेकिन पहले केवल 'कही' जाती थीं। पहले 'कहने' का महत्व था, आज 'लिखने' का महत्व है। श्रुतियों पर युग पर युग बीते, आज लिखने पर युग चल रहा है। लेकिन, अद्‌भुत बात देखो, कि पहले की वचनबद्धता आज की लिपिबद्धता से कितनी अधिक शक्तिमान थी!

आज फिर संदर्भ बदल रहा है, आदमी बहुत दिनों तक अपने संस्कारों से कटकर नहीं रह सकता। मानस, कबीर की वाणी, सूर-मीरा के पद सभी लोक

शैली से प्रभावित और भावित हैं। इसीलिए ये सब जन-मानस के आत्मीय बने हुए हैं।

कहते हैं कि धरती ने अपनी आवाज के लिए ब्रहाण से कंठ और गीत मांगे थे। तब, ब्रहाण ने धरती को लोकनारियों का कंठ, और उन्हीं के गाए जाने वाले गीत और नृत्य दिये थे। तब से आज तक धरती की आवाज लोकगीत, लोककथा एवं लोकनृत्य के माध्यम से व्यक्त होती आ रही है।

रूपयानी! लोकगीतों की पंक्तियां, बांहो की तरह हिलती हुई सी लगती हैं और लगता है, मानो वे अपनी बाहों से जंगल में सिर के बल पड़े हुए 'राम' को उठा कर सीधा कर रही हैं। धरती के हर पेड़-पौधे, सेहुंड़ा आदि को देखकर लगता है कि यहां के हर पत्ते, हर कांटे पर राम-सीता, शिव-पार्वती, की अंगुलियों के निशान पड़े हुए हैं। निर्वासित सीता के प्रति राम की प्रार्थना -

रानी छोड़ि देय जिय का वियोग,

अजुधिया बसाबउ।

सीता तोर बिन जग अंधिआर

त, जीवन अकारथ।

पति, पत्नी को जब चाहे त्याग दे, जब चाहे अपना ले, अपनी सुविधा के अनुसार। ऐसी गुड़-गोबरी व्यवस्था लोकनारी को स्वीकार नहीं है और सीता धरती में समा गई।

बेटी की डोलियां अमीर के घर से भी जाती हैं, और गरीब के घर से भी। युग इस बात की साक्षी हैं कि जब बिटिया डोली में बैठकर ससुराल चली है, तब धरती, पहाड़, फूल-पत्ते सब रोए हैं। शकुन्तला जब चली थी तो हिरण ने पल्लू पकड़ लिया था और ऋषि की आंखें तालाब हो गई थीं। पार्वती जब चली थीं तो महाकवि तुलसी को लिखना पड़ा था -

कत विधि सृजी नारि जग माहीं।

पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।।

और जब सीता, जनकपुर से अयोध्या आईं तो बहू के प्रति दुलार भाव में कहा गया -

बधू लरकिनी पर घर आई।

राखहुं नयन पुतलि की नाई।।

त्रेता की अयोध्या में दुल्हन को आंख की पुतली माना जाता था। लेकिन समाज में हर समय और हर जगह पुतली समादृत नहीं थी। ससुराल के कष्टों का एहसास लोक की मां को था, इसीलिए वह अपनी बिटिया को पालकी पर बिठाकर विदा करते समय समझाइश देती है, प्रबोधित करती है -

सासु ननद मिलि गरिया जो देइहीं

लइ लिहेउ अंचला पसार।

लोक संस्कृति की यह यथार्थ अभिव्यक्ति है कि मां बिटिया से कह रही है कि ससुराल में कभी कभार, तू-तकार होता रहता है, यदि कभी सास-ननद आक्रोश में गाली दें, कटु वचन बोलें, तो उन्हे आशीर्वाद का फूल समझ कर आंचल में भर लेना।

मुझे फूली सरसों के गदराए खेत याद आ जाते हैं, ज्वार-मकई के छरहरे खेत याद आते हैं, और पोर-पोर, गांठ-गांठ, अंग-अंग में मिठास लिए ईख याद आती है और याद आता है - फागुन का चांचार, धमार, और होली गीत -

पियरी सोहे, पियरी सोहे

अरे, पियरी, देखि जरे नयना।

अपने बलमुआ से मुंह न बोलैली

आन के, बलम,

भला, आन के, बलम, भरि-भरि बचना बालै

पियरी सोहे।

'अरी ओ मेरी हिया हिरणी! ... ओ मेरी स्वाति जल!... ओ मेरी तृष्णा! ... तुम्हारी पीली धोती को देखकर मेरे नयन जल जाते हैं, अपने बालम से तू इतनी लज्जा करती है, कि मुख खोलकर बात नहीं करती, परन्तु दूसरे के बालम से हंस-हंस कर बोलती और मटकती है।' तब वह अपने प्रिय को उत्तर देती है -

अरे, अपना बलमुआ से हरी-हरी चुड़िया।

हो, हरी-हरी चुड़िया हो।

आन क बलम

अरे, कान का, बलम, भरि-भरि कंगना।

भरि-भरि कंगना, पियरी सोहे।

'अरे, अपने बालम से मुझे क्या मिलता है? कांच की हरी-हरी चूड़ियां, पर दूसरे का बालम मुझे भर बांह कंगना पहनाता है।'

यह होली गीत है। इसमें श्रृंगार, हास्य, प्रेम और रति के गीत होते है। फागुन का संदेश ही रति है। परकीया-स्वकीया के प्रश्न के ऊपर का अनुभव। क्योंकि फागुन आने वाले मधु-माधव अर्थात कृष्ण-राधा की भूमिका रचता है, धरती की सांस-सांस में रति जगाता है।

रूपयानी! मुझे अनेक गीत स्मरण आ रहे हैं, उन्हें मैं तुम्हें अवश्य सुनाऊंगा।

एक अल्हड़ युवती थी, नई-नई थी, ससुराल के कायदा- रीति-रिवाज से

अभी भली-भांति परिचित नहीं थी। आंगन में गांव से आए हुए युवकों के साथ रंग-अबीर कर रही थी, और मुस्कुरा कर बंकिम नेत्रों से देख भी रही थी। इस पर उसका प्रियतम उदास हो गया और अनमना सा देहरी पर बैठ गया। युवती, प्रियतम की मनःस्थिति को समझ गई और बोली -

हंसना मोर सुभाव बलम संका न माना!

यह फागुन का स्वाभाविक उत्सव है, रिवाज है। उस रस्म को पूरी कर दिया, बस। अल्हड़ युवती ने यद्यपि सब साफ कर दिया, लेकिन प्रियतम का मन अनमना ही बना रहा।

एक दूसरा गीत सुनाता हूं, बड़े मधुर भाव वाले बोल हैं -

ओ, मोरे! सैंया,

साड़ी ले आउ, जउने मां लाल किनारी।

इस फागुन में मदमाती युवती अपने रतनारे नयनों से प्रियतम को देखकर कहती है - ओ, मेरे प्रियतम! मेरे लिए साड़ी ले आओ, जिसमें लाल किनारी लगी हो। लाल रंग प्यार का प्रतीक है, लाल रंग मादकता का प्रतीक है। इसलिए प्रगल्भ प्रिया, अपने प्रियतम से लाल किनारे वाली धोती चाहती है।

एक और फागुन गीत है। भरा-पूरा परिवार है, घर में अनुशासन बहुत है। प्रियतम ऊँची अटारी पर सोया है, घर के सभी लोग सोए हुए हैं, पर 'ननद निगोड़िन' जाग रही है। प्रिया अब प्रियतम के पास पहुँचे तो कैसे पहुँचे? प्रियतम तक न पहुँच पाने का दर्द उसे साल रहा है और अचानक बोल पड़ती है -

अँटरी चढ़त मोरा घुँघरू छँमंकइ!

वह एक दो सीढ़ी चढ़ती है तो घुँघरू छन-छना पड़ता है और लौट आती है। यह नारी का दर्द भी है और घर के कड़े अनुशासन का प्रतीक भी है। यह

गमई-गाँव की रीति पर प्रकाश भी डालता है।

रूपयानी! मुझे औरों से सुने अनेक गीत स्मरण आते हैं-

मोरे पिया हो गए कउआ हो, सौतिनिया के कारण!

इस गीत में प्रियतम दूसरी नारी पर आसक्त है, वही व्यथा यहाँ बह रही है। और यह अगला गीत बड़ा प्यारा है। बड़ी सुन्दर सुघड़ नारी है। बाहर प्रियतम के साथ सो गई है। श्रम से थकी नारी, श्रम से थका प्रियतम। दोनों शीतल हवा का संस्पर्श पाकर सो गए हैं, और प्रिया ने नाक में नथनी पहन रखी है-

कागा, नकबेसर ले भागो हो,

पिया अभागा न जागा!

कौआ, सोई हुई पिया की नथनी नोच कर भाग जाता है। वह तो दर्द से जाग पड़ती है, और प्रियतम हिलाने-डुलाने पर भी जब नहीं जागा, तो वह गीत के रूप में बोल उठती है। लोक साहित्य की यही सब से बड़ी विशेषता है कि प्यार करते हैं तो गीत से, रोते हैं तो गीत से, खुश होते हैं तो गीत से, नाराज होते हैं तो गीत से।

एक और मुग्धा नायिका के सोने का चित्रण है। नायक उसे देखकर आसक्त और रसमय हो रहा है। लेकिन नायिका अनजान और बेखबर मुग्धावस्था में सोई पड़ी है -

बहे पुरवइया का लहरा हो गोरी सोवे अंगनवां!

ये सब गीत फागुन के हैं, होली के है। फागुन में आम, कटहल, बांस सभी बौराए रहते हैं। बांस, बांसुरी इस मास में एक आनन से नहीं, दशानन से होकर बजती है।

गीत के विविध रूप, चारों ओर जीवन में व्याप्त हैं और फागुन में फाग,

चैत में चैता, सावन-भादौं में कजली-हिंदुली, आश्विन में रामलीला और अगहन में रासलीला लोकजीवन को सामूहिक सौंदर्यबोध-क्षमता के साथ जोड़ते हैं।

हम भारतीय हैं, अतः हम न तो कोरे भौतिकवादी हैं, और न कोरे आत्मवादी। हम भौतिकवादी और अध्यात्मवाद दोनों का सामंजस्य बना कर चलते हैं। हमारी संस्कृति, धर्म, और हमारा साहित्य इसका प्रमाण है। हमारे व्यायाम और समाधि के बीच की कड़ी है प्राणायाम, जब कि हमारे 'भोग' और 'मोक्ष' के बीच की कड़ी 'रसबोध' है। इन्हें ऋग्वैदिक पूर्वज ने ही पहले-पहल अविष्कृत किया था। सूर्य में, चंद्र में, प्रकृति में और धरती के हृदय में मधुप्राण और सौन्दर्य को उसी ने कहा था - 'मधु वाता ऋतायते मधु क्षरति सिंधवः'। माधुर्य की इस उपासना का उत्तराधिकार हमारे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों में 'शक्कर-दूध' की तरह परस्पर व्याप्त है।

'मधु माधव' हमें प्रेरणा देते हैं, स्वयं मधुमय होने के लिए, एक दूसरे के प्रति परस्पर मधुमय होने के लिए, और परस्पर संयुक्त होकर ऐसी सामूहिक प्रार्थना के लिए कि हमारा उत्तर काल मधुमय हो, हमारी उत्तर दिशा मधुमय हो, हमारे पदयात्री की धूल भरी राह मधुमय हो, हमारे पितरों का धूम्र-मार्ग मधुमय हो, हमारे देवताओं का ज्योतिर्मार्ग मधुमय हो, और हमारा सब कुछ सर्वदा मधुमय हो।

रूपयानी ! अब, तुम्हें एक ऐसा करुण गीत सुनाता हूं जिस पर तुम्हारा विश्वास नहीं टिकेगा, लेकिन विश्वास न होने पर भी क्या यथार्थ बदल जाता है ? नहीं बदलता है। हम लोग उस प्रकार की कल्पना नहीं कर सकते। सामान्य जन की पीड़ाएं, हमारी कल्पना से बाहर हैं। हम उन पीड़ाओं को पकड़ ही नहीं पाते, हमारे बौने हाथ वहां तक पहुंच ही नहीं पाते। चक्की पीसते हुए नारी गा रही है कि रो रही है, इसका निर्णय रूपयानी तुम स्वयं करना। गीत इस प्रकार है :

बदरिया झिमकत आवै, मोरे राजा
सांझ भई दियाबाती कई बेरिया
राजा दुहावन लागें गैया
मैं जेवना बनाउं, मोरे राजा!
आधी रात कोटबरवा के फेरा
राजा बिछावैं सुख सेजिया
मैं जेतवा बुहारूं, मोरे राजा!
भोर भए चुहचुहिया जे बोलै
राजा सहेजैं सिर पागा
सोना अस जनम अकारथ होइगा
राजा करावैं आपन खेती
मैं गेहुंआ बटोरौं, मोरे राजा!

यह गीत गांव-गमई और जंगल की तलहटी में रहने वाले खेतिहरों की जिन्दगी का हलफनामा है। यह गीत उनकी आत्म कथा है, यह उनका जीवन चरित्र है। रूपयानी! तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि रोटी कितनी मंहगी थी, कपड़ा कितना महंगा था! खेतिहरों को दो जून की रोटी और दो जोड़ी कपड़ा की चाहत कितने परिश्रम के बाद फलीभूत होती थी। लेकिन रूपयानी! मनुष्य को रोटी-कपड़ा के अलावां प्रीति-प्यार भी तो चाहिए। वह भी तो आवश्यक है। प्रेम और रस के बिना भला कैसे जिया जा सकता है! कितनी कठिन और करुण है, जिन्दगी!

'बदरिया, छिमकत आवै मोरे राजा' नारी कहती है। कजरारी बदली झुक आई है, फुहारें धरती पर पड़ने लगी हैं। वह अपने प्रियतम को मादक मौसम की याद दिलाती है, लेकिन जी भर कर बात नहीं कर पाती। संध्या उतर आई है और

उसको दीपक जलाना है। दीपक जला कर पुरुष को उजियाला दिखाना है, गाय से दूध निकालना है, बछड़े को बांधना है, चारा-भूसा देना है। और, उसे घर गृहस्थी संभाल कर भूखे आदमी को रोटी बना कर खिलाना भी है। आदमी ने दिन भर खेतों पर काम जो किया है! रोटी खिलाने के बाद, रोटी खाना भी है। जब इस प्रकार काम निपटा कर पुरुष शैया पर आराम के साथ नारी से सुख-दुःख की बात करने की सोचता है, अपनी प्रिया को जी भर के देखना चाहता है, उससे प्यार करना चाहता है, तब आधी रात में गांव का कोटवार हांक लगा देता है - जागते रहो!! घर इतना बड़ा भी नहीं है कि सोने और प्यार करने का अलग से कोई कमरा हो। बाहर की परछी में ही लेटना पड़ता है। कोटवार की आवाजाही जो गांव की सुरक्षा के लिए रात में फेरा लगा रहा है, वह भी जरूरी है। भला, इस स्थिति में कैसे प्यार किया जा सकता है!

भोर हो जाती है, चिड़िया 'चुहचुइया' बोलने लगती है, वह चक्की में आटा पीसने के लिए उठ जाती है, और पुरुष अपनी पगड़ी संभाल कर खेतों की ओर चल देता है। तब नारी कह उठती है - स्वर्ण जैसी लप-दप देह व्यर्थ हो गई, जीवन भर खेत से खलिहान, और खलिहान से आंगन तक, गेहूं बटोरते- बटोरते देह खाक हो गई!

रूपयानी! अब इधर ध्यान दो। पत्नी के यौवन का उठान और प्रियतम का परदेस में रहना ! पति किस जगह है ... कब आएगा ... और किस साल आएगा ... युवती को कुछ भी पता नहीं। न चिट्ठी, न पत्री, न संदेश और न जीने-मरने की खबर ? इधर मेघ है कि पानी पर पानी बरसाए जा रहा है। वर्षा की ऋतु है तो पानी तो बरसेगा ही, और बरसात के जो पारम्परिक त्यौहार हैं, वे भी तो होंगे। यह गान नागपंचमी का है और इस गीत का नाम 'कजली' है। रूपयानी! कजली गीत में दर्द देखो! यह ऐसा दर्द है कि लगता है कि सामाजिक व्यवस्था की जो पोथी है न, उसके पन्ने-पन्ने, पृष्ठ-पृष्ठ फाड़ दिए जाएं! चींथ डाले

जांय! किस दुर्दिन में सामाजिक व्यवस्था की न्याय संहिता बनाई गई थी, यह समझ के परे है ! गीत की पंक्तियां इस प्रकार हैं -

आज नागपंचमी पुतरी साजइ ननदी
पै, हमहूं तलौना घाटे जाबइ हो ना।
एहीं गोड़े जाबइ, दूसरे गोड़े बहुरब
पै, सांझि कइ करिबै, रसोइयउ हो ना।
हमरी चुनरिया सासु धुमरी भइ हइ
पै दइ देतिउ, आपन चुनरियउ हो ना।
हमरी चुनरिया, बहुआ फटि-फटि जइ हइ
पै लइ लेतिउ, जेठानी कइ चुनरिया हो ना।
हमरी चुनरिया लहुरी फटि-फटि गइ हइ,
पै लइ लेतिउ ननदी कइ चुनरियउ हो ना।
अपनी बतिया भउजी बोली न पाइन
पै तमकि कइ ठाढ़ी ननदियउ हो ना।
आपनि चुनरी न देवइ गोरी भउजी
पै लइ लेउ दूसर चुनरियउ हो ना।
बरइ संझवाति ढुरइ हो लागी अंखियां
पै, बरसइ सवनमा कइ बदरियउ हो ना।
तपति रसोंइया चुअई लागे हो अंसुआ

पै बुझइ लागे जरत अंगरबउ हो ना।

सूनी अटरिया झींगुर झनकारई

पै भीजइ लागे धूमर अंचरबउ हो ना।

सावन भादौं कई राति अंधिआरी

पै, बरसई रहि रहि बदरियउ हो ना।

रूपयानी! वर्षा ऋतु में जब हरसिंगार की मादकता समूचे वन-प्रांतर में फैल जाती है, और जब कदंब की फूली डालियों में झूला पड़ जाता है, और जब कजली गीत की स्वर-लहरियां गनगना कर धरती से गगन तक उठने लगती हैं, तब क्या बड़े घर की नारियों की देह पर ही यौवन धर्म उभरता है? गरीब की झोपड़ी में रहने वाली अल्हड़ यौवना की फटी-मैली चुनरी के भीतर क्या उसके वक्षोज अपने प्रियतम की याद में कसमसाने नहीं लगते हैं? क्या परदेसी प्रियतम की उसे याद नहीं आती?

नागपंचमी के अवसर पर तालाब में 'पुतरी बहाने' जाती हुई गांव की अल्हड़ लड़कियां और नवयौवना बहुएं सजधज कर, महावर-मेंहदी लगाकर, गीतों के सुर से समूचे वातावरण को गुंजार देती हैं। तालाब के पानी में हलचल मचा देने वाली ध्वनि के कंपन से युवती की देह पर रस उतर आता है, और उसे सजने का मन हो आता है, पर फटी, मैली-कुचैली चुनरी ओढ़ कर वह तालाब में सब के साथ पुतरी कैसे बहाने जाय! इस कारण वह सबसे चुनरी मांगती है, उस समय तक के लिए जब तक वह पुतरी बहाकर न आ जाय। लेकिन, न सासु देती है, न जेठानी देती है और न ननद ही देती है। वह बेचारी भरी बरसात में प्रियतम के विरह में गर्म-गर्म टेसुए बहाती है, जिनसे भोजन बनाते समय अंगारे बुझने-बुझने लगते हैं। प्रियतम के आने की न कोई आस है, न कोई अवधि। उसकी शैया के पास झींगुरों की चीखती झनझनाहट है। उमड़- घुमड़ कर, रुक-

रुक कर बादल बरस रहे हैं और वासक शैया पर विरहिणी तड़प रही है।

रूपयानी ! अलग-अलग दुःख हैं, अलग-अलग सुख हैं। सुख-दुःख की सबकी अलग-अलग विषयवस्तु है। कोई रोटी के कारण दुःखी है, कोई ईर्ष्या के कारण दुःखी है, तो कोई प्रियतम के विरह में दुःखी है।

लेकिन रूपयानी ! जो सुख-दुःख से परे हो जाता है, और जो सांसारिकता का परित्याग कर चुका होता है, वह अपने सुख को कैसे व्यक्त करता है, यहां देखो ! जैसे तुलसीदास को वर्षा ऋतु अच्छी लगती है। लहराती धान, नहाए-नहाए पेड़-पौधे, उफनती हुई नदियां ! तुलसी इन सब अच्छी लगने वाली चीजों को समेट कर कहते हैं -

बरसा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास!

राम नाम बर बरन जुग सावन-भांदव मास।।'

उन्हें सावन-भादौं राम जैसे लगते हैं, वर्षा ऋतु रघुपति की भक्ति जैसी लगती है। इसी तरह लोकायतन की व्यवस्था का मारा, नारी का यौवन, प्रतीक्षा और मनुहार करते-करते, देखो कैसे बासी हो जाता है ! कैसे फूल की पंखुड़ियों से उसका रस निथर जाता है ! लोकांचल की कजरी है -

पांच ढोल परमां, पच्चीस सुपरिया, नहीं हो आए न!
ननदी तोंहार बिरनमां नहीं हो आए न!
कारे कारे मेघवा अंगन घहराने, बरसि गए न
अइसी बड़ी-बड़ी बुंदिया बरसि गए न
पांच ढोल पनमां झुराने मोरी ननदी
ई पच्चीस सुपरिया घुनई हो लागी न!

काले-काले मेघ आंगन में घहराते हैं, बोलते हैं, बरसते हैं, पर, ननदी

तुम्हारा भाई इस मौसम मे भी नहीं आया। पान रखे-रखे सड़ गया, सुपारी घुन गई, पर प्रियतम नहीं आया। उसके सत्कार के लिए, 'पान-सुपारी' सहेज-सहेज कर रखी थी, लेकिन वह नहीं आया। अब ये सड़-घुन गए हैं, इन्हें फेंक देती हूं। गीत की पंक्तियां आगे बढ़ती हैं -

बारह बरिस ते भए परदेसिया, नहीं हो बहुरइ न।
ननदी तोरा भइया दगाबजवा नहीं हो बहुरइ न !!
ऐसन भउजी संग कजरिया खेलिहौ लेतिउ न
फूलइ लागे फुलवा भरइ हो लागे तलवा लहकि रही ना
ऐसन पुरइन, पतिया लहकि रही न!!
बरहा बरिस कै लई आए मोरी डोलिया
ननदी कमरू कै देसा, चले होइगें हो न
जइसे नरियरवा कै खपड़ी जे सूखइ सूखन लागी न
ननदी सोन अस देहिया सूखन लागी न
जइसे ओरिया केर बंसवा जे टपकई चुवइ हो लागी न!

ओ ननदी! और किससे कहूं अपना दुःख? तू ही सब दुःखों की साक्षी है। तेरे भाई को परदेस गए हुए बारह वर्ष हो गए, और आज तक वह नहीं लौटा। वह तो बहुत ही दगाबाज निकला। उसको बिल्कुल सुधि नहीं आई कि इन बारह वर्षो के सावन-भादों में मेरी कैसी गुजरी होगी? इधर सास हैं कि मायके भी नहीं जाने देतीं! कहती हैं कि तुम अपनी भाभी से ही कजरी क्यों नहीं खेल लेतीं! दुःख को भी कहीं सहारा चाहिए ननदी, पर कहीं भी, कोई सहारा नहीं है। क्या करूं? कहां जाऊं? यह पीड़ा अपनी कहां ले जाऊं?

और उधर देखो न! फूल फूलने लगे हैं। तालाब पूरा भर गया है। पुरइन लहक-लहक कर तालाब की लहरों से मतमथ का खेल, खेल रही हैं। पुरइन के

पत्तों से लहरें ऐसी मथमथा कर मिलती हैं कि मेरा जी सिहर उठता है।

जब मैं ठीक बारह वर्ष की थी तब तेरा भाई मुझे डोली पर बिठा कर लाया था। और अब, उसे बारह वर्ष हो गए परदेस गए हुए! ननदी! तुमसे कैसे कहूं कि चौबीस वर्ष की उम्र हम नारियों की सावन-भादों की उफनती नदियों के समान होती है। नदी कगार तोड़ देती है, तट के वृक्षों को झकझोर देती है। सब-कुछ बहाकर ले जाने की उसमें सामर्थ्य होती है। वैसी ही इस समय मेरी भी उम्र है। और, इस स्थिति में तुम्हारा भाई कामरूप देश चला गया! कामरूप देश को मैं जानती हूं। वहां की नारियां आदमी को अपने जादू से वश में कर लेती हैं। भैया तेरा छरहरा जवान है, इसीलिए वह वहीं का होकर रह गया है।

मेरा तन नारियल की खोपड़ी के समान सख्त और रसहीन हो रहा है। मेरे बाल जो काली घटाओं के समान चारों दिशाओं में लहराते थे, नारियल की जटाओं जैसे हो रहे हैं। मेरी सोने जैसी लकदक, दिपदिप सजल देह सूखने लगी है।

रूपयानी! फूल और पानी से भरा तालाब, यौवन के प्रतीक हैं। यौवन की समस्त मादकता, उसके शुभ्र अनुराग और समर्पण के प्रतीक। उक्त गीत में नारी अतृप्ति की तृप्ति चाहती है। अ-रति की रति, और अथ की इति चाहती है। यौवन तृप्ति का, रति का और इति का प्रतिबिंब है। कालिदास के अज, भास के उदय, भवभूति के माधव, बाणभट्ट के चंद्रापीड़, इंदुमती, वासवदत्ता, कादंबरी साहित्य के प्राण रस बन गए हैं, और यह गांव-जंगल में रहने वाली नारी अपने कजरी गीत में रो-रोकर अपने यौवन के दहकते अंगारों को आंसुओं से बुझाती हुई अपरिचित बनी हुई है।

मदचक्र का होना हर नारी की स्वाभाविक प्रक्रिया है, लेकिन उस मदकाल में धधकते कुंड में आहुति भी तो होनी चाहिए। विरह से तड़पती नारी की कथाएं लोकगीतों में भरी पड़ी हैं। उनका उद्‌घाटन और विश्लेषण इसलिए

जरूरी है कि ये श्रुतियां विनष्ट न हो जाएं! यदि ये श्रुतियां नष्ट हो जाएंगी तो उस काल के लोगों की जिंदगी का पता लगाना मुश्किल हो जाएगा।

सामंत और राजाओं की मदभरी आंखें, दरेरदार मूंछें, बलिष्ठ भुजाएं, हाथ पर कोड़े की फटकार तथा घोड़ों के टापों के निशान गरीब की पीठ, छाती और उसकी सकल देह पर मौजूद हैं। ये निशान आज भी सामंतों की दहशत भरी कहानी गीतों और कथाओं के माध्यम से कहते हैं, और कहते ही रहेंगे। क्योंकि उनके द्वारा दिया गया दर्द कभी भुलाने लायक हो ही नहीं सकता।

लेकिन रूपयानी, अब मैं गांव की जिस दुःखियारी, हतभागिनी और भूखी, विवश, अधनंगी नारी का लेखा प्रस्तुत करने जा रहा हूं, उसका दुःख दूसरे प्रकार का है। उसे यह दुःख, सीता, द्रौपदी और दमयंती की भांति उसके अपने लोगों ने ही दिया है। उसकी सास ने। उसकी ननद ने। शेष लोग मौन बैठे हैं। प्रश्न यह है कि घर का सारा दुःख और घर का सारा अभाव नारी अकेली ही क्यों भोगे ? रोटी का अभाव वह अकेली ही क्यों झेले ? कुत्ते, बिल्ली तक खाना खाएं पर वह न खाए ! ऐसी गुड़-गोबर व्यवस्था का दर्द ही इस गीत का प्रबल भाव है। गीत इस प्रकार है -

अंगना बटोरत टूटि गई बढ़निया
पै सासु मोरी मुंह भर गरियावई हो न!
सरग उड़न बिनि चिरैया बहिनिया
पै, माया ते कहितिउ संदेसबउ हो न!!
एक सींक बढ़नी के टूटे मोरी माया
पै सासु मोरी भइया गरियाबइ हो न!
एक बोझा बढ़नी पठइ देइहीं मोरि माया
पै, पठइ देइहीं बिरना हमारेउ हो न!!

बरसन लागी सावन केरी बुंदियां
पै, हमरे बिरन नहिं आए हो न!
और पहुनवां ता नित-नित आबंई
पै, भइया पहुनमा नहिं आबई हो न!
उड़ि जा रे उड़ि जा मुड़ेरी ते कगवा
पै, हमरे बिरन चले आमै हो न!!

लीले लीले घोड़वा दुआरे हिहिनाए
पै, हमरे बिरन चले आबई हो न!
आगे आगे आमैं मोर भइया बिरनवा
पै, पाछे पाछे बढ़नी कइ बोझबउ हो न!
कहना उतारी सासु बढ़नी कै बोझवा
पै, कहना बैठाई बीरन भइबउ हो न!!
अंगने धरावा बहुआ बढ़नी कइ बोझवा
पै, ओसारे बइठावा बिरन भइबउ हो न!
घर आए आजु मोरे भइया पहुंनमा
पै, सासु काहे रची जेउनरियउ हो न!
अंकड़ी कोदइया बनावा मोरी बहुआ
पै, भइया का रचा जेउनरियउ हो न!!
आग लगइ सासू तोरी अंकड़ी कोदइया
पै, हम नाहिं करबै रसोइयउ हो न!

जीर अस चाउर मूंग कइ दरिया
पै, भइया का रचब जेउनरियउ हो न!!
अंगना पहुंच बहिनी भेंटइ बिरनमा
पै, भरि आई रतन पुतरियउ हो न!!
जेमन बइठें हंइ सार बहनोइया
पै, भइया के चुअइं लागीं अंखियउ हो न!

पान-फूलन अइसी बहिनी ज पठएन
होइगै कारी कोइलियउ हो न!
एतना जो सुनिन राजा जी के पुतवा
पै, झमकि कइ चढ़िगें अंटरियउ हो न!!
लोहबा जरई जस लोहरा कई भठिया
पै, बहिनी जरई ससुररियउ हो न!
खांची भर भंड़वा मंजाबै मोरी सासू
पनिया पाताल से भरावइ मोरी सासू
जो तूं देखा भइया मोर पहिरना
पै, जइसे सवनमा के बदरिउ हो न!!
राति भर पीसउं भइया दिन भर पोबउं
पै, बाचइ पगछिल टिकरिइउ हो न!!
ननदी-देवरवा का राखौं कलेउना
पै ओहूं मा कुकरा बिलरियउ हो न!

ई दुख भइया मोरे माया ते न कहबइ
पै, अंचरा अंसुआ भरि जइहीं हो न!
ई दुख भइया मोरे बाबू ते न कहबइ
पै, छतिया बिदरि मरि जइहीं हो न!
ई दुख भइया मोरे भौजी ते न कहबइ
पै, दुइ चारि घर कहि अइहीं हो न!!
इतनै बंधी भइया दुख के गठरिया
पै, इहनै छोरि घर जाएउ हो न!
जब जब मोरे भइया सावन लागइ
पै, बहिनी कइ सुधिइउ लै लीन्हे हो न!
रोवत ना निकरे एंह बारे बिरनमां
पै, बहिनी रोबई जल धारिउ हो न!!ऋऋ

रूपयानी! निराला की 'सरोज स्मृति' से भी अधिक करुण है यह गीत। लयात्मक, ध्वन्यात्मक और अभिधात्मक है। तुम्हें ऐसा नहीं लगता रूपयानी, कि सदियों से नारी का शोषण नारी ही करती आ रही है? उसकी अवमानना नारी ही करती आ रही है? कहीं वह उसे भूखी मार रही है, कहीं जला रही है, और कहीं सांप की सब्जी खिला रही है? नारी के खिलाफ नारी द्वारा किए गए अत्याचार का हिसाब क्या तुम्हें नहीं लगता कि शोध का विषय है? रूपयानी! लोकसाहित्य, लोककथा, और लोकगीतों में जो नारी के आंसू टपकने के निशान हैं, वे सब नारी की ही मार से निकले हुए आंसू हैं!

सामाजिक व्यवस्था का दृश्य देखो कि आंगन बटोरने का झाड़ू यदि झड़ गया है तो सास, बहू को उलाहना देते हुए उसके भाई को गाली देती है कि अभी तक झाड़ू का बोझा तेरे भाई ने नहीं पठवाया है।

उस समय चिट्ठी पत्री, संदेश आने ले जाने का कोई सटीक साधन नहीं था, इसलिए बहू आकाश में उड़ने वाली चिड़ियों को बहन का संबोधन करते हुए संदेश पहुंचाने की मनुहार करती है। वह कहती है कि ऐ चिड़िया बहन! मेरे मायके जातीं और कहतीं कि बढ़नी की एक सींक टूट जाने पर मेरी सासु मेरे प्रिय भाई को गाली देती है, इसलिए बोझा भर बढ़नी भाई लेता आए।

चिड़िया ने संदेश क्या कहा होगा? वर्षा ऋतु आ गई, सावन की बदली झमाझम पानी बरसा रही है, पर मेरा भाई नहीं आया। इस घर मे कोई न कोई मेहमान अतिथि आता ही रहता है, पर मेरा भाई कभी नहीं आता। बहू अपने भाई की याद में रोने लगती है। घर की मुड़ेर पर बैठे हुए कागा से कहती है - हे काग, उड़ कर शगुन कर दे, जिससे मेरा भाई तो आ जाय! लोक - विश्वास है कि मुड़ेर पर बैठा काग उड़ कर उस दिशा की ओर जाय तो शुभ होता है।

एक दिन बहू का भाई झाड़ू का बोझा लिए बहन के ससुराल पहुंच जाता है। बहन प्रसन्न हो जाती है और अपनी सासू से पूछती है कि मेरा भाई कितनों दिन बाद आया है, भोजन में क्या बनाना है? तब सासू कहती है कि बिना कूटी कोदई रखी है, उसी का चावल रसोई में बना ले।

रूपयानी! तुम इस बात को समझ लो कि कोदौ का चावल इतना नीरस और रूखड़ होता है कि पानी पी-पी कर ही गले के नीचे उतरता है।

सासू के इस प्रकार कहने पर पहली बार बहू मुंह खोलती है कि अपने भाई के लिए कभी कोदौ का चावल नहीं बनाऊंगी। जीरा जैसा पतला महकता चावल और मूंग की दाल अपने भाई को खिलाऊंगी।

जब भोजन के लिए साला और बहनोई एक साथ बैठे तो साले ने बहनोई से बहिन की विपत्ति कही कि आप तो उसके सब कुछ हो, घर के दूसरे लोग ख्याल रखें न रखें, आप को तो रखना चाहिए। पान के पत्ते जैसी हरी और फूल जैसी सुंदर सरस बहिन को मैंने आप के पास विदा कर भेजा था, पर वह तो अब

काली कोयल के समान हो गई है। बहनोई साले की इस बात पर नाराज हो कर चला जाता है।

किसी तरह मौका मिलने पर बहिन भाई से मिलती है और, अपनी करुण स्थिति का बयान करते हुए कहती है कि जैसे लोहार की भट्टी में लोहा तपता और जलता है, उसी प्रकार मैं इस ससुराल की भट्ठी में जल रही हूं। सास घर के पूरे बर्तन मंजवाती है, दूर कुएं से दिन भर पानी भरवाती है। सिर पर घड़े पर घड़ा रखकर चलने से, और घड़ों की छलकन से साड़ी ऐसी भीगी रहती है जैसे सावन की बदली। भइया, अधिक तुमसे क्या कहूं, रात भर चक्की पीसती हूं और दिन भर रोटी बनाती हूं। इस पर भी पीछे की जो रोटियां बचती हैं, उसमें ननद और देवर को कलेवा रखने के बाद, कुत्ते और बिल्ली को खिलाती हूं, और उसके बाद जो रोटी बचती है, उसे मैं खाती हूं। कभी बचती है, कभी नहीं भी बचती है।

लेकिन मेरे भाई! मेरा यह दुःख मां-बाप और भाभी से मत कहना। मां सुनकर दिन भर रोएगी, और बाप का कलेजा फट पड़ेगा! भाभी तो पूरे गांव में कह-कह कर रस लेंगी। भाभी ननद के रिश्ते की खटास तो तुम जानते ही हो।

भइया, मेरे दुःखों की गठरी जो तुमने देखी-सुनी है, उसे यहीं छोड़ कर जाना। घर तक बिल्कुल न ले जाना। हां, एक बात जरूर करना। जब-जब सावन आए एक बार बहिन से मिलने जरूर आना। इतना कहकर बहिन की आंखों से सावन बहने लगता है, और भाई डबडबाई आंखों से बहिन से विदा लेकर चला जाता है।

रूपयानी! लोक साक्षी है, लोक के गीत साक्षी हैं कि सास-ननद का रिश्ता बहू से कभी मिठास-भरा नहीं रहा। सास-ननद मिश्री और शहद बोलने वाली बहू से भी टोनही भाषा में ही बोलती हैं। बहू चाहे सास को जितना सम्मान

दे, ननद को चाहे जितना दुलार और स्नेह दे, इन दोनों को बहू कभी पसंद नहीं आती।

सासु-ननदिया मिलि पनिया का निकरी
पै, झिमकत आबइ बदरिइउ हो न!
एक पग चलिन दूसर पग चलिन
पै, गोड़वा मां अरझि नगनियउ हो न!!
गोड़े ते झिटकिन हथवां मां लेकिन
पै, ओलिया मां बाघिन नागिनियउ हो न!!
हंसिया मां पौलइ, थलिया मां धोबइ
पै, रुचि कइ रचिन जेउनरियउ हो न !
उहंन ते बोली हइ सासु बढ़ैतिनि
कइले बहुआ जेउनरियउ हो न!
अतने दिना सासू मोरी मुखहूं न बोलीं
पै, आजु ऊ बहुआ गोहरावइ हो न!!
अंचरा संवारत उतरी ओसरवा
पै बैठि करइ जेउनरियउ हो न!!
एक कौर डारिन, दूसर कौर खाइन
पइ तिसरे मां मुड़वा टनकइ हो न!
झमकि कइ चढ़िन गइ रतन अंटरिया
पै सोइ गई चंदन पलंगइउ हो न!

कबै के विदेसिया, कबइ घर पहुरें
पै पूछइ लागे माया ते खबरियउ हो न!
हम पुतवा राति-सांझि जेवना बनावउं
पै तोर धनि सोबइ अंटरियउ हो न!
एक हाथे लिहिन गुलाब कइ छड़िया
पै, झमकि के चढ़िगे अंटरियउ हो न!
एक छड़ी मारिन, दूसर छड़ी मारिन
पै तिसरेउ न जागी बहुरियउ हो न!
तू मोरी माया, तू मोरी बहिनी
पै मारि डारे सुंदर धनियउ हो न!
अइसन धनिया सुरत छाड़ा पुतवा
पै रचि देबइ दूसर बियहबउ हो न!
सोनवा सी धनियां न पउबइ मोरी माया
पै, हमहूं जोगिया बनि जाबइ हो न!!

रूपयानी! अभी तक का यह इकलौता गीत है जिसमें नारी का पति अपनी मां और अपनी बहन के दुष्कृत्यों का विरोध करते हुए योगी बन जाता है।

बहू को सासु-ननद मिल कर 'नागिन' की सब्जी बनाकर खिला देती हैं और बहू मर जाती है। जब परदेस से लौटने पर पुत्र अपनी पत्नी की खोज करता है, और मां-बहन से पूछता है कि बहू कहां है, तो दोनों उलाहना देते हुए कहती हैं कि वह तो चंदन के पलंग पर सोई हुई है और हम यहां भोजन बना रहे हैं।

पति अटारी पर जाता है। बहू को छड़ी से एक-दो-तीन मारता है, लेकिन विषैली नागिन की सब्जी खाकर मरी पड़ी बहू भला कैसे जगे!

पति माजरा समझ जाता है और अपनी मां-बहन से कहता है कि तुम लोगों ने मेरी सुंदर पत्नी को मार डाला है। अब मैं दूसरा विवाह नहीं करूंगा। वह योगी बनकर घर से निकल जाता है।

इस गीत के अंत में जिस प्रकार नारी के पति ने विरोध किया और घर छोड़कर चला गया, उसी प्रकार सास-ननद के कष्ट देने पर नारी के पक्ष में पति यदि सदैव खड़ा हो जाया करे, तो बहुओं का कष्ट दूर ही न हो जाय!

रूपयानी! आदि मानव, और उनके बाद, लोकमानव हमारे पूर्वज हैं। और, अपने पूर्वजों का इतिहास जानना जरूरी होता है। पूर्वजों का इतिहास, कथा, उपकथा और गीतों के माध्यम से ही तो पता चलता है। क्योंकि अलग से इनका प्रामाणिक दस्तावेज कहीं नहीं है। गीत और कथाएं ही इनके दस्तावेज हैं। रूपयानी! लोक अंचल बना रहेगा, तभी लोक संस्कृति भी बनी रहेगी। इसीलिए जरूरी है कि -

- हम जंगल के, और जंगल हमारा बना रहे।
- हम वन्य और ग्राम्य बने रहें।
- नारियां बंडी, धोती, लहंगा पहनती रहें।
- गाय-बकरी दुहते रहें।
- खेत से खलिहान तक फसलें लाते रहे।

ऐसा जब हम करेंगे, तभी हमारी लोक संस्कृति, हमारे लोकगीत, और हमारी लोककथाओं को हमारे अधरों से कोई छीन नहीं सकेगा। इस बहस का सबसे बड़ा उदाहरण यह है -

- कृष्ण ने जब गाय चराना छोड़ दिया...
- दूध दुहना छोड़ दिया...

- मित्रों के साथ खेलना छोड़ दिया...
- और, गांव छोड़ दिया...

.... तब उनके हाथ से, उनके अधर से बंसी छिटक कर दूर जा गिर पड़ी। कृष्ण जब तक गोकुल-वृन्दावन (गांव) के बने रहे, तब तक संगीत चलता रहा, नृत्य चलता रहा। कृष्ण के गीत-संगीत और नृत्य में अहीर भी नाचता रहा, अहीरिन भी नाचती रही, साधु-सन्यासी भी नाचते रहे, गाएं, यमुना भी नाचती रहीं, कृष्ण की बंसी सब को नचाती रही।

संगीत से, गीत से, नृत्य से और बंसी से युग-युगान्तर की साथी राधा बनती है, और छल से, कपट से, बाण से, और चक्र से रुक्मिणी बनती है। लोक 'साक्षी' है। राधा 'भाव' है और रूक्मिणी 'राजनीति' है।

आज समाज से गीत छूट रहा है, नृत्य छूट रहा है। इसीलिए हम आदमी से डरने लगे हैं, हम आदमी से घृणा करने लगे हैं और हम आदमी से कूटनीति करने लगे हैं।

पालकी से दुल्हन जब अपना पहला पैर गीत, संगीत और संस्कार के साथ उतारती थी, तो होता था -

- संगीत, रोटी पोती मां की थपकी में....
- संगीत, आंगन बटोरती भाभी की चूड़ियों में....
- संगीत, पुतरा-पुतरी बनती बिटिया की अंगुली में...
- संगीत, धान पछोरती दादी की अंगुलियों में....
- संगीत, हल के फाल में, बैलों की घंटी में, पनघट की गगरी में, धान और गेहूं की बालियों में।

लेकिन अब, चौपाल की कहानी, चौतरे का चुटकुला, ओसरिया का रामायण, आंगन का बनरा आज सहमा हुआ है। मनुष्य ने लोक संस्कृति को फालतू की चीज समझकर अपनी जिन्दगी से काटकर अलग कर दिया है। आज बड़े मुश्किल से जतवा, चकरी, चकरा चलते हैं। सोचो, जब चकरी नहीं तो गीत कहां से उभरेगा? कुएं के पाट पर, नदी तालाबों पर गगरी के ऊपर गगरी जब नहीं बैठेगी, तो गीत कहां से उभरेगा? हैण्डपम्प से बाल्टी में भरे गए पानी में वह तासीर कहां, जो गीत पैदा कर सके।

रूपयानी! पीपल-बरगद गांव से नदारद हो गए हैं। ब्राहाण ने शंख बजाना छोड़ दिया, अहीर ने बकरी चराना छोड़ दिया। चमार ने नगरिया, कोल ने ढोलक और कोरी ने खंझनी बजाना छोड़ दिया। तेली ने कोल्हू घूरे में फेंक दिया। इन्हें कौन समझाए कि यह तुम्हारी इज्जत है यह तुम्हारी कला है। अपनी कला क्यों छोड़ रहे हो? पहले हर गांव में दोपहर को शंख बजा करता था और रात को ढोलकें और नगरिया बजा करती थी। अब यह सब गांव में नहीं सुनाई देता बल्कि आज, हमारा गांव अपसंस्कृति का शिकार होता जा रहा है।

रूपयानी! आशय स्पष्ट है कि मनुष्य की कहानी, पालना, पालकी, ध्यान और अर्थी है। हमें समझना चाहिए कि लोक संस्कृति भारत की पावन गाथा है। इसकी गाथा यदि समाप्त हो जाएगी तो मनुष्यता भी समाप्त हो जाएगी। लोक संस्कृति समाज की धड़कन है, समाज की पुतली है, समाज का कान और समाज का पैर है। सब जानते हैं कि जब प्रदूषित हवा चलती है तब सभी को प्रभावित करती है। चाहे शास्त्र हों, चाहे लोक साहित्य हो। मनुष्य भी तो इसी धरती का ही है न? युग का संस्कार सभी में लिपटता है, चाहे जो हो। लोकसाहित्य, लोकजन एवं लोक संस्कृति एवं संस्कार की बात चली हो, तो मुझे सौ बार लगता है कि पुराणों-शास्त्रों के श्लोकों और कथाओं से लोक साहित्य अधिक बेहतर, अधिक भेदक और अधिक आत्मीय है।

बरगद का वृक्ष पर्यावरण का सम्राट है। यह वृक्षों का राजा है। जैसे बरगद की डालियां धरती पर उतरती हैं और पानी पीती हैं, वैसे ही लोकसाहित्य और लोक संस्कृति धरती से ही पानी पाते हैं। बरगद का यह गुण अन्य किसी वृक्ष की डालियों को नहीं मिला है। मूल जड़ से बरगद की जब प्यास नहीं बुझती, तब वह डालियों पर बरोहें पैदा करता है। बरोंहे धरती पर झुककर रस ग्रहण करती है। इस प्रकार बरगद की हर प्रमुख डाली बरोहों के माध्यम से धरती से रस ग्रहण कर 'अक्षय' होती है। बरगद अक्षय होता है, कभी बूढ़ा नहीं होता। यह तो सूरज के तपते माथे पर अपने हरे-हरे, बड़े-बड़े पत्तों से पट्टी रखता है।

इसी प्रकार विश्वास करना होगा कि लोक साहित्य भी कभी बूढ़ा नहीं होगा। वह मरेगा नहीं। पुराण और शास्त्र तो कभी व्यास के कमण्डल का पानी पीते हैं तो कभी वाल्मीकि के कमण्डल का। परंतु, लोक साहित्य पानी पीता है, तो नदी, झरनों, और तालाबों का। झरवेरी, महुआ, पीपल, जिमीकंद खाकर जीता है। शास्त्र तो मेवा, मालपुआ खाता है परंतु लोक साहित्य शहद पीता है। सभी जानते हैं कि शहद पीने वाला दीर्घायु होता है। 'अक्षयवट' और 'लोक

साहित्य' को भगवान का वरदान है कि ये गंगा, और नर्मदा के संग-संग चलेंगे, संग-संग बहेंगे और नए-नए स्रोतों से नए होते रहेंगे।

बघेलखंड : जल, जंगल, जमीन और जीवन

पुत्रों अहं पृथिव्या : अथर्व का पृथ्वी सूक्त, पृथ्वी और मनुष्य के बीच माता और पुत्र के सम्बन्ध की स्थापना करता है। दुनिया में जहां भी पुरानी मानव बसाहटें हैं, वे और उनकी संस्कृतियां, वहां के भूगोल और पर्यावरण की उपज हैं।

भौमिकी दृष्टि से विंध्यांचल दक्षिण पेनिनसुला का उठा हुआ पर्वत पृष्ठ है। दक्षिण पेनिनसुला पृथ्वी की सर्वाधिक पुरानी पूर्व केम्बियन मूल की रचना है। विन्ध्यांचल स्थापना को, पूर्व और उत्तर, इन दो भागों में विभाजित किया जाता है। उत्तर विंध्यांचल स्थापना, केमूर, रीवा, और भान्डेर क्रमों में विभाजित है, जो मुख्यतः बलुहली चट्टानों से बने हैं। पूर्व विन्ध्यांचल स्थापना, जो सेमरी क्रम के नाम से जानी जाती है, सोनघाटी में विस्तृत है। इसमें चूने और चिकनी मिट्टी की लाइम स्टोन (चूने का पत्थर) और शैल चट्टानें पायी जाती हैं।

विंध्यांचल ऊंची पर्वतीय धरती की पथरीली मिट्टी का प्रदेश है। यह अनेक गहरे और सुन्दर प्रपातों से सज्जित, वनों से ढंका मनोरम भू-भाग है। यहां की अधिकांश नदियों का बहाव उत्तर की ओर है, और वे गंगा के दोआबे में जाकर मिल जाती हैं। नर्मदा एक मात्र नदी है जो पश्चिम की ओर विन्ध्यांचल और सतपुड़ा की पहाड़ियों के बीच बहती हुई अरब सागर में गिरती है। इस क्षेत्र की सभी नदियां वर्षा के जल पर निर्भर होती हैं, और गर्मी के मौसम में छोटी-छोटी जल धाराओं में बदल जाती हैं। यहां की मिट्टी रेतीली और पथरीली है, जिसमें मृदा कोलाइड्स का अभाव है। इस कारण इन मिट्टियों में जलधारक क्षमता बहुत कम होती है। यहां की मिट्टी लाल मिश्रित है। इसमें नाइट्रोजन और

फास्फोरस का अभाव है। गहराई पर इस मिट्टी में लौह अवयवों का जमाव मिलता है। लोहे और अल्यूमिनियम के आक्साइड्स और हाइड्रॉक्साइडों के कारण इन मृदाओं का रंग लाल या पीला होता है। ये साधारणतः हल्की अम्लीय अथवा कहीं-कहीं हल्की क्षारीय होती है।

मृदा कोलाइडों की कमी इन मिट्टियों की सबसे बड़ी समस्या है। उर्वरकों की कमी को तो एक हद तक उनके प्रयोग से दूर किया जा सकता है, किन्तु श्लेष्मकों (कोलोइड्स) की कमी को पूरा करना एक कठिन कार्य है। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण पानी के बहाव के साथ ये कोलोइड्स सदा ढाल वाले निचले प्रदेशों की ओर बह जाते हैं। एक समय यह पूरा प्रदेश पर्वतीय वनों से ढंका था जिससे मिट्टी में कार्बनिक श्लेष्मकों की कमी पूरी हो जाती थी। किन्तु वनों की अवैज्ञानिक कटाई ने इस समस्या को जटिल बना दिया। इस प्रकार इस अंचल की मिट्टी न केवल उर्वरकों की कमी के कारण कमजोर है, मृदा श्लेष्मकों के अभाव के कारण उपलब्ध उर्वरक भी पौधों को प्राप्त नहीं हो पाते। यही कारण है कि इन भूमियों पर कृषि उत्पादन एक कठिन कार्य है। चूँकि, वन अभी कुछ समय पूर्व तक यहां थे, इसलिए कुछ हद तक कार्बनिक श्लेष्मक अभी बने हुए हैं, किन्तु कुछ समय बाद यह खतरा अधिक व्यापक होने की संभावना है।

बुन्देलखण्ड व बघेलखण्ड में औसत वार्षिक वर्षा का मान 150 से 155 से.मी. है, जबकि मालवा में यह 76 से 88 से.मी. है, और भोपाल में 76 से 101 से.मी. है, और ग्वालियर में सबसे कम 52 से 76 से.मी. है, किन्तु पहाड़ी प्रदेश होने के कारण अधिक वर्षा होने पर भी यह पानी बाहर की ओर बह जाता है।

विंन्ध्यांचल का भूगोल और पर्यावरण ही उसकी गरीबी के लिये एक हद तक उत्तरदायी है। यहां की जमीन, पथरीली, रेतीली, उर्वरकता एवं श्लेष्मकता के अभाव वाली है। अधिकांश खेती असिंचित है, क्योंकि पर्याप्त वर्षा के बाद भी वर्षा काल में संग्रहण जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं हुआ, और उससे संबंधित

योजनायें अभी भी अधूरी हैं। मृदाओं में श्लेष्मकता के अभाव से उनमें जलधारण क्षमता नहीं है, और जहां बलुही चट्टानें और शैल हैं वहां भूगर्भ जल की संग्रहण क्षमता नहीं है। आम किसान गरीब हैं।

घासों में बांस और खस की उत्पादक फसलें हैं। ग्रामों में कहीं-कहीं मनुष्यों से अधिक पशु हैं, किन्तु उनके लिए समुचित चारागाह नहीं हैं। जल के अभाव में लाखों पशु गर्मी की ऋतु में मर जाते हैं। आम धारणा है कि अब तक के सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की असफलता का सबसे बड़ा कारण एक ऐसे सरकारी अमले द्वारा इसको चलाया जाना था, जिसके अफसरों में नेतृत्व का गुण होते हुए भी योजना उत्तरदायी ढंग से पूरी नहीं की जा सकी।

विन्ध्यांचल सघन वनों से अच्छादित प्रदेश है। ईसा से 600 वर्ष पूर्व बाणभट्ट इसके सघन वनों का वर्णन करते हैं। बाणभट्ट के समय पर इस क्षेत्र का नागरिक विकास नहीं हुआ था। लोग हरिण के सींगों से कंदमूल खोद कर खाते थे। ऋषि कुमार जंगली सुअरों की डाढ़ो से कमलों के कंद खींचकर निकाल लेते थे। बाणभट्ट जंगली फूलों में आंवला, नारियल, बेर, केला, बड़हर, सुपाड़ी लवली, इलायची, कटहल, आम, ताड़ इत्यादि खाये जाने वाले वृक्षों की चर्चा करते हैं। सुवासित फूलों वाले वृक्षों में वह तिन्तक, तापिच्छ, हिन्ताल, मौलश्री, चंदन, लोध्र, लवंग, केतकी, इत्यादि की चर्चा करते हैं। वास्तव में पहाड़ों के ऊपर और ढालों पर वनों की कटाई से जलस्रोत सूख गये हैं।

वनांचलों के विकास के लिए वन पर्यटन एक महत्वपूर्ण उद्यम है, किन्तु चोरी छिपे शिकार के कारण वन्य पशुओं की संख्या वांछित रूप से नहीं बढ़ पाई है। अनेक पशु हमारे वनों से चले गये। हाथी एक समय बांधवगढ़ के प्राकृतिक जंगलों का हिस्सा था। गेंडा भी एक समय इन जगलों में मिलता था। करौंदा की

झाड़ी का संस्कृत नाम करिमर्द है। यह एक करि हाथी मर्दित क्षुप था। आज करि "हाथी" और करिमर्द, करौंदा दोनों ही जंगल से गायब हो गये हैं। करौंदा की झाड़ियों की जगह लन्टाना और बेशरम ले रहे हैं।

बघेली भाषा

बघेलखंड प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य का प्रदेश है। भौगोलिक दृष्टि से, यहां जगह-जगह धरातल से सहसा उठी हुई कैमोर और मेकल पर्वतमालाओं की ऊंची-ऊंची पहाड़ियां हैं, जिनके बीच से कई नदियों का प्रवाह है। उत्तर भाग मे टमस मंथर गति से बहती है, तो दक्षिण में नर्मदा और सोन के उद्‌गम हैं। घने जंगलों के बीच माड़ो जैसी गुफाएं हैं। पश्चिम में अनेक घाटियों के मनोरम दृश्य हैं - सोहागी, छुहिया, गोरसरी, हरदीघाट, किरर, बदरा पानी तथा जलेश्वर की घाटियां प्रसिद्ध हैं। कई सुंदर प्रपात हैं। इसी सुंदर भू-भाग की भाषा बघेली है।

बघेली, पूर्वी हिंदी प्रदेश की तीन प्रमुख बोलियों, अवधी, बघेली, और छत्तीसगढ़ी में से एक है। बघेली आज भाषा का दर्ज़ा प्राप्त करने की सच्चे अर्थों में अधिकारिणी है। इसके शब्दों की सामर्थ्य अवधी से कम नहीं है। इसका अपना शब्दकोश है, इसका अपना व्याकरण है, और लाखों की संख्या में हैं इसके बोलने वाले। बघेली भाषी क्षेत्र समस्त बघेलखंड है, जिसका भू-भाग लगभग अठारह हजार वर्गमील है। उत्तर में चाक-सोहागी और डभौरा, पूर्व में देवसर-सिंगरौली, दक्षिण में लखौरा-अमरकंटक और पश्चिम में मैहर, सतना, कोठी और सोहावल तक। चूंकि यहां पर लंबे समय तक बघेलवंश का शासन रहा, इसलिए इस क्षेत्र का नाम बघेलखंड और इस बोली का नाम बघेली पड़ा, यद्यपि इसके पूर्व इसका नाम 'रिमहाई' था। बघेली छोटा नागपुर के चांग-भखार तथा रीवा के दक्षिण मंडला जिलें में भी बोली जाती है। इसी प्रकार फतेहपुर तथा हम्मीरपुर भी उसी के अंतर्गत है, किंतु इधर की बघेली में पड़ोस की बोलियों का सम्मिश्रण हो जाता है। संक्षेप में कहें तो अवधी के दक्षिण की भाषा बघेली है।

डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार बघेली की भी उत्पत्ति अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश से हुई है। विद्वानों में विभिन्न मत हैं। कई विद्वानों का कहना है कि बघेली, अवधी ही है, परंतु अंततः विविध प्रकार की भिन्नताओं के आधार पर इसे एक अलग बोली माना गया है। कुछ विद्वानों ने अवधी और बघेली के अंतर को स्पष्ट करने की भी कोशिश की है। डा. ग्रियर्सन ने इन दोनों में कुछ अंतर जो बताए हैं वे इस प्रकार हैं -

बघेली की अतीत काल की क्रिया में 'ते' अथवा 'तै' संयुक्त किया जाता है, किंतु अवधी में इसका अभाव है।

1. अवधी के उत्तम और मध्यम पुरुष के भविष्यत्काल के रूप 'ब' संयुक्त करके संपन्न होते हैं, किंतु बघेली में 'ह' जोड़कर बनाए जाते हैं - यथा - अवधी में 'देखलों', किंतु बघेली में 'देखिहौं'।

2. अवधी 'व' बघेली 'ब' में परिणत हो जाता है।

डॉ. बाबूराम सक्सेना ने बघेली की दो विशेषताओं का उल्लेख किया है, जिनका अभाव अवधी में है। पहला - बघेली विशेषण पदों के दीर्घांत रूपों में 'हा' संयुक्त होता है। दूसरा - आदरार्थ आज्ञा का रूप 'देई' है। डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने अवधी से बघेली की विभिन्नता के कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

जार्ज ग्रियर्सन ने जनता में प्रचलित भावना का ध्यान रखकर ही इसे पृथक बोली के रूप में लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में स्थान दिया है। बघेली भी कई प्रकार की है। राजकीय बघेली, जो रीवा के आसपास बोली जाती है, मिश्रित बघेली जो उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी भाग में सीमांत क्षेत्र के प्रभाव के साथ बोली जाती है, और गोंडानी बघेली, जिसे यहां के आदिवासी बोला करते हैं। बघेली का कौन-सा रूप मानक है, कहा नहीं जा सकता। फिर भी रीवा के आसपास की बोली जाने वाली बघेली को ही मानक मानना उचित होगा।

बघेली की ध्वनियों को हिंदी या उसकी अन्य उप-भाषाओं या बोलियों की

ध्वनियों से एकदम भिन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि इनका उद्गम एक ही है, और ये समीपवर्ती क्षेत्रों में भी बोली जाने के कारण एक-दूसरे से प्रभावित हैं। अतः जब हम बघेली ध्वनियों का विवेचन करते हैं, तो उन्हें हिंदी के ध्वनि-समूह से एकदम अलग नहीं कर सकते, बल्कि बघेली के ध्वनि-वैशिष्ट्य या उसकी विशिष्ट्य प्रवृत्ति की ही ओर संकेत कर सकते हैं। बघेली में ह्नस्व स्वर 'अ' का प्रयोग कम होता है। 'अऽ' तथा 'अं' का प्रयोग अधिक होता है। शब्द के प्रारंभ में प्रयुक्त 'अऽ' स्वर अधिक प्रचलित है, साथ ही स्वराघात-रहित अक्षर 'अं' भी व्यवहृत होता है। 'अऽ' का प्रयोग अर्धविवृत मध्य स्वर के रूप में होता है। इसके उच्चारण में जिह्वा का मध्य भाग ऊपर उठता है, और होंठ कुछ खुले रहते हैं। इसी तरह से अन्य कई विशेषताएँ हैं।

ठेठ बघेली में गेयता है, राजकीय बघेली में दरबारी गरिमा है। इतना ही नहीं, बघेली में विभिन्न स्तरों पर बातचीत करने के लिए अलग-अलग लोच लहजे बाले शब्द और अलग-अलग लोच लहजे की ध्वनियाँ हैं।

बघेली भाषा की विशेषताएँ-

1. बघेली में 'व' की जगह 'ब' सर्वत्र ही प्रयोग होता है अवधी में 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग होता तो है लेकिन कहीं-कहीं 'व' की सुरक्षा की जाती है, जैसे-बघेली में आने को आबा कहेंगे, अवधी में आवा।
2. बघेली में कर्ता की विभक्ति 'ने' का अभाव रहता है। वह के लिये 'ऊ' वर्ण शब्द के सम्मान प्रयोग होता है, जैसे-ऊ कहत है या ऊ कहिस-उसने कहा।
3. यह क्रिया भूतकाल में एकवचन के साथ 'रहेऊ' और बहुबचन के साथ 'रहेन' हो जाता है। भविष्य में एकवचन में 'होइ'
4. खड़ी बोली का यहाँ बघेली में 'इहॉ' या 'इनके' होता है उसी तरह से वहॉ के लिये बघेली में 'ऊहॉ' या 'उनठे' का प्रयोग होता है।

5. बघेली में ऐ, औ को अइ, अउ कहने की प्रवृत्ति है। 'जैसे' का 'जइसे' और औरतें का अउरतें कहा जाता है।

6. बघेली में ण, ड़, य, व के स्थान पर न, र, ज और ब का प्रयोग होता है, जैसे-प्राण-प्रान, थोड़े-थोरे, सुयश-सुजस, विकास-बिकार।

7. 'ल' के स्थान पर 'र' के प्रयोग की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे-फल-फर।

8. बघेली में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिये इ, नि तथा आइन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे ठाकुर-ठकुराइन।

9. बघेली के परसर्गो के प्रयोग में कर्म 'को' के स्थान पर कहँ, कारण 'से' से लिये सो, सम्प्रदान के लिये हेतु, खातिर, सम्बंध का, के, की, के लिये कर, कर तथा अधिकरण में के लिये महँ, मॉझ का प्रयोग होता है।

अन्य विशिष्टताएँ (विशेषताएँ)-

1. सकर्म क्रिया के अतीत के रूप में कर्तावाच्य मे ही चलते हैं।

2. क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिये धातु के अन्त में 'ब' जोड़ देते हैं। चलब, करब, देखब आदि।

3. वर्तमान कालिक कृदन्त-त प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं-जैसे-चलत, देखत, आदि।

4. भूतकालिक कृदन्त धातु के अन्त में-आ,-ई, प्रत्यय से निर्मित होते हैं, जैसे-चलअ, चली आदि।

5. पूर्वकालिक कृदन्त धातु के अन्त में 'कै' और 'कई' प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं- 'चलके', 'खाइकइ' आदि।

अनियमित क्रियारूप-डॉ.उदयनारायण तिवारी के मतानुसार, होव (होना) का अतीत कृदन्तीय रूप भा हो जाता है। इसी प्रकार जाब (जाना) का अतीत कृदन्तीय रूप गा हो जाता है। धातुओं के अन्त में 'ए', 'या' में परिवर्तित हो जाता

है और पुनः उनके रूप में 'होब' की तरह चलते हैं। 'घात्' देता हुआ तथा दयाबा 'तुम दोगे' होता है। देब (देना), लेब (लेना), तथा करब (करना) के अतीत कृदन्तीय के रूप में दीन्ह, लीन्ह तथा कीन्ह होते हैं।

भाषाशास्त्री डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अवधी तथा बघेली में अन्तर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार-भाषा सम्बंधी विशेषताओं की दृष्टि से अवधी तथा बघेली में नाममात्र का अन्तर है, अतएव अवधी से अलग बोली के रूप में इसे स्वीकार करने की आवश्यकता न थी, किन्तु बघेलखण्ड़ की जनता की भावना आदर करने के लिये ही डॉ.ग्रियर्सन ने अपनें लिंगवस्टिक सर्वे में इसका पृथक अस्तित्व स्वीकार किया। ग्रियर्सन के अनुसार अवधी तथा बघेली में निम्नलिखित अन्तर है-

1. बघेली की अतीतकाल की क्रिया में 'ते' अथवा 'तै' संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं, किन्तु अवधी में इसका अभाव है।

2. अवधी के उत्तम तथा मध्यम पुरूष के भविष्यत्काल के रूप में 'ब' संयुक्त करके सम्पन्न होते हैं, किन्तु बघेली में 'इ' जोड़कर बनाये जाते हैं। यथा-अवधी-'देखबै', किन्तु बघेली-

3. अवधी व बघेली में 'ब' में परिणत हो जाता है, जैसे-

   अवधी - आवाज > बघेली - आबाज

   अवधी - जवाब > बघेली - जबाब।

ऊपर की विभिन्नताओं पर विचार करते हुये डॉ. बाबूराम सक्सेना लिखते हैं, ते तथा तै वस्तुतः इता, इतै अथवा इती के लघुरूप हैं। इस प्रकार के लघुरूप केवल अवधी तथा छत्तीसगढ़ी में नही मिलते, अपितु पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में भी ये पाये जाते हैं। इसी प्रकार यह भविष्यत् के रूप में लखीमपुर, सीतापुर, लखनऊ तथा बाराबंकी की भी बोलियों में पाये जाते हैं। व का ब में परिवर्तन भी

अवधी की बोलियों में मिलता है, किन्तु इनके अतिरिक्त बघेली को निम्नलिखित दो विशेषताओं का अवधी में प्रायः अभाव है-

1. बघेली विशेषण पदों के दीर्घान्त रूपों में- हा संयुक्त होता है, यथा-निकहा-अच्छा, भला (भोजपुरी में निकहा तथा निकहन, दोनो इसके लिये प्रयुक्त होते हैं।)

2. आदरार्थ आज्ञा रूप 'देई' (भोजपुरी में देइँ हो जाता है, यथा रउँवा देइँ) ऐसा प्रतीत होता है कि ये विशेषताएँ अवधी में भोजपुरी से आई है।

उपर्युक्त की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि अवधी तथा बघेली में नाममात्र का ही अन्तर है और बघेली को अवधी से पृथक रखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

डॉ. हरदेव बाहरी ने अवधी और बघेली के अन्तर को स्पष्ट करते हुये लिखा है- अवधी की अपेक्षा बघेली में 'व' से 'ब' उच्चारण करने की प्रवृत्ति अधिक है, जैसे-आबा (अवधी आवा) परसर्गो में कर्म सम्प्रदान के क, का, के अतिरिक्त और करण अपादान में 'ते' के अतिरिक्त ता उल्लेखनीय है। सर्वनाम में म्वाँ, मोही (मुझे) वा, तोही (तुझे), वाहि (उसको) यहि (इसको) विशिष्ट है। विशेषण के निर्माण में 'हा' प्रत्यय अधिकतर लगता है, जैसे-अधिकहा, निकहा। क्रियारूपों में निम्नलिखित भेद विचारणीय है-वरामै ता, ते भी प्रचलित है। अवधी में भविष्यत् काल में-ब रूप को बघेली में 'इ' रूप की प्रधानता है, जैसे-जइहौ, कइहौ।

निष्कर्षतः बघेली भाषा के लोच लहजे में समुचित भिन्नता है क्योंकि बघेलखण्ड़ के पूर्वी भाग जैसे देवसर, चितरंगी, बैढ़न आदि में भोजपुरी मिश्रित बघेली तथा पश्चिम में नागौद आदि गावों में बुन्देली मिश्रित बघेली बोली, बोली जाती है। इसी प्रकार उत्तार में बँदही एवं अवधी मिश्रित बघेली प्रचलित है तो दक्षिण में सरगुजही मिश्रित बघेली बोली जाती है। बघेलखण्ड के बीचो-बीच में ठेंठ बघेली बोली जाती है।

अध्याय - दो

बघेली भाषा के काव्यकार

बघेली के शताधिक रचनाकार अपनी विधागत प्रस्तुति से बघेली काव्य भण्डार को सम्पन्न एवं समृद्धि कर रहें हैं। बघेली भाषा के कुछ ऐसे काव्यकार हैं जिन्होने प्रारम्भ में बघेली की ककरीली-पथरीली साहित्यिक भूमि को समतल बनाकर उसे उर्वर एवं उपजाऊ बनाया हैं। बघेली की साहित्य-धरा में उगी हुई झाड़ियों कटीले पौधों एवं कंटक पेड़ों को काटकर जिन बघेली के कवियों ने साहित्य-भूमि को काव्य-कृषि योग्य बनाया है उन्हें हम प्रारम्भिक कवि के नाते, अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पुराकालीन कवि की श्रेणी में रखते हैं। इनमें से हरिदास, बैजू, सैफू, रामदास, पयासी और स्व. शम्भू काकू का नाम उल्लेखनीय है। प्रारम्भिक कवि होने के नाते इनकी रचनाएँ भले ही सहज सरल एवं सपाट बयानी लहजे में हास्य विनोद पर केन्द्रित हैं किन्तु बघेली काव्य का आधार शिला तो यही निर्मित करती हैं। इस काल के कवियों ने बघेली कविता, बघेली कुण्डलियॉ, घनाक्षरी, सवैया, दोहा, आदि परम्परागत विधाओं की परिधि में लेखनी चलाकर बघेली की अस्मिता को जीवन्त बनाने का कार्य किया है।

बघेली भाषा के काव्यकारों को साहित्येतिहास की पृष्ठ भूमि पर हमने दो वर्गों में विभाजित करके अध्ययन करनें का उपक्रम निर्मित किया है। प्रथमतः पुराकवि और द्वितीयतः आधुनिक कवि। आधुनिक कवियों की एक लम्बी सूची हैं। इस सूची में कुछ ऐसे भी कवि हैं जो मूलतः बघेली में लिखते हैं, बघेली के

लिये जीते हैं और बघेली के लिये समर्पित हैं उन्हे हम "बघेली के प्रतिनिधि कवि" के अन्तर्गत रेखांकित करना चाहेगे। बघेली के इन आधुनिक कवियों नें नये-नये प्रयोगो, नवीन प्रतीकों नवीन विम्बो तथा नवीन बघेली मुहावरो से काव्य-वैभव को परिपक्व, परिमार्जित, एवं परिष्कृत तो बनाया ही है साथ ही इन रचनाकारो नें बघेली को भौगोलिक परिधि से बाहर निकालकर पूरे प्रदेश एवं देश में स्थापित एवं प्रतिष्ठित किया है। जिन बघेली के सर्जकों नें अपनी साधना से बघेली काव्य को समर्थवान बनाया है उनमें से कुछ नाम रेखांकित करने योग्य हैं। बघेली के प्रयोगवादी दोहे रसिया लिखकर कालिका प्रसाद त्रिपाठी नें बघेली काव्य को पुष्ट बनाया है तो बघेली के सैकड़ो मुक्तक एवं पचासों बघेली गजलें लिखकर श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' नें बघेली को ऊँचाई दी है। अंजनी सिंह सौरभ एवं हरिनारायण सिंह हरीश, शिवशंकर मिश्र 'सरस' ने बघेली के गीत और बघेली की सवइया से बघेली को प्राणवान बनाया है। इसी प्रकार बाबूलाल दाहिया की बघेली घनाक्षरी सुदामा शरद की सवैया, डॉ. अमोल बटरोही के नवगीत, भागवत पाठक की कविताएँ एवं सवैए, गोमती प्रसाद विकल का प्रबन्धात्मक काव्य और रामलखन निर्मल तथा सुदामा मिश्र बिजय सिंह, डॉ. कैलाश तिवारी आदि की कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। सक्षेपतः इन रचनाकारों को बघेली के प्रतिनिधि कवियों की श्रेणी में रखना उचित प्रतीत होता है।

ऐसे रचनाकार जो मूलतः हिन्दी में लिखतें हैं अथवा बघेली में यदा-कदा शौकियां रूप में कभी कभार अपनी संतुष्टि के लिये लेखनी चलाकर बघेली साहित्य की सेवा करते हैं उनकी रचनाओं को हम अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से "बघेली के प्रतिभागी कवि" की श्रेणी में रखकर इतिहास की पृष्ठ भूमि पर उल्लेख करेगे। निष्कर्षतः बघेली भाषा के काव्यकारो का साहित्यिक परिचय एवं उनकी रचनाओं की वानगी क्रमशः पुराकवि, आधुनिक कवि तथा आधुनिक कवि के अन्तर्गत बघेली के प्रतिनिधि कवि व बघेली के प्रतिभागी कवि शीर्षक के अन्तर्गत उद्धृत है।

बघेली के पुराकालीन कवि

बघेली के वे कवि जिन्होने प्रारम्भ में बघेली की कविताएँ लिखकर आधुनिक कवियों के लिये काव्य-भूमि देकर मार्ग प्रशस्त किया है, उनका उल्लेख उनकी रचनाधर्मिता के साथ क्रमशः उद्घाटित है। भले ही हमारे पुरा कवियों की भाषा शैली सरल सपाट बयानी लहजे मे है, किन्तु हमारे लिये अग्रज कवि हमें एक आधार भूमि तो दिये ही हैं, इस नाते वे प्रणम्य हैं। आज बघेली का समूचा महल इन्ही पुराकालीन कवियों की नींव पर खड़ा हुआ है। पुराकालीन कवियों की रचनाएँ निम्नानुसार है:-

पंडित हरिदास

रीतिकालीन कवि पंडित हरिदास को बघेली का प्रथम कवि माना जाता है। इन्हें बघेली में व्यंग्य विधा की नींव डालने का भी श्रेय प्राप्त है। इनका जन्म सन् 1777 के आसपास, रीवा जिले के ग्राम गुढ़ में हुआ था। हरिदास की कविता में हास्य-व्यंग्य के कटाक्ष देखते ही बनते हैं। यहां तक कि वे भगवान पर भी व्यंग्य करने से नहीं चूकते। अभाव ग्रस्त, और दुःख भरे जन-जीवन के दृश्यों को हरिदास ठहाका मारते हुए व्यक्त करते हैं। इन कविताओं में कवि नें जीवन की व्यथा-कथा एवं घर-गृहस्थी, व मवेशियों का चित्रण भीं किया है।

बघेली कविताएं

कोहू केर गिरा है पगरा,
अउ कोहू के गिरा ओसार।
हरीदास केर मुड़हर गिरिगा,
बइठे रोमइं धरे कपार।।
हरीदास एक भंइसी लीन्हिन,

दस रुपिया अंगरेजी दीन्हिन,
लंबी सींघ पूंछ उटरंग,
दूध-बंध मां कुछू न ढंग,
खाइसि चारा पोंकिसि नीर,
हरीदास के भय उपचीर।।
सुंदर सुंदर सब कहंइ, घिनहा केरी रूप,
राग ताल जानइ नहीं, अइसन हइ बेउकूफ।
अइसन हइ बेउकूफ, तऊ सूपा अस कान हलाबइ,
सगरइ अंगुरी दाबि, जाप करियन अस घर-घर गाबइ।
दक्खिन मसकै खीर, घरे पावै कबहूं नहिं बासी,
कहैं कवी हरिदास हइ इया, सुंदर तस संन्यासी।
हरीदास डेहरी मां बइठे, कगर-कीन मंधारी।
द्वारे मा माला सरकामै, बपरूदास बिहारी।।
हाथ कान मा मुद्रा बांधे, ठाकुर बांधि झुलामै।
बरी सेंधान खटिक का खाइनि, तऊ गरग कहबामैं।।

❖❖❖

वैद्यनाथ पांडेय 'बैजू'

बघेली के लोककवि बैजू पंडित सरयू प्रसाद के आत्मज हैं। आपका जन्म आश्विन सुदी 4 संवत् 1967 को सतगढ़ ग्राम, हुजूर तहसील जिला रीवा में हुआ था। ग्रामीण जीवन व्यतीत करते हुए बहुत समय तक आप अध्यापक पद पर रहे। आपकी लिखी हुई बघेली सूक्तियां जनता में बहुत लोकप्रिय हैं, जिनमें जीवन के विविध अंगों का स्पष्ट प्रतिबिंब देखने में आता है। आपका रचनाकाल सन् 1935 से प्रारंभ होता है। आपकी सूक्तियों का एक संग्रह 'बैजू की सूक्तियां' के नाम से प्रकाशित हुआ था, जो आज लगभग अ-प्राप्य है। फिर भी, बैजू की पहेलियां और सूक्तियां बघेलखंड के जनजीवन में आज भी प्रचलित हैं। बघेली लोकजीवन का मार्मिक अंकन अत्यंत सफलता के साथ आपकी कविताओं में हुआ है। आज के अनेक कवियों में बैजू की ही शैली दिखाई देती है। सामाजिक-सांस्कृतिक, यहां तक कि राजनैतिक विद्रूपताओं को बैजू बड़े ही निडर भाव से व्यक्त करते हैं। पूँछ कविता के माध्यम से कवि मानवीय उत्पीडन से साक्षात करने का प्रयास करता है, दूसरी कविता में सामाजिक विद्रूपताओं के विरोध में हास्य शैली में ब्यग्य प्रहार करता है। इसी प्रकार देश सेवा कविता में निजी स्वार्थ परता से ऊपर उठकर देश हित में कार्य करने की प्रेरणा देता है। सिनेमा कविता जीवन की पुरातनता की सीमा परिधि में रहने को प्रेरित करती है।

पूँछ

है नफा किसानी मा केतनी, या बाति खेतिहरन से पूंछा।
पसु आंही धौं मन्नुख बिटिया, या सब सरबरियन से पूंछा।।
गुरतुलई नोन अँगाकरि के केतनी, अदालतिन से पूंछा।
बिन मेहनति का रोजिगार कउन या सब भिखिआरिन से पूंछा।।
मेला, ठेला मा स्वाद कउन, या बाति मेहेरिअन से पूंछा।

धन बाप केर कसके खर्चे, अंग्रेजी पढ़इन से पूंछा।।
लड़िकन का काज नीक केतना, या बूढ़ गमइहन से पूंछा।
है गइलि गीत मा ताल कउन, बेकार रहइयन से पूंछा।।
धूधुरि के जेउरी बरैं खोय, अखबर छपइयन से पूंछा।
बिन रस-गोरस के तुकबंदी, रचि डारब बैजू से पूंछा।।

हे प्रभू हम होइत जो बाम्हन

हे प्रभू हम होइत जो बाम्हन।
जात कट्टहन के सब उद्दिम, बिचरित सगले गामन।
जाति सतीहौ करत पैलगी, जउन गइल होइ हींठित।
जय, कल्यान, चिरंजू सब कहि, बीसन मेर असीसित।।
पढ़ि-पढ़ि कुछू ककहरा फहरा, कहबाइत हम पंडित।
हुरदंगी मा बाति आन कै, करित जबरई खंडित।।
लै देखनउक समाला पुजहा, थोपे बलभर चंदन।
फूँकित कान गुरू बनि भलधै, गुन मा मेटानन्दन।।

देस सेवा

चउमासे मां गूलर बोलैं, झींगुर तानिन राग।
बादर घेरिसि भै अंधियारी, गइलि परा है नाग।।
पै जो बैजू लीन्हें लाठी, जांय चराइन भंइसी।
तौ भरपेट आज सरपोटिन, माठा दरिया कैसी।।
जो डेराय जातें चउमासे, रहतें बनिके रउसी।
अपने खेत न जाबा करतें, कबहूं पहरा पउसी।।

कसके जीतें लडिका-छेहर,मिलत न एकउ दाना।
कामै किहे सुपास मिलत है,अउर न आन बहाना।।
आपन देस बहुत दिन कीन्हिस,दुसरे केरि गुलामी।
धन संपदा निकरिगै बहिरे, बल भर भै बदनामी।।
बडी मसक्कति कीन्हें पर ई, आबा पुनि के हांथे।
अब एकरि तकबारी देखी, सब है अपने माथे।।
सो अब भाई काम बूत सब, देखा अपने घर का।
जबरजोजना सुनि-सुनि सब जन, गोरूअन कस ना छरका।।
बांधा फेंट करा अब साहुति, समझा बूझा ओका।
ढेरि किहे पर मिली मुसकिलेन,एतना निकहा मोका।।
हमरिन अब सरकार बनी है, हमिन कहाई परजा।
अधिकारौ मा नहीं आय कुछ, छोट बडे के दरजा।।
हमरै रुपिया, हमिन मुलाजिम, हमिन कहाई नेता।
अब सब तोरा-काम हैं एतनै, देस के हित का चेता।।

मलकिन केर सिनेमा

दिखिन सांझि के जब परोस मा, सबकै आबा-जाही।
हमहूं जाब सिनेमा देखय, मलिकिन किहिन उगाही।।
कहेन आन के सउंजन अब तूं, अधिक न गोड़ बढाबा।
जूड़े जिउ करबाय बियारी, लड़िका घरे सोबाबा।।
जेतना हम सउकासिल ठहरेन, सब तोंहार हय जाना।
अनसकार जा खर्चा होइगा, नीक न एका माना।।

रहा मेहेरियन के लग चाही, घरहा एक मनसेरूआ।
घर बेबंद हम छांडब कसके, हन मनई एकसेरूआ।।
नाच-तमासा रेंगा-बागी, उनही सब फरिआबै।
घर का तार बैठिगा सगला, लड़िका आन खेलाबै।।
सूघरि भै अनुआरि फेर कुछ, भा देखनउक समाला।
आमदनी उपरीक रहै कुछ, तेकरि बात न चाला।।
गुजरि गरीबिउ मा तू सधिके, कदगुन काम चलाबा।
जउने केर न जाना मरहम, तउन न बात हिआबा।।
मलिकिन कहिन तोंहार टेंउ सब, है हमारि तहजूजी।
घर बइठे सेरांठ बकै का, तोहंका केउ न पूजी।।
उटपटांग मा तापि लिहा सब, बुढउ केर कमाई।
हमरे निता आजु अब तोंहका, खर्चा के सुधि आई।।
हम देखि अउब अकेले चलिके,तूं आपन घर ताका।
दुइन फांक के बीच न डारी, कोऊ हमरे डाका।।
हम अनघट लागित है तोंहका, बहुत न ताना मारा।
बहुत अनोइल होय जहां, तू आन काज कइ डारा।।

रहा सिनेमा के बादे तउ, जे पइसा दइ देई।
सबके साथ कुरूपउ मनई, पहुंचे पर देखि लेई।।
हमहीं तूं बकलेल जानि के, या परपंच न रोपा।
मनमानी कीन्हिस बिन पूंछे, या दोहपन न थोपा।।

मन मा गुनेन आजु या हरकटि, कहा हमार न मानी।
जो कहउं अकरास दीन तौ, अधिक अई नकसानी।।
कहेन देखि आबा जब तोंहरे, अइसन बढी उमेदी।
भएन निपचढी अब हम कुछ कुछ, हमरे मूड सफेदी।।
एतना अउर कहनि है तोहंसे, साथी लिहे परोसी।
कगरिआय के रेंगे जब कुछ, जाने ढोंसा-ढोंसी।।

सैफूद्दीन सिद्दीकी 'सैफू'

कवि सैफू, आम आदमी, दलित, शोषित की आवाज हैं। वे स्थितियों का वर्णन तो करते ही हैं, साथ ही लोगों को सही राह पर चलने के लिए समझाते भी हैं। आप गढ़िया टोला सतना के निवासी थे। बघेलखंड की लोकचेतना एवं लोकसंस्कृति पर आपने अच्छी कलम चलाई है। सैफू की कविताओं में आधुनिक भावों का समावेश है। दिया बरी भा अंजोर, एक दिन अइसउ होई उनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। न्यौतहरी, इन्दल ढिल्लू, आपकी प्रतिनिधि कहानी संग्रह हैं। सैफू की कविताएँ मानवीय मूल्यो की पक्षधर है। दूसरी कविता मजदूर किसान की पीड़ा को उजागर करती है, और तीसरी कविता गरीबी एवं सर्वहारा वर्ग के दयनीय दशा की संवेदना व्यक्त करती है।

गोड़ पसारे–

धनमानी रूपिया केर, महातिम है भारी।
खोलबाय लिहा तुम मील, चली मोटर लारी।।
बैकुण्ठ लोक अस बड़े, मकान बने।
आराम केर तोंहरे खातिर सामान बने।।
तुम पुल बनाय, केतनउ नदिया का डांक गया।
पंजीरी अस केतनेउ गरीब का फांक गया।।
तोंहरे खातिर जे खून पसीना, एक करिन।
तोंहरे पक्कन मा जे गिलाव, औ ईट धरिन।।
कबहूँ तुम उनहीं ठोरिउ, कहत निहरत्या है।
रोटिव भरपेट दिहा की, भूखन मरबउत्या है।

गिन-गिन के रकम तिजोरिन मा, तुम गांज दिहा।
लछिमिनिया के कुछ अइसन, काजर आंज दिहा।।
व तोहइन का बस आंखी, फार निहारे है।
तोंहरेन घर मां बस बलभर, गोड़ पसारे है।।

मजदूर किसान

चरचरात कमरी कांधा मा, हाथे मा पइनारी।
धरती मा बोमैं अनाज, पै जान परैं भिखियारी।।
खरी दुपहरी चारा छोलैं, बरदा कहौ चरामैं।
सिकसिकाय के चुवै पसीना, तउ गीत उँयें गामैं।
सब सोमैं उंय पहर चरामैं, अँधियारे मा भाई।
आंधिउ पानी उठै चलैं, उंय गोरूअन का डहराई।
फटही बण्डी पहिरे बागै, उनही सउख न लागै।
माघ पूस मा परै ठहारी, तउ खेत उँयं भागैं।
निकहा अन्न आन का नापैं, आपन खाइन बदरा।
आने कमरा ओढ़ाबामै, अपनउ ओढ़ै चदरा।।
घर मा मोट दसामै पैरा घरे फाट अस कथरी।
मच्छर मॉछी का भन्नहटा, वहउ कबउ न अखरी।।
दलिद घेसै चाहै लछमिनिया, उनही सबै बराबर।
दुअरा मा कोउ जो आबै, दीन्हिनि ओही आदर।
भले रहै गंधात सार उंय, स्वामैं टांग पसारे।

जोन्हरिउ केर मिलय जो ठूसा, बलभर रहै डकारे।।
ऑधी, पानी, घाम, बइहरा, इनही सबै डेरॉय।
विपत राम दउड़े लइ बेलना, तउ ठाड़ बिदुरांय।
चाहे पिरिथी लेय करउंटा, नदिया छोड़ै थान।
सैफू कहैं काम मा जिउका, अउटे तउ किसान।।

पइरा मोट

कसरे काल्हि कहेन तै, तोखा पइरा मोट दसाए।
दुअरा मा कउड़ा जराय के, डूंड़ा जबर जराए।।

या कंडा करसी के माथे, जई न निन्चौ जाड़।
फटही कथरी ओढ़त-ओढ़त, अटढ़िआइगें हाड़।।

टुटुरी मारे परे रही हम, टिहुनिन का छुपकाए।
जाड़े मा दलकिन के मारे, देह रही अभुआए।।

तैं ता सांटि लिहे दुइधोतिया, लड़िकन का छुपकउती।
जाड़ लगा त परेन-परे कुछ, सोहर बनरा गउती।।

चाउर नबा हेर के रांधत, माठा डार खबाबत।
अपने जान करिस निकहा पै, हम भर जान न पाबत।।

परै ठहारी सन्नपात का, जोरे फिरत समाला।
कउनउ जो टेपुआय जई त, फेरि बजउहे गाला।।

बखरिउ भर तैं गई न होइहे, फाट पुरान ले अउती।
कुछुऔ तो मिल जात जड़ाबर, जो सनकठा लहउती।।

पुसउर केर बइहरा बहिगा, मसिकै लाग ठहारी।
तैं कोहंड़उरी बरी डारि के, बनै लिहे तरकारी।।

भात बलुक कोदई का रांधे, औ जोन्हरी के रोटी।
या जड़हांये माठा लपचा, कोऊ न सरपोटी ।।

चार बजे से बारे कउड़ा, टोरे टटिया फरकी।
सैफू कहैं कि फगुनहटे तक, कइसौ-मइसौ टरकी।।

रामदास पयासी

पयासी जी का जन्म सतना जिले की अमर पाटन तहसील के अन्तर्गत देवराज नगर गांव में हुआ था, आपने हिन्दी मिडिल की शिक्षा के पश्चात् संस्कृत भाषा का अध्ययन किया, और ब्यास सम्प्रदाय के कार्यों में लीन होकर साहित्यिक लेखन करने लगे, स्व. पयासी ने गद्य एव पद्य के क्षेत्र में अभिनन्दनीय कार्य किया है, आपकी एक दर्जन से अधिक प्रकाशित पुस्तके है, जिनमे से महावीर खण्ड काव्य, भूमिजा खण्ड काव्य, अरुणोदय सामाजिक कहानिया, पंकज कविता संग्रह, महाप्रयाण खण्ड काव्य, निवेदन माँ के आसू मेरा ईश्वर, मेरे बीते दिन, भक्त भरत, ब्रम्ह निरूपणी, महाबीर खण्ड काव्य, दुग्धाधार खण्ड काव्य, जीवन खण्ड काव्य, अपना भारत, आदि विशेष उल्लेखनीय है। बघेली में माटी की महक नामक बघेली कविताओं का संग्रह प्रकाशित है। आप एक जुझारू कवि थे, यद्यपि आपने खड़ी बोली हिन्दी में सर्वाधिक कार्य किया है, फिर भी बघेली में भी स्फुट रचनाएँ लिखकर आपने बघेली को सम्पन्न किया है, इस कविता में किसान की दिनचर्या एवं खेती के प्रति समर्पित निष्ठा का प्रभावी वर्णन हुआ है। दूसरी कविता में गेहूँ और धान की बालियों का बिम्ब ग्राम चित्रण के साथ प्रस्तुत किया गया है। तीसरी कविता में पशु-पक्षियों के प्रतीक द्वारा मानवीय प्रवृत्तियो का निरूपण हुआ है।

मरिजादा

महिना अगहन गड़ा मड़इचा, बोई झुमकी जोन्हरी।
बबऊ बइठ तकइया बनके, दिहे मूड़ मा खोम्हरी।।
मुंहुं मां फांकैं चून तमाखू, हांथे लीन्हें गोफना।
रोरी लै दांकें गलगलिया, आबय खांसी हंफना।।
पीट कनस्टर हड़ा-हड़ा कहि, सबै उड़ामैं चिरई।

खाय पियैं का मिलै न सुड़उर, जात बनै न मड़ई।।
भा अंधियार उतर मैरा से सोचिन खई कलेबा।
रोटी सगली कुकुरा लइगा, ओही परै न होबा।।
गादा भूज कउर दुइ चाबिन, फेर पियिन कुछ पानी।
उठी रात पेटे मां पीरा, कोऊ सुनै न बानी।।
रिरिक रिरिक भै ठंड सकारे, बची मड़इया सून।
गलगलिया सरांध भर खाइन, वा दिन जोन्हरी दून।।
सांझ बखत जब लड़िका आबा, बनि बुढ़ऊ के खोजी।
राम नाम भें सत्त बुढ़उनू, अब को देखी रोजी।।
लड़िका रोबै ओ दादा, तुम गया न चाब्या गादा।
हमका नहीं सिखामैं पाया, घर के कुछ मरिजादा।।
पुतऊ कहै न रोबा, हेरा दूसर खेत तकइया।
भले रात सूने मा मरिगें, बची बैतरनी गइया।।

मडैचा

झूम-झूम झुकुर मुकुर गोहूं के बाल।
जइसन लटराय मोर, जियरा हरसाय।।
फूली है अरसी औ रहिला गदराय।
अरहरि के घेंटी मा मन बसि-बसि जाय।।
गाइ रहा सुअना कटियन के गोल।
गड़ा हय मड़इचा, बसेरी के बोल।।

ठनी लड़ाई

एक बार पंछी, पसुअन मां कसके ठनी लड़ाई।
ओसरी पारा दूनौ जीतें, बात नहीं बनि पाई।।
चमगादड़, जीते पसुअन मां मिलि के, दांत दिखाबै।
हैं पसुअन कस दांत हमारे, संशय सबै मिटाबै।।
जब पंछी जीतें उनसे मिलि, आपन पंख दिखाबै।
हैं पंछिन अस पंख हमारे, संशय सबै मिटाबै।।
कुछ दिन मां दूनौं दल समझिन, या चमगादड़ खासा।
दूनौ दल से बाहर कीन्हिंन, छोड़ सबै बिस्वासा।।
तब से दिन मा उलटा लटकै, बागै रात अंधेरे।
पसु पक्षी से मिलै न लाजन, जाय न कबहूं नेरे।।

❖❖❖

शंभू प्रसाद द्विवेदी 'काकू'

रीवा जिले के सुप्रसिद्ध बघेली कवि पं. शंभू द्विवेदी 'काकू' का जन्म ग्राम खैरी में 10 नवंबर 1935 को हुआ था। आपकी शैक्षणिक योग्यता बी.ए., बी.टी.आई., व साहित्यरत्न है। आप बघेली भाषा के एक सुपरिचित कवि के रूप में समूचे विंध्य में अपनी अलग पहचान रखते थे। श्री द्विवेदी जन-जन में 'काकू' की उपाधि से विभूषित थे। आपकी अनेक रचनाएं छिटपुट रूप से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। पेशे से शिक्षक काकू ने हास्य ब्यंग्य की बघेली फुलझड़िया, मंचो के माध्यम से बघेली जनो के बीच परोसने में सिद्धहस्त थे। काकू की कविताएँ सहज सरल एवं वर्णन प्रधान शैली में होती थी, जिससे गांव के लोगो में बहुत प्रिय थी, आपकी कविताएँ बी०ए०फाइनल, हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में पढाई जाती है। काकू की इन कविताओं में जीवन के विविध चरणो का वर्णन निजी अनुभूति के साथ उद्घोटित हुआ है, कहीं विगड़ते समाज की झांकी, काकू प्रस्तुत करते है, तो कही अनमेल विवाह के विरोध में कलम चलाते है, काकू ने राजनैतिक शोषको के विरोध में देशी मूस और गणेश बन्दना के माध्यम से करारा ब्यंग्य किया है।

अहसास

गाइ-गाइ छंद-गीत, बीति चली जिंदगी,
सुनो अस लगइ अब, रीत चली जिंदगी।
भइया से मांगेन तय, एक दिन ध्यान मां,
कविता दे सरस्वती, मइया बरदान मां।
हाथ जोरि पांव परी, तोर करी बंदगी,
गाइ-गाइ छंद-गीत, बीति चली जिंदगी।

अनमेल बिआह

पढ़ी लिखी, गुनवत्ती, सती सावित्री टोरिया।
घिनहा बर के साथ बिआही, गै सुन्दरिया।।
कलुआ पाइस गोर, मिली गोरे का करिया।
बुढ़उ का लड़िकबा, लड़िकउ का महतहरया।।
सूरदास का मिली सुनइना, कमलनयन का निरा अँधिरिया।
बुद्धिमान गें पाइ बिचारू, अटपट बायँड़ बकचेंचरिया।।
सम्भू गें चउआइ, देखि या बिधि के भउसा।
दुबरकबा का मिली मोटकिया जबर मेहरिया।।

देसी मूस

बापू तोंहसे कउन दुःख कही।
केतना जादा सही-सही।।
तोहरिन किरपा मिली सुराजि।
जउके पुनि भै आपनि राजि।।
मनई सोचिसि अब सुख मिली।
देश के जई गरीबी चली।।
पै न तरक्की कुछू जनानि ।
या भुखमरी मां बेढ़ सकानि।।

पहिले लिहिन बिदेसी चूस।

अब लहटे हैं देसी मूस।।

गणेश वंदना

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा...

आंधी तूफान बहै, आइ जाइ बूड़ा।

देस जाइ चोबरे मां, लागि जाय लूंड़ा।।

तू बने बइठ रहा, माटी के लेबा।

खाए चला, पिए चला, लोग करैं सेवा।।

बघेली दोहे

अपने भाई-बाप का दादा कहैं न लोग,

नंगन का दादा कहैं, केतने हमइं चिपोंग।

गऊ कइ पूजा न करैं, हय सुभाउ से सूध,

डेरि के पूजैं सांप सब, अउर पियामैं दूध।

भाई आय जे भय हरै, सत्रु आय भय देय,

अपने भाइन केर जे, हक्क लूटि लइ लेय।

❖❖❖

डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल

डॉ. शुक्ल का जन्म शहडोल जिले की ब्यौहारी तहसील में हुआ था। आपनें एम.ए., पीएच.डी. करने के बाद हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में प्रदेश की कई महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य किया। आप बघेली के एक प्रतिष्ठित एवं बहुचर्चित गद्यकार एवं काव्यकार हैं। 'बघेली भाषा एवं साहित्य' आप का प्रकाशित ग्रन्थ है। लोकगीतों एवं लोक साहित्य में आपने बहुत ही दस्तावेजी कार्य किया है। बघेली आज जो इस रूप में है उसमें बहुत कुछ योगदान डॉ. शुक्ल का माना जाता है। बघेली साहित्य के क्षेत्र में आपके योगदान को मील का पत्थर माना जाना चाहिए। लोक साहित्य के माध्यम से आपने बघेली साहित्य की स्तुत्य सेवा की है। बघेली पद्य साहित्य में यद्यपि आपने बहुत कम लिखा है किन्तु जितना लिखा है स्वस्थ एवं सार्थक है, शुक्ल नें कई बघेली की पुस्तकों में भूमिका एवं टिप्पणियॉ देकर बघेली साहित्य को दिशा प्रदान किया है तथा बघेली काव्यकारो को प्रयोग करने को प्रेरित किया है। आपकी इस कविता में समाज की असमान वितरण व्यवस्था एवं गरीबी जीवन की झाँकी प्रस्तुत हुई है। दूसरी कविता में नदी एवं वन पहार के चित्रण द्वारा प्राकृतिक चित्रण को स्पर्श किया गया है। आप विन्ध्य के प्रतिष्ठित विद्वान लेखक के रूप में पूरे प्रदेश मे चर्चित हैं।

जीवन हमार

सोन घहराइ
टमस गहराइ
मन का उमगै
विछिया कै धार
बीहर के कगार

करौदा महँकइ
मोरि मांटी गमकइ
महुआ के टपकइ
रसधार
सरई के
घने-घने रूप-
मोर मन
होइगा ठूँठ
जब-जब
देखउँ अमिली कैडार
तीख कइसइली
खट्टी डकार
गरीबी मां
बीता जीवन हमार।
गामन मां
जमाना बदलिगा केतना
कोऊ रोमै, कोऊ गामै, गामन मां।
कहँउ त सीतल चलै बयरिया,
कहँउ गिरय गाज, गामन मा।।
रिमिकि झिमिकि कहँउ पनिया बरसइ
कहँउ सूखा परइ खेतन मां

कहँउ फूट केर ऑधी डमकइ
कोहू केर बंटाढार गामन मां।।
कोहू केर हबै झोपड़िया फूस के
कोहू केर बनत अटारी।
कोऊ लगाए गद्दा सोमै,
तकिया कै गोड़वारी।।
कोहू के नहीं तन पर ओन्ना गामन मां
रामराज के सपना सपना होइगा
कहूँ न देखाय बसन्त बहार गामन मां।।
सरई के घने-घने रूख,
मोर मन होइगा ठूठ
जब देखा अमिली के डारि
बचपन उमुकि-झुमुकि के आबै हमार।
तीखी कसइली खठ्टी डकार,
गरीबी मां बीता जीवन हमार।

गोमती प्रसाद 'विकल'

आपने अनेक ग्रंथों की रचना की जिनमें रणमत सिंह, बघेली संस्कृति और साहित्य, पितृ-ऋण, सेलार का पानी, और कुरुक्षेत्र का नेपथ्य प्रमुख हैं। 2004 में लोकभाषा सम्मान प्राप्त हुआ है। आपकी कविताएँ बी.ए. फाइनल के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है, स्व. विकल बघेली के सुपपरिचित एवं सुप्रतिष्ठित रचनाकार है आपके समर्पण से बघेली साहित्य को बहुत कुछ मिला है, आपकी इस कविता में दीपावली के सौन्दर्य को अनूठे प्रयोगो के साथ-साथ चित्रित किया गया है, किसान कविता में अकाल सूखा हाहाकार, चितकार, की स्थितियों को कवि बडी मार्मिक संवेदना से उद्घाटित कर पीडा के चित्र उरेहता हुआ, प्रतीत होता है।

दिया बरइ

जगर-मगर
दिया जरइ,
चारिउं कइत
अंजोर बरइ।
राति अंबाबसि केरि,
अंजुरी अंजोर भरइ।।
डेहरी दरबाजन मां,
अंगने ओसारिन मां।
चउरी देबालय मां,
तुलसी दुआरेन मां।।

बारि-बारि दिया धउरी।
गउरी धाइ-धाइ धरइ।।
जोर अंधियार केर,
लुकै झुकै चारे कइसन।
दियन केर
अंजोर लागै,
अइसन जइसन।।
फइली अंधियारी केरि,
दूबि किरन हिरन चरइ।
सिया दिया तेल भरइ,
बाती बरइ मेल करइ।
पिया हिया खेल करइ,
काने मा फुलेल परइ।।
तुलसी तरे दिया धरे।
मंत्र पढ़इ टोना झरइ।।
गइलि गइलि छुछुई,
फइलि फइलि फूटइ।
गांव गांव फोह-फोह,
पट्ट-पट्ट फूटइ।।
चारिउ कइत
अंजोर होइ।
दिया दिया दिया बरइ।।

किसान

परसाल झूट परा
धान कोदौ होइगा खखरा
आसौ.....
नदी तालाब उतरान
खेतेन मां कांकर छितरान
दादू सुथन्ना पहिरे उतान।
हथिया केर मूसर धार
अउर पच्छिउहीं बयार
कॅदरि-कॉदरि भीती गिरी
लद्द .....लद्द.....।
गोडइत आबा है उगाहै लगान
किसान है भड़भिडियान
बिटिया कॉधा ओन्हा
लइ लिहिस
कउने भॅड़बा मां हॉथि
डारी भगवान।।

❖❖❖

प्रो. आदित्य प्रताप सिंह

प्रो. आदित्य प्रताप सिंह का जन्म रीवा जनार्दन कालोनी चिरहुला में 5 फरबरी 1929 को हुआ आपके पिता का नाम लाल जनार्दन सिंह कर्नल था। आपनें विभिन्न महाविद्यालयों में एक प्रतिष्ठित एवं विद्वान प्राध्यापक के रूप में शैक्षणिक कार्य किया है। श्री सिंह हिन्दी एवं बघेली के अध्येता समीक्षक और रचनाकार है। आपने निबंध, कहानी, हायकू, सबमें समान रूप से समर्पित होकर कार्य किया है। आप हिन्दी एवं बघेली के एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में पूरे विन्ध्य में परचित हैं। आप बघेली हायकू के जनक माने जाते हैं। रचना की आग, माचिस की ऑख, सरसो की किताब, मन्युजा, संजीवनी, सूरज, आवाज देता है, भूमिगत आदि आपके प्रकाशित ग्रन्थ हैं। आपकी भाषा विशिष्ट एवं अनूठी है जिससे आपकी रचना पढने का अलग ही आनन्द है। आपनें बघेली विधा में गीत, गजल, कविता, सीनेट, आदि पर बड़े

आत्म विश्वास के साथ कलम चलाई है। आप बघेली के प्रतिनिधि कवि हैं। आपकी भूमिका टिप्पणियों एवं मार्गदर्शन से बघेली साहित्य धनवान हुआ है। आपकी इस कविता में करारा व्यंग्य एवं भ्रष्टाचार व अव्यवस्था के विरोध में आक्रोश का एटम बम्ब फोड़ने की उक्ति अपनाई गई है। यह सूरज 04 नवम्बर 2010 को पंचतत्व में विलीन हो गया।

आगी के घोड़ा

लोहे के गठरी मां कैद आगी के घोड़ा,

दरका अधिपार भगा सोने के घोड़ा

हाथ पकड़े कलम तूफान ततइया

साप, सिकरा, मगर के लोहू निचोड़ा,
दोहा ता जोहा, भगिहा व जियत महिरा
बुद्धू बकसा मा कैद नसीब नकसा तौड़ा।
सुघराई ता हसी से लोहार ता हथौड़ा से
लोह गला आगी मां तार सितार मा मोड़ा।
इया गजल गजल नही है बाघिन पजा
हर्ज का स्याही मां तेजाब पसीना थोड़ा
नवगीत
मछरी एक दुइ आखिन के बूँद।
सोन मा सोन का लीन्हे जाय.
कहा बूँद
पटना माहे गै गंगा या कूद
सुलिगै भँमर
पानी के सरफूद
मछरी एक दुइ आखिन के बूँद।
सोने के ऑखी सदियन के साखी
पल के जल मा मौजूद
मछरी एक दुइ आखिन के बूँद।

❖❖❖

बघेली के आधुनिक कवि

बघेली में ऐसी कोई भी विधा शेष नही बची है जिस पर बघेली के रचनाकारो नें अभिनव प्रयोग न किया हो, बघेली दोहे, छन्द, सबैया, घनाक्षरी, गीत, गजल, कुण्डलिया, हायकू, कणिका, क्षणिका, रसिया, पुछल्ले दोहे, आदि सभी विधाओं में सफलतम प्रयोग हमारे बघेली कवियों ने किया है। इधर नये लोगो ने जिन्होने अनूठे प्रयोगो, प्रतीको एवं बिम्बो से बघेली काव्य को ऊचाई दी है, नया आयाम दिया है, और नयी दिशा प्रदान करके बघेली को समर्थवान बनाया है, ऐसी बघेली के समर्पित रचनाधर्मी, रचनाकारो का उल्लेख "बघेली के प्रतिनिधि कवि" शीर्षक के अन्तर्गत सम्मान के साथ करना चाहेगे। बघेली के वे आधुनिक कवि जो मूल रूप से खडी बोली हिन्दी मे रचनाएँ करते है, किन्तु यदा-कदा बघेली में भी लेखनी चलाकर बघेली साहित्य को पुष्ट बनाने में अपनी सहभागिता निभाते है, उनका अध्ययन हम बघेली के प्रतिभागी कवि शीर्षक के अन्तर्गत करना समीचीन समझते हैं।

क. बघेली के प्रतिनिधि कवि -

आज बघेली काव्य अपने भौगोलिक परिधि से बाहर निकलकर प्रदेश एवं देश में अपनी पहचान बना चुका है। हमारी बघेली कविताएँ विविध प्रकार के प्रयोगो से आज पुष्ट हो चुकी हैं, कोई भी ऐसी विधा शेष नही है जिन पर बघेली रचनाकारो ने अपनी लेखनी न चलायी हो। यद्यपि बघेली साहित्य को विन्ध्यांचल के शताधिक कबियों नें अपने प्रदेय से समृद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु जिन रचनाधर्मियों नें सच मायने में बघेली के प्रतिनिधि कवि के रूप में अपनी पहचान बनाई है, बघेली को गहराई दी है, बघेली को एक नया प्राण दिया है, और बघेली के अस्मिता के लिये सदा समर्पित होकर रचनाधर्मिता का निर्वहन किया है, वे कवि निम्नानुसार है-

कालिका प्रसाद त्रिपाठी

बघेली के सशक्त कवि कालिका प्रसाद त्रिपाठी का जन्म 1 अक्टूबर, 1950 को ग्राम पोस्ट हर्दी, जिला रीवा में हुआ है। वे हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर हैं, और वर्तमान में मध्यप्रदेश शासन के राजस्व विभाग में संयुक्त कलेक्टर हैं। दिनमान, नवनीत, सारिका आदि पत्रिकाओं में उनकी कविताओं का प्रकाशन हुआ है। वे बैजू शिखर सम्मान से सम्मानित हैं। आपकी कविताओं में अनूठा प्रयोग मानवीयकरण, प्रकृति का चित्रण, बिम्ब-विधान की झांकी, भावो में उच्च कल्पना, और भावो की गहराई, देखते ही बनती है, श्री त्रिपाठी बघेली के एक ऐसे प्रतिनिधि रचनाकार है, जिन्होने बघेली काव्य में प्राण फूककर बघेली को प्राणवान बनाया है। आपकी प्रयोगधर्मी प्रवृत्ति रचना में सर्वत्र विद्यमान है, रसिया गीत, मे प्रकृति चित्रण, और सावन के दिनो में अवर्षा के कारण खेतो का सूजी की तरह गणना, फर्से की तरह घाम की अनुभूति होना, और कार्य के दिनो में पीपल के नीचे मजदूर किसानों का विश्राम करना आदि का चित्रण प्रभावी ढंग से हुआ है। बघेली गीत, और बघेली दोहो में प्रयोगो का जो टटकापन दिखाई देता है, वह अनुकरणीय है।

हरहर बानी रे

पीपर डारि सगुन अस फूटैं, पत्ता हर-हर बानी रे।

राति राति भर तिरहर रोबै।

जिउ जुड़ाय तब पेट करोबै।।

कॉसिहर के फिरियाद सुनै न ठाकुर छान्हीं रे.....।

बदरी लइ कंजर कस डेरा।

हॅथिया मारि देय चउॅथेरा।।

छनन-मनन सरहजि कस बिजुरी कहॉ हेरानी रे.....।

ऍगुर धोय किरिन भै सोनही।

टॉगै रोज्जि सरग मॉ धनुही।

देखतै अॅगुरी छिन मा होइगै बनी नसानी रे.....।

पीपर डारि सगुन अस फूटै, पत्ता हर-हर बानी रे।।

फरसा कस घाम

सूजी कस खेत गड़ै, फरसा कस घाम।

सामन मा पीपर तर, बइठें बिसराम।।

दुइ दाना रोज्जि रटैं, खोंपा के चिरई।

भूँख बइजही मॉगै, रोटी के बिरई।।

खेत का तिजारी भैं, गॉव भा बेराम।

सामन मा पीपर तर, बइठें बिसराम।।

ओरहन कस देत फिरै, मघा, सिघा, हॅथिया।

तब से ओरमाइस मुहुँ, घर के जनगाथिया।।

चउमासे अरई कस, बेधिगा कुकाम।

सामन मा पीपर तर, बइठें बिसारम।।

लैना कस बररि जाय, जोन्हरी के बॉहीं।

ऑखिन भर सामन है, सॉसि भर पछाहीं।।

पुरिखा बिनु पानी के, तरैं गया-धाम।

सामन मा पीपर तर, बइठें बिसराम।।

चाउर का भात

छितरानी अंगना भर फागुन कै राति।

फुलही टठलोई मां चाउर कस भात।।

हरदी के हांथ बिकी बेसन के देह।

घुंघटा भर झांकि जाय पुतरिन के नेह।।

महुआ कस फूल झरै भउजी कै बाति।

फुलही टठलोई मां चाउर कस भात।।

अंचरा भर मोह प्रीति ओलिआ भर गारी।

भरि आंखि मारि गई दोहरी पिचकारी।।

पानिउ मा रहिके हम पुरइन कस पात।

फुलही टठलोई मां चाउर कस भात।।

बघेली दोहे

महुआ कीन्हिस अधमरा, कोइली करै बिहोस।
सकबंधे मां माघ भा, फागुन बसा परोस।।

पीपर बाजै खंझनी, गउरइया लै झांझि।
लाल महाउर छूटिगा, एंड़ी माजै सांझि।।

होइगै ऊसर जिंदगी, आंखी जिलकन खेत।
महतौं गें परदेस का, पीपर बसा परेत।।

मनबोधी मन मा जपै, अरजी अउर अपील।
खसरा खाता बेद भें, तीरथ भें तहसील।।

सकबंधे सामन कटा, कातिक कटा चरेर।
गांती ओढ़े पूस गा, सथरी किहिस सबेर।।

ढाई आखर सुधि करैं, बेसन बाली देहं।
भइया के राजी-खुसी, भउजी लिखै सनेह।।
खरी मजूरी दिन करै, संझा करै बेसाह।
कोमर उमिर चरेर मन, कब तक होय निबाह।।

खोम्हरी बपुरी का करै, खेतन भींजै लाजि।
लइगा बइरी मूर मन, देहें चढ़ी बियाजि।।

मरी जोन्हइया गांव के, जबसे बिजुरी लागि।
जेतबा के पिसना मरा, मरी पिसनही रागि।।

कहां देय दरखास अब, केसे करै अपील।
अउंठा का लादे फिरै, सरपंची के सील।।

डॉ. अमोल बटरोही

बटरोही जी का मूल नाम श्री अमोल प्रसाद मिश्र है। इनका जन्म 5 जून, 1943 को ग्राम दुअरा, रघुनाथगंज, जिला रीवा (म.प्र.) में हुआ है। एम.ए. (अंग्रेजी, संस्कृत), बी.एड., पीएच.डी. (संस्कृत) हैं। एम.ए. संस्कृत में अवधेशप्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा से स्वर्णपदक प्राप्त हैं। **इनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं** - हिमालय केर कमियां, अक्षय बट, और कविराज कृष्ण प्रसाद शर्मा घिमिरे - व्यक्तित्व और कृतित्व (शोध प्रबंध)। डॉ. रामधनी मिश्र स्मृति प्रसंग पर 'सारस्वत सम्मान' सहित अनेक समारोहों में सम्मानित हुए हैं। विभिन्न ग्रंथों, शोध-प्रबंधों में बघेली के विशिष्ट कवि के रूप में उल्लिखित हैं। आपकी बघेली कविताएँ बी.ए. फाइनल की पाठ्यक्रम में पढाई जाती है, इन कविताओं में समाज में बढ़ रहे भ्रष्टाचार, अनाचार, अनैतिकता, आपसी द्वेष-विद्वेष एवं गिरते हुये मानवीय जीवन मूल्यों के प्रति चिन्ता भाव से कवि संदेश देता है।

को कहइ

निधड़क पते के बात को कहइ।

बूड़ें सबइ त बॉह को गहइ।।

बारी हइ खेत खाय मा लगी

खेते मा हरियरी कहॉ रहइ।

पी बैहरा के बिक्ख जै हॅसैं

बिरछा बजिंस पूत कहॉ हइ।

लाटा अउ पानी लोटा भर कहॉ

लोहू पसीना बनिके जब बहइ।
पाथी विकास कइ छपी बड़ी
झोपड़ी कथा विकास के सुनइ।
काजू उड़ा दिखिन टुकुर-टुकुर
बोलें न कुछु कि चाह तउ लहइ।
खोलिनि न जीभ डेर सकोच से
का नीक अन्नियाउ जे सहइ।
बाड़ा मा घुसा हइ हुआ-हुआ
मनई जो होय उरधरे कहइ।
मतलब परइ त जीभ जामि जाय
को आन खितिर जाल मा फँसइ।
बटरोही सबइ के खितिर खड़ा-
आड़ि जाय सदौ दोसइ सहइ।।

आंखी फिराए हां

आंखी मां जोति-कस ऊ हमरे समाए हां ।
जाना नहीं, के जानि कइ आंखी फिराए हां ।।
आंखी हमारि बरसीं संसार भींजिगा।

ओनके परी न बूंद ऊ छाता लगाए हां।।
जेका निहारि पहिले आंखी हंसति रहीं।
ऊ दिखि न जाइ एसे अंधवा लगाए हां।।
घर एं ठे रहा हमहूं ओंहमां रहत रहेन।
अब सुनी थे, सहर मां ऊ पक्का बनाए हां।।
पारुखि गई, अउ बाति गइ, गें ऊ राति दिन।
अइहीं न पुनि, पइ ओइनि हमका जिआए हां।।
हम खाइ-पी रहेन हइ, पइ देंहें नहीं लागइ।
सालन बना, ऊ आन के नेउता कराए हां।।
ओनकर पिरान मूंड़, त हमका न बताइन।
कोहू से कहिकइ, बैद का घर मां बलाए हां।।
एक दिन गएन त लोग सक्क, थंभिगा ठहाका।
देखेन के, हमरे आए ते ऊ मन गिराए हां।।
आगी ई सुलुगि-बरि रही, हमरे करेजा मां।
ओनका न लगइ ताप, फुहारा चलाए हां।।
ढाढ़स बंधामा लोग, पइ ढाढ़स नहीं बंधइ।
ओनकर बिरोग भीतर खोंधरी बनाए हां।।
तलफत हइ कोउ सेंतइ तलफत परा रहइ।
चित्तइ पलटि गा, दूसरि दुनियां बसाए हां।।

ओनके हइ बसीभूत इया पूरा जमाना।
सगला है सधा काम, ऊ सबका जमाए हां।।
दिर फिरी, नटिहीं लोग, त हमहिन का सुमरिहीं।
'बटरोही' एहीं आस मां, सांसा टंगाए हां।।

बघेली दोहे

पत्तन के सेजरी बिछी, फूलन परा ओहार।
डारि-बहुरिया राति-भर, जागि करइ भिनसार।।

करकें कोर डरारि के, खरकें पियरे पात।
कूंची उंड़िली चुइ परा, महुआ आधी राति।।

ई महुआ बइरी बना, टपकइ आधी राति।
पतरोई अंग-अंग बिंधी, भिनसारे लसियाति।।

बोझा थामे हाथ एकु, चल अटपटि रेंगनारि।
उलटी धारि म नाउ-कस, बोझा ढोवनिहारि।।
भमरा भीतर जगि रहा, सुख सोबइ तब फूल।

भा बिहान भमरा उड़ा, धूधुरि लोटइ फूल।।

दस दुआर के पींजड़ा तंह बैठा एकु कीर।
भीतर रहि कइ खाइ फर, बाहर भोगइ पीर।।

भगई बढ़ि खंडुआ भई, जबहि कंधेला लीन।
लंहगा लौलित्या कियो, लुंगरा कसमस कीन।।

जहां भूंखि रोटी नहीं, जंह रोटी नहिं भूंखि।
बिना भूंखि चुपरी करू, काह भूंखि का सूखि।।

❖❖❖

रामलखन शर्मा 'निर्मल'

निर्मल जी का जन्म 01 जनवरी सन् 1941 को ग्राम खैरा (हनुमानगढ़) जिला सीधी में हुआ है। आपके पिता का नाम श्री रामस्वरूप शर्मा है। सन् 1960 में रचना धर्मिता से सम्बंध हैं। बघेली कविता संग्रह पद पचीसी तथा खड़ी बोली हिन्दी में काव्य "ताण्डव राग" भारत चलीसा आदि प्रकाशित है। निर्मल जी बघेली भाषा के प्रौढ़ एवं प्रतिष्ठित काव्यकार हैं। आपने गीत, कविताएँ, सवैया, आदि पर विशेष रूप सें लेखनी चलाई है। अब शिक्षकीय कार्य से सेवा निवृत्ता होने के पश्चात् बघेली साहित्य की सेवा कर रहे है। निर्मल को बघेली साहित्य परिषद् सीधी द्वारा उनके दीर्घ कालीन बघेली सेवा के लिये सम्मानित किया गया है। हास्य व्यंग्य एवं श्रृंगार प्रधान रचनाएँ लिखना आपको पसन्द है। इस कविता में देश प्रेम का संदेश कवि देता है।

सोन ढिमोरा

हमरे देश के धूधुर चन्दन, माटी सोन ढिमोरा।
खान-खदानि रतन कै सुन्दर, कन-कन मोती हीरा।
उज्जर-बाजर मुकुट हिमालय, निर्मल जमुना-गंगा-
भारत माता लागै अइसन, मानो होय भमानी।
अपने लड़िकन का दुलराबै दइ असीस कल्यानी।
दरसन पाये जिउ जुड़ाव, होइ जाय कृतारथ अँखियॉ-
राम कृष्ण अउ महाबीर, गौतम के पबिरित भुइयॉ।
इहैं कबौ भें चन्द्रगुप्त सासक असोक के नइयॉ।
जनमें बीर बहादुर सांगा, चेतक बाले राणा-

तिलक गोखने बापू नेहरू, नाउ उजागर कहगें।
महापुरूष बलिदानी जुग-जुग, पइदा होतै रहिगें।
ध्वजा रही फहरात अमल्लक, दुइ अकास के थन्ना-
न्याय नीति अउ दया धरम कै चउरी आइ जगाई।
सत्ति इहॉ के कबौ न सोबै, है अपार पुन्निआई।
सम्पूरन सब सुक्ख उटक्कर, झलकै देवी महिला-
इहॉ असाढी अमिरित बरसै, हॅसि-हॅसि नाचै चइती।
गमकै कैसर भरी कियारी, बिरई चारिउ कइती।
हमरे देस के दुनिया मा बैकुण्ठ केरि है संज्ञा-
छोटकइला के दुलही आई -
छोटकइला के दुलही आई।
गेरहें जबहिन लाग बेटउना, तबहिन किहिन बिआह।
घरे पतोहिया आइ जाइ, अब मन मा उठा उछाह।।
भमरी परतै अँजुरी भरिगै, लिहिन कराइ विदाई
छोटकइला के दुलही आई।
मूड़े माही राखि थपोली, लड़िका निरा अलोल।
नॉगा निकहा कुछू न जानिसि, रचिगा ढोंग-ढपोल।।
आइ बहुरिया बइठि कोहबरे, गह-गह बजी बधाई।।
बसता लइके जाइ मदरसा, बॉचि ककहरा लेय।
ऍड़-बेंड़ पोथी लटकाबै दोहपन काही देय।।
सकिला रहै लाज के मारे, टोरबा करै हॅसई।।

दादू करै कलेबा उठतै, जइसइ होय सकार।
सॉझै कहै 'दिदी हम छोउब' निचा बुदा गभुआर।।
पउढा नहीं कि होइगा कंड़ा, चपरि लिहिस अउँघाई।।
दुलही देहँ बॉह के देहँगरि, उमिरिउ केरि दिनारि।
ठुमकत देखि बलम का बपुरी, हँसि-हँसि लेय निहारि।
कउने अरथे सुदिन सहाइत, कउने अरथ सगाई।
दादू आधा दून दुलयिा, उल्टा-पुल्टा काम।
मरजादा का ताकैं-राखैं, रघुपति राघव राम।
दादा-दिदी मनामैं देउता नाती होय खेलाई।
गमने जोग बेटउना भा जब पाय उमिरि कै छाप।
एतनें जोग बेटउना भा जब, पाय उमिरि कै छाप।
एतनें माहीं चिल्लर होइगें, बनिगा बपुरा बाप।।
मूडे परी गिरिस्ती खासा, छूटै लाग रोबाई।
छोटकइला के दुलही आई।।
कइसन के लड़िका पढि पामैं कइसे लागै पार।
लादि देय का है जब उनके बोझा असह अभार।।
अइसन काजे केर कुचाली है समाज मा भाइ।
छोटकइला के दुलही आई।

❖❖❖

डॉ. कैलाश तिवारी

30 अक्टूबर, 1941 को ग्राम खड्डा पोस्ट लोही, जिला रीवा में जन्मे डा.तिवारी पशु चिकित्सा एवं, पशुपालन स्नातक हैं। कविता, कहानी, इनकी विधाएं हैं। हम तोंहार बिरवा (बघेली कविता संग्रह) कोई तो दीप जला (हिंदी कविता संग्रह) इनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। डॉ. तिवारी की इस कविता में जीवन की व्यथा कथा को चित्रित किया गया है, व्यक्तिगत जीवन के कष्टों को अनुभूति परख शैली में तिवारी नें व्यक्त किया है, अन्त के जरूरत शीर्षक के माध्यम से बघेली आभूषणो की स्मृति को तरोताजा बनाये रखने के लिये कवि अच्छा उपक्रम रच लेता है।

अब भला बताबा का करी

परसाल के उरदा धरा रहा

बरिहा घूरे मां फरा रहा

सब मिरिच-मसाला लइ आएन

बरिहा का काटेन-गोड़वाएन

चट्ट से नाहीं कइ दीन्हिंन, को बांटै दारि, को देय बरी!

अब भला बताबा का करी?

घर वालिउ अइसन दइयू दिहिस

जिंदै मां सलगा करम किहिस

अउतै से जुर्राबाज रही

हमरे खातिर त गाजि रही

दिन भर गलझारी बाघ बनी, देखतै हमका कांखी-कल्हरी !

अब भला बताबा का करी ?

अंत के जरूरति

पांच मन लकड़ी, जेंटा भर कांस।

दस गज कपड़ा, चार छै ठे बांस।।

घिउ, तेल, पाउ भर, आठ-दस ठे उपरी।

अधपई भर राल, एक ठे नई गगरी।।

चंदन के लकड़ी, बेल के डरइया।

चार जने मनई, कांधे के देबइया।।

अतनै जरूरी हय, अउर कुछु न चाही।

बांकी जे करत रहैं, लेंय बाह-बाही।।

गहना ई बिलाइगें

गोड़े के -

छड़ा, गोड़हरा, घूंघुर, ठेलिया, पइरी अउ पैजेहर।

छैल चूरी, पक्कपान, झांझरा, चुरबा ठेहर-ठेहर।।

हांथे के -

बहुंटा, चुरबा, चुरिया, मठिया, पाटा, बाजू, झबिया।

पहुंची, छन्नी, ककना, खग्गा, नौगिरिही, बनबरिया।।

बाजूबंद, बजुल्ला, फेरबा, अउर छाप, मुंदरी।

पोरिया, कड़ा, मुकुइंयादाना, ढ़रकउआ, दोहरी।।

गरे के -

कंठी, कठुला, अद्धी, मोहर, अउ हेबाल, कटवा।

गुइंज, गोफ, सतलरा-सेल्ही, तंइती, सुतिया, सुतबा।।

नाके के -

नथुनी, नथ, बेसर, बुलाक, अउ झुलनी, नकफुलिया।

काने के -

झरखा, खोसबा, ढार, झुनक्का, करनफूल, ढरकुलिया।।

करिहां के -

संकरी, कमरबंद, चौरासी, घुंघुरू, अउ करधनिया।

गहना ई बिलाइगें अइसन, जइसन बाति पुरनिया।।

भागवत प्रसाद पाठक

आपका जन्म सीधी जिले के ग्राम राजगढ़ (हिनौती) में 16 नवम्बर सन् 1955 को हुआ है। आपके पिता का नाम श्री रामप्रसाद पाठक है। आप एम0ए0 हिन्दी साहित्य की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने कृषि विस्तार अधिकारी के रूप में नौकरी कर ली। वर्तमान में आप एक अच्छे कथा बाचक एवं प्रवचन कर्ता के रूप में चर्चित हैं । आप बघेली बोली के प्रमुख काव्यकार हैं। 'संझवाती" आपकी प्रकाशित बघेली कविता संग्रह है। आपकी कविताओं में बघेली की स्वस्थ शब्दाबलियों का प्रयोग होता है। कई आपकी रचनाएँ प्रकाशनाधीन है। बघेली की विभिन्न विधाओं में आपने लेखनी चलाई है। बघेली साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित आपकी अनेक रचनाएँ प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित है। इस कविता में सत्य को जानने एवं मानने का संदेश समाज को पाठक ने दिया है। इसी प्रकार दूसरी कविता 'रोटी लोन मिला' में स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भरता से प्राप्त होने वाले सुख को उपमानो द्वारा चित्रित किया गया है।

सत्ति ता कहे परी -

काजर कइ गरुअई ऑखि का सहे परी।

आजु नहीं ता काल्हि सत्ति ता कहे परी।।

अपनेन हॉथ गोड़ से जेनकर मन घिनात हइ,

झूरइ सउख मां बूड़इ ऐरइ सउखिआंत हइ।

कबौ मूड़ मां, कबौ पेट मां, कबौ जॉघ मां धरे चोखाई।

मनगढन्त अधरम का धरम बताबै भाई।

ओनका इहइ संदेस समइ हइ अबहूँ सुधारा,

ऍह देहें के अंग-अंग रोमा रोमा मां फूट न डारा-
नहीं ता खोंखल अउर खखान सरा बिरबा अस,
नई हवा के एक झटका मां ढहे परी।।
आजु नहीं ता काल्हि सत्ति ता कहे परी।।
बंजर भुइँया मां कतनी हरियरी आइ गइ।
कतने मड़इनि मां अब देखा दिया बरति हई।
तुहिनि हजारन बरिस गुलाम बनाए राखे,
जहिया ते कुम्हिलाने देखिले भुइँ हरषति हइ।।
आहे धरम लेंड़ारी का बिरबा तूं-
फुट फइली इरिखा विभेद कइ बॉद झुलाए,
बहुत दिनन तक फरे विक्ख का बिआ बढाए।
अब तूं जरि ते उखरा, सरि गलिके, भारत के,
पबिरित भुँइया मां मिलि के खादी बनिजा-
नहीं टाड़ना मां कतनेन का तोहरेन कारन रहे परी।।
आजु नहीं ता काल्हि सत्ति ता कहे परी।।
रोटी लोन मिला -
अपने मेहनति के बल पर, जब रोटी लोन मिला।
हीरा अस सत्तोसी मन का मानो सोन मिला।।
देखा सिखी नही हम कीन्हेन दुनिया दउड़ि परी।

मन के बगिया मां बसंत औ पतझर घरी-घरी।।
हिरदयँ के ऑगन के अपने महकत कोन मिला।।
हीरा अस संतोषीमन का मानो सोन मिला।
चन्दामामा सूरज देउता और धरती माता हइ।
जीव जन्तु और नदी पहारउ के ऑपन नाता हर।।
पेड विरिछ पर चिरई पंछी घरे गाइ गोसाला।
सबका आदर बब्बा करते लिहे हॉथ मां माला।
हंसी केर बिजुरी ओंठे पर, झूर न मिला।
हीरा अस सत्तोसी मन का मानो सोन मिला।।
मेबा अस महुआ का लाटा, घुँघुरी घरे पुरी।
पूरी अउर गुराम ओठ पर मिसरी घुरी-घुरी।।
तेंदु अउर जमती का भोजन, नदी केर पानी हइ।
पाली पोसी बन बिरबन कइ इही जिनगानी हइ।
छप्पन भोग मानि के खायेन भले अलोनमिला।
हीरा अस सत्तोसी मन का मानो सोन मिला।।

❖❖❖

डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'

बघेली के जागरुक एवं प्रतिस्थापित कवि डॉ. शुक्ल का जन्म 03 अप्रैल सन् 1950 को सतना जिले के भमरहा नामक गांव में हुआ है, आपके पिता का नाम जगदीश प्रसाद शुक्ल है। वर्तमान में आप उत्तरी करौंदिया सीधी में स्थाई रूप से निवासी हो चुके हैं। डॉ. सरस ने हिन्दी साहित्य में एम.ए. करके पी.एच.डी. की उपाधि अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा से प्राप्त की है। अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय से डॉ. सरस के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केन्द्रित शोध प्रबंध का लेखन हो चुका है। आपकी कविताएँ बी.ए. फाइनल के पाठ्यक्रम में पढाई जाती हैं। मध्यप्रदेश शासन स्तर से आप द्वारा विरचित बघेली शब्दकोश स्वीकृत होकर प्रकाशित हुआ है जो एक बहुत बडी उपलब्धि है। आपकी रचनाओं पर अनेक फुटकर शोध कार्य सम्पन्न हो चुके हैं। डॉ. सरस बघेली के प्रतिनिधि एवं प्रतिष्ठित कवि हैं। आपने समर्पित होकर बघेली साहित्य को समृद्ध किया हैं। वर्तमान में आप शिक्षक हैं तथा बघेली साहित्य परिषद् सीधी के सचिव हैं। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सैफू सम्मान व बीरबल सम्मान प्राप्त हो चुका है। दूरदर्शन, आकाशवाणी से कविताओं का प्रसारण होता है। आपकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ रसखीर, अमरउती, सरस-सौरभ, अँजुरी भर अँजोर, बघेली शब्द कोश, रुद्रशाह खण्ड काव्य, आयाम के पंख (काव्य संग्रह) सीधी जिले का साहित्यिक परिचय एवं सांस्कृतिक विकास आदि हैं। डॉ. सरस बघेली के एक मूर्द्धन्य प्रयोगधर्मी रचनाकार हैं। आपने नए-नए प्रतीको, बिम्बो, एवं सांकेतिक प्रयोगो से बघेली साहित्य को उचाई दी है। आप बघेली के प्रौढ एवं प्रतिनिधि कवि के रूप में पूरे प्रदेश में परचित है। मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल में "बघेली लोक गीतो में राम" और महाराष्ट्र सरकार द्वारा "बघेली की दुर्लभ लोक कथाएँ" प्रकाशन हेतु प्रस्तावित हैं। डॉ. सरस की इस कविता में गांव की संस्कृति भाईचारा, परम्परा, और मानवीय जीवन मूल्यों को

बघेली लोकोक्तियों के प्रयोग के साथ रूपायित किया गया है। बघेली मुक्तको में समाज की अव्यवस्था, देश में ब्याप्त भ्रष्टाचार घटती नैतिकता के विरोध में कवि हास्य ब्यंग्य शैली को अपनाकर बहुत कुछ संकेत से कहने में सफल हुआ है। बघेली में अच्छी पैठ के कारण डॉ. सरस प्रथम पक्ति के पुरस्कर्ता कवि के रूप में जाने जाते हैं।

अपने गाँव मां

सोहबत केरि सुपारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।
नीमी केरि मुखारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।
हँसिया खुरपी टाँगी पाउब, अउ पइला पइनारी।
फरुहा चोख कुदारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव माँ।।
खरकउँधी मां खरिका रखड़े, फरिका माँही रकरा।
गइया बंधी दुधारू पाउब, अबहूँ अपने गाँव माँ।।
हिंदुली कजरी सोहर बनरा, अउ तीजा खजुलइयाँ।
उज्जर दिया देबारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।
कांए मां बिसुआस कइ मढुली, देबी अऊ देबाला।
भुंयरा केर भुँआरी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।
सहरी बइहर हुंआ जाँय मां आपन मुहु बिचकाबै।
आधी राति बियारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।
मोहलत खड़े दुआरे माँही सदंउ बेकरन बॉचै।
घर घर फुलही थारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।

बनगि रहा बेउहार अऊ टन्नाइ रहा है साहुत।
तउऔ खेत मां बारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।
ताल तलइया बउली कुंइया, गामै 'सरस' बधइया।
कठबा केरि गरारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।
सरमन साही बेटबा अउपुन कृस्न सुदामा जोड़ी।
भुँइयाँ कस महतारी पाउब, अबहूँ अपने गाँव मां।।

बघेली मुक्तक

हमका न चाही हेबाल अउ हबेली।
हमका न चाही ऊ कुरसी बरेली।।
एत्ता भर अंतिम मां ताकि लिहे सरस-
माथे मॉ मलि लीन्हें माटी बघेली।।

आँखी मां अपने तू हमका पराय रहेय,
बारी मां घुसिके कटइया बराय रहेय।
कइसन के मानी बिसुआस अब सरस-
चारा के आड़े मां धानिउ चराय रहेय।।
चाउर मां उरदा मेराय नहीं कबौ,

हाड़ी का हाड़ा डेराय नहीं कबौ।
कोटि जतन कइके, तू देखि लेय सरस-
पानी मां पूड़ी सेराय नहीं कबौ।।

अपने जान मूठी मां पकड़े हैं झोंटी,
अँधियारे खेलि रहें, चउपर कइ गोटी।
चकरी परै तोंहरे अब अकिल मां सरस-
सोहारी के लालच मां छांड़ि दिहे रोटी।।

कोहू का देबारी अउ काहू का दसहरा,
कोहू के मॅहे मां मिरचा, केर भरहरा।
देखि लिहे केत्तेव बुढ़ाईदार सरस-
पढ़ि लेंही गिनती औ दुनिया ककहरा।।

हॉका खेलइ रे

घॉम दनादन दिनदेउसे मॉ, डॉका डारइ रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।
बान चलाबै घॉम तड़ातड, बन मिरगी भइ भुँइया,

जिउ अकताय कहल के मारे, चलइ लुआर बोकॅइया,
भूँभुर, भुँइमां भमरी फिरि-फिरि चाका भामइ रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।

नचनहरी कस सजी बडेबर, अढुक-ठढुक के थिरकै,
गरमी ओढे गरम चुनरिया, मोजरा खातिर ठढुकै,
पेंढ तरी विसराम विचारू, कॉटा कॉढ़ई रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।

घॉम बोबाबै बीज तपन के, बोबइ सूरज ठाढे,
चोंधी सेहीं किरन निहारै, आपन घूँघुट काढे,
पउढ़ि पटउहॉ तरी तराबट, खाका खीचइ रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।

सगली गइल बटोरैं का, लइ लिहिस बड़ेबर ठीका,
सामर साही सींग, केबादा केरि फूट हइ पीका,
आफत के अपरेसन कइके पापर बेलइ रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।
मुँह मुसेसिके कउँस दबाबै, जूड़ जघा के घोंघा,

लउँका मां भा ओठ चिटिक के, फुटबँधबा कस मोघा,
सेहरिआइगै जीभ तऊ कोलदँहका गाबइ रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।

पुरबइया जब बेहन बोबै, पत्ता ताल मिलामैं,
रात अँजोरी दूध मां बोरी, मच्छर बिरहा गामै,
पुरबइया के सहन सकेले दरका मारइ रे।
चिलचिलात दुपहरिया मां बइहर डॉका डारइ रे।।

❖❖❖

बाबूलाल दाहिया

सतना पिथौराबाद के गांव में 10 फरवरी 1944 को जन्मे बाबूलाल दाहिया का रचना-संसार ग्रामीण जनों के परिवेश में से जुड़कर समाज की बुराइयों से संघर्ष करता है। इनकी विंध्य केर माटी कृति बघेल खण्ड की साहित्यिक सर्जना को सम्बल देतो है। श्री दाहिया ने बघेली बोली, लोक, कला, संस्कृति पर आधारित कई कविताएं लिखी हैं। आपने बघेली में कहानी, निबन्ध भी लिखे हैं। श्री दाहिया की कविताओं में सतना की बुन्देली मिश्रित बघेली की ठसक पाई जाती है। आपकी कविताओं में सर्वहारा वर्ग की पीड़ा मजदूर किसानो की संवेदना और अभावग्रस्त जीवन के चित्र वर्णित हुये है। समाज के धनाड्य तपको के प्रति दाहिया की कविताएँ आक्रोश व्यक्त करती है, और क्रांति की आग भी उगलती है।

न होई व –

ऑखिन के दीख बात जे भाखी कबीर कस,

कउनौ ढपोल संख कै बानी न होई व।।

जोखिम म खुद क डार जे इतिहास का गढ़ी।

नानी कै फेर झूँठ कहानी न होई व।।

आने के लिखी बात कै गठरी लिहे फिरै।

केतनौ करै गुमान पै ज्ञानी न होई व।।

मेहनत किहे जों देंहें से टपकी जमीनर म।

कउनौ नदी तलाब क पानी न होई व।।

कोल बरसइता –

अकेले डॉग मा गोरू चराबै कोल बरसइता।
घरै व दिन रहत कबहूँ न आबै, कोल बरसइता।।
सकारे तीन ठे राटिन मा धइके नोन का डर्रा।
मजे से भोग ओहिन का लगाबै कोल बरसइता।।
बिरासत मा मिला है बाप दादन का जउनर थाका,
त बपुरा मूड़ माटी दै पटाबै, कोल बरसइता।।
सहै बरसात सगली देंहँ मा, अउ पूष के ठारी।
पै एक चिथरै क हिलगाये बिताबै, कोल बरसइता।।

कहउ न सुनाई –

कइसी बेइमानी के हवा चली भाई।
बपुरे गरीबे कै कहौं न सुनाई।।
दिन भर जे काम करइ तरसइ व रोटी का।
पइ सहबा सइथ लेय बाप कस कमाई।।
नोन तेल आढ़ना इ हिलगाये बेड़ना अस।
अउगल भरमाये ही पेट कै पुजाई।।
कुछ ता समिआमैं कै बारौ उचाइन पै,
अउर अउर बढ़तिन गै बीच केर खाई।।

मरहम के पोत दिहे फोरा सुखान कहौं।

चीर फार रेव्ह के जो हाय ना दवाई।।

बघेली मुक्तक

सबय का मिलत सहोल जो जोन्हरिउ अस होत कविता,

ओढ़त गनी गरीब जो खोम्हरिउ अस होत कविता।

बपुरे थके मजूर का कुछु त मिलत उसांसी,

मूड़े का ओखे जो कहौं गोढ़रिउ अस होत कविता।।

सबके आजादी घरे आई कहां,

पाट पाएन बीच के खाईं कहां।

एक त अक्कास से बातें करत हां,

एक के छान्हिउ अबै छाई कहां।।

तोंहरे त बंगला कार, जे फुटपाथ मां स्वामैं,

चिथरा लपेट पूष के ठारिउ मां बितामैं।

जिनहां पचास साल मां झोपड़िउ न दइ सक्या,

काहे कुलांचैं चार उंइ तोहंई न सुनामैं।।

❖❖❖

हरिनारायण सिंह 'हरीश'

हरीश का जन्म 01 जनवरी सन् 1945 को रीवा जिले के अन्तर्गत ग्राम गनिगवां, में हुआ है किन्तु वर्तमान में आप उत्तरी करौदिया सीधी के निवासी बन चुके हैं तथा आपने सीधी को कर्मस्थली व साधना स्थली के रूप मे अंगीकार कर लिया है। स्व0 बल्देव सिंह आपके पिता हैं। हरीश जी बघेली बोली के प्रतिष्ठित एवं प्रयोगवादी सुमधुर गीतकार हैं। सुन्दर सुकुमार शब्दो के साथ गीत की मानक परिधि में आप रचनाएँ लिखते हैं प्रमुख रूप से बघेली गीत मुक्तक, सवैया, आपकी प्रिय विधा है। आपकी भाषा परिमार्जित एवं शैली प्रभाव पूर्ण हे। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन एवं आकशवाणी से कविताओं का प्रसारण होता है। आप बघेली के प्रमुख कवि हैं। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आपको "लाल पद्मनाथ सिंह स्मृति सम्मान 1991 में प्रदान किया गया है। आपने बघेली साहित्य को अपने साधना से समृद्ध किया है। इस कविता में अभावग्रस्त जीवन एवं जीवन से जुड़े गरीबीनुमा विसंगतियों का चित्रण हुआ है जिसमें बेटी एक प्रश्न चिन्ह् के रूप में तालाब की लाठ की तरह ख़डी है। जो आज के विकास सील समाज के गाल पर एक तमाचा है।

झाझरि होइ गइ –

बिपदा बहिनी दुख हइ भइया, रोग बना बहनोई हो।

झाझरि होइ गइ पॉजरि कोइया, मुँहुँ होइगा तरोंई हो।

चुलुकि कइ चिमनी हइ बुझानि, अउ कुलुकि कइ बूड़ि

उमिरि कइ बइतसी अथाह भइ, मन हइ बहुत अजोरी

सुखकइ दूबि दबानि कहा हर परी पीरि पतरोई हो।

झाझरि होइ गइ पॉजरि कोइया, मुँहुँ होइगा तर्रोई हो।
थान मनंगा हबइ गिरिहिती, आमदि करय बंकोइयॉ।
बेउहर करइँ उगहनी निसदिन, बाबू पकड़इँ भुइँयॉ।।
बनकट होइ गइ रिनि कइ गइया, मिलइ न धन कइ नोई हेरान
झाझरि होइ गइ पॉजरि कोइया, मुँहुँ होइगा तर्रोई हो।
मूड़े परी सयानि निटीबा मेहरि करय पचउरी
देखाबइ एहबेर न पउबे पहिले के लय कउरी।
मूरी के जरि जइसन निउ पिसान कस लोई है
झाझरि होइ गइ पॉजरि कोइया, मुँहुँ होइगा तर्रोई हो।

अँधियार लगइ

जुग का लगा दहिमास बहुत अधियार लगइ,
मेहनति करइ उपास, बहुत अँधियार लगइ।।
पूरूब लूल अउर लंगड़ हइ, पच्छिम हबइ घमण्डी,
उत्तर-दक्खिन सुन्न परेहॉ, चिथरी होई गई बण्डी,
कल्हरत हइ परकास, बहुत अँधियार लगइ।।
सान्ति परी बीमार अउ ओखरि देहँ हबइ अधजट्ठी,
चउगिरिदा हइ पर लइकारी, एटमबम कइ भट्ठी,
धुऑ उड़त हई अकास, बहुत अँधियार लगइ।।
छूं-छूं मॉई केर सुक्ख हइ, खुसी की लीलइ पीरा,

कतली फिरॉ निसोच अउ सिसिकई तुलसी, सूर, कबीरा,
दगा दिहिसि बिसुआस, बहुत अँधियार लगइ।।
पद-धारी कि किलनी अस चुहकॉ, बनी बनायी पूँजी,
मउसम करइ हरहई, छिटकीं तरई अस नामूजी,
कुर्सी हबई अजनास, बहुत अधियार लगइ।।
मेहनति करइ उपास, बहुत अँधियार लगइ।।

❖❖❖

अंजनी सिंह सौरभ

राम रमे, सगुनउती बघेली कविता संग्रह आदि आपकी प्रकाशित कृतियॉ है वाचिक परम्परा में राम कथा मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला अकादमी में प्रकाशनाधीन है, आप हिन्दी एवं बघेली गीतों के लिये मंचीय गीतकार के रूप में जाने जाते हैं। बघेली में आपने गीत गजल, मुक्तक, सवैया, घनाक्षरी का लेखन, सघन रूप से करके बघेली को सम्बल प्रदान किया है। आप बघेली के प्रतिनिधि कवियों मे से एक है। आपकी भाषा मे परिपक्वता तथा शैली में रोचकता है। बघेली साहित्य को समृद्ध करने में आपका अनुकरणीय योगदान है। आपके इन बघेली छन्दो में खेतिहर मजदूर किसान की व्यथा-कथा अभावग्रस्त जीवन की बिडम्बना के चित्र बडे ही प्रभावी ढंग से चित्रांकित हुये हैं, आपकी कविताओं में जनानुभूति के स्वर मुखरित होते हैं, अन्य बघेली गीतो में प्रकृति चित्रण तथा ग्राम परिवेश के दृश्यों को बड़े ही रोचक ढंग से बिम्बित किया गया है।

चार छंद

बड़े-बड़े महल दुमहल बनाइके,
घासफूस झुंगी मां रहत मजदूर हां।
बड़े-बड़े भरा ढोइ-ढोइ एंह देश के,
बड़ी-बड़ी विपति सहत मजदूर हां।
भूखि केर गोढ़नी बनाइ धरि मूड़े तरी,
मउत के घूंट पियत मजदूर हां।
पउरुष के पूत सपूत एंह धरती के,

गिरी-गिरी जिंदगी जियत मजदूर हां।
दिन-दिन खाए बिन राति-राति सोए बिन,
पानी बिन पियासि बुझाए मजदूर हां।
तनका धुपासे मां मन का उपासे मां,
जिनगी के सांसि तपाए मजदूर हां।
आन के शूल का फूल बनाइके,
अपने का फांस लगाए मजदूर हां।
पीपर के पत्ता कस झरिगे हां तबौ पुनि,
फुनुगी मां आस लगाए मजदूर हां।
दुरुख दर्द जउने घरे छावा हवइ भैया हो,
ओंह घरे कसिके रहत होई मनई।
अपने मने मां सब दुख का समेटि के,
काहू से न कुछू कहत होई मनई।
सुक्ख केर राह निहारत होइही आंखी दूनउ,
खुशी-खुशी रहइ चहत होई मनई।
बहिरे भले नहीं आंसू कोहराम पइ,
पीरा के नदी मां बहत होई मनई।
घर गोंउ बखरी मां सब जघा जुद्ध हइ,
क्रुद्ध होइके मारू काट कइ रहा मनई।

दुइ ठे न रहि जांय भाई-भाई एक होइ,
कुछु बैसइ सांठि-गांठि कइ रहा मनई।
आन के त लूटि-लूटि कइ-कइ फूटि खुब,
अपनइ त ठाट-बाट कइ रहा मनई।
खोइ सब मर्जादा पाप लइ मूड़े माही,
अपने घरे मां फांट कइ रहा मनई।

किसनमा –

ओरी चुइ गइ किसनमा उतान होई,
बीज बहड़ी मां खूबइ सोचान होई।
बड़ी सोंधि-सोंधि भुंइया सोंधाति होई,
मनमा मन केर बंधवा बंधात होई।
खेत देखइ का हरियर उबान होई,
ओरी चुइ गइ..... (1)
दौड़ि कुठुली उतावइ अउ गाबत हइ हों,
छूंछ चुकड़ी टना-टन बजावत हइ हो।
बोई भुट्टा की जोन्हरी की धानि बोई,
ओरी चुइ गइ..... (2)
खुशी येहमा की बदरी पहार चढ़ि गई,
पहिले पानिन से सबतर गोहारि चढ़ि गई।
खेत बोबइ का बहुतइ सघान होई,

ओरी चुइ गइ..... (3)

हाँथ बरदन के कांधा धरइ लागें,

चउही नगरा का सुड़उर करइ लागें।

राति जागा के कउखन बिहान होई,

ओरी चुइ गइ..... (4)

रात सपनेउ मां खेतई देखात होई,

खांड़ी, कुरई अउ पइला लेखात होई।

ओनखे सपनेउ मां कतना गुमान होई,

ओरी चुइ गइ..... (5)

खेत खइहीं न गोरू जइही खरिकन मां हो,

बड़ा बइठइ न पइही, कबो फरिकन मां हो।

एनका ताकइ का बांधत मचान होई,

ओरी चुइ गइ..... (6)

कहउ बूड़ा न मूड़ा चढ़इ आंसउ,

कहउं सूखा न पुनि के परइ आंसउ।

येही सांसत मां उलझत परान होई,

ओरी चुइ गइ..... (7)

अगुआनी –

मन बंधवा फूटे सब बहिगा हइ पानी,

कइसे ऋतुराज केर होई अगुआनी।

भूखि बनी तकिया अउ रोग हइ रजाई,
मर्जादा मूंदइ का करइका उपाई।
चारि ठे चबेना हइ, लोटा भर पानी,
कइसे ऋतुराज केर होई अगुआनी।
पतनि के परोसे मां सुविधा केर ठाठ हइ,
बडमंसी राखइ का बुनहवा घाट हई।
दुइ टूका पेट का लागइ रजधानी,
कइसे ऋतुराज केर होई अगुआनी।
रावण के महले मां बन्द अबउ सीता,
सकबन्धे बेद सबइ मानस अउ गीता।
जब तक ई बना रही किस्सा अउ कहानी,
कइसे ऋतुराज केर होई अगुआनी।
चिथरी हइ कथरी चउतरा कोने,
राति जाग कटिहीं अब कुछ घरे सलोने।
कतने दिन अउर बची टुटही ओरमानी
कइसे ऋतुराज केर होई अगुआनी।

❖❖❖

सुदामा 'शरद'

सुदामा 'शरद' का जन्म रीवा जिले की त्यौंथर तहसील में कोनिया कला ग्राम में 03.11.1955 में हुआ। आप हिन्दी और बघेली दोनो के सिद्धहस्त कवि है। आप आरम्भ से ही पत्र-कारिता में अपना योगदान देते रहे हैं। अनेक अखबारो में सम्पादन के बाद वर्तमान में दैनिक हरि भूमि जबलपुर में सम्पादकीय विभाग में है। आपकी रचनाएँ आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा अनेक महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, प्रसारित होती रही है। आपकी रचनाएं अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय में बी0ए0भाग तीन में पढ़ायी जाती है। आपकी इस बघेली सवैया में ग्राम्य परिवेश का चित्रण तो हुआ ही है साथ ही यह भी निरूपित किया गया है कि चउमास में बदरी घिर आती है और सावन में हिन्दुली कजरी के गीत सुनाई देती है।

बघेली सवैया –

गॉउँ के गइल मां फइल चला,

गरे डारिके बॉह बसै गोंइयॉ।

सॉझ-सकारे कढी पगुराति,

पिआबति रे बछरू कहॅ गइया।

सुधि आइन जात पिआर बड़ी,

पिंजरा केर बोलत सोन चिरइया

बिसरै धरती अउ अकास चहै,

बिसरी न कबौ लहुरा भइया।।

जबसे चउमॉ लगा ऍह दार,

तबै घिरि आई बडी बदरी।
सगली गोइँया मिलती मइके,
हम ता अबकी ससुरे नगरी।
ऑखी के ऑसु चुयै दिन राति
न गाइ सकी हिंदुली -कजरी।
नहिं पूँछि सकै ऍह सामन मॉ,
किन दीन्हे परै एक ठे लुगरी।।
सुधि आबत लागति पॉव तरे,
अस कोस हजारन के सब दूरी।
खटकै मन मां भटकै बन मां,
मिरगा कस लइ आपन कहतूरी।
एक बोल के तोल मां लागति है
कम जीवन के सब आजु मॅजूरी।
धोखेउ से खनकइ एक बेर जो,
आलर हॉथ के आलर चूरी।।

❖❖❖

मैथिली शरण शुक्ल 'मैथिली'

आपकी अभी कोई स्वतंत्र कृति प्रकाशित नही है, किन्तु पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ प्रकाशित होती रहती है, आकशवाणी रीवा से नियमित प्रसारण होता है, बघेली के अनेक विधाओं जैसे सवैया, घनाक्षरी, दोहे, बघेली गीत, आदि पर आपने लेखनी चलायी है आप सामाजिक बिडम्बनाओं, राजनैतिक अव्यवस्थाओं पर लिखना अधिक पसन्द करते है। आपकी इस कविता में गगरी के माध्यम से श्रृंगार रस की अनुभूति करते हुये मानवीय गतिविधियों को प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्त करने का सफलतम प्रयास किया गया है।

गगरी

जबनि तपनि आई, कतनेउ के बनि आई,
कतनेउ के सगुन बनाइ गई गगरी।
बइखा के कांदौं-कीच, गली-घर-घाट बीच,
हहरि-हहरि के कसाइ गई गगरी।।
जाड़ केर जून भा, कउनउ घर सून भा,
कउनेउ घर ठहरि बसाइ गई गगरी।।
रितु केर राजा-महाराजा के बसंत आबा,
आमा गौरियाने अउ रसाइ गई गगरी।।
भगति नउराति केर बरुआ-बिआह के,
अंजुरी-सोहाग के सितार भई गगरी।।

कोउ नहीं सुनइ ता केसे कही ..

तू हमका बहुत नीक लागा

तोहरे गुन केर बखान करी ।

तूं हाथ नहीं पकड़े हमार

कसिके आगे हम गोड़ धरी ।

पढ़इ लाइक होइ जो

ओखा पढावै।

सीखै लाइक होइ जो

ओखा सिखाबै ।

मूसर न नबइ कवउ

कीन्हे रेदाई ।

गुरू केर तइ कहा न मानइ

केर उठाये वीरा

पेंदी तीत करइ न चाही

कबउ खाई के खीरा ।

जनते नहीं नीक नागा तइ

हुसियारी मां बूड़े ।

कहउठें नागउ नीक होत हई

करइ परइ जब मूड़े।

एक त फागुन केर महीना

दूसर ननदि अउर भौजाई।

तीसर रही गुदगुदी छाई ।

छगुन-छबीली ससुरे आई ।

❖❖❖

बइठे बिरछा खाइगें, फूल फलौंची डार।।

वन-वन के बिरछा सुना, तिनगी दे सुलगाय ।
लपटउआ जरबा जरै, कुछ त अंजोर दिखाय।।

दुअरा-दुअरा फूल के, रेंगि-रेंगि गइ सूख।
मँहकि अंगाकर सोंधि भै रोटीवाली भूख ।।

विजय सिंह परिहार

श्री परिहार का जन्म रीवा जिले के एक गांव में हुआ है। आप वर्तमान में मध्यप्रदेश विद्युत विभाग के सहायक यंत्री पद से सेवा निवृत्ता होकर बघेली साहित्य-सृजनरत हैं। श्री परिहार बघेल खण्ड अंचल के एक जाने मानें एवं पहिचाने बघेली कवि है। आपकी रचनाएँ समाज की विसंगतियों देश-प्रेम जीवन मूल्य एवं सर्वहारा वर्ग तथा प्रकृति चित्रण को बड़ी ही सटीक खूबी के साथ प्रस्तुत करती है। आपकी रचनाओं में करुणा का भाव करुण रस के साथ सर्वत्र विद्यमान रहता है। आपके लेखन से बघेली साहित्य के भण्डार में अभिवृद्धि हुई है। आपकी भाषा प्रौढ़ एवं शैली परिस्कृत है आप बघेली के प्रमुख कावि के रूप में जाने जाते है। आपकी इस कविता में जीवन के दो रूपों का प्रभावी वर्णन हुआ है। जिन्दगी वाहर से चुप लगती है किन्तु अन्दर ही अन्दर वगावत करती है कवि इस भाव-दशा को यथार्थ भाव-भूमि पर अच्छे ढंग से रेखांकित करता है। दूसरी कविता "आँख" में कवि का प्रौढ़ चिन्तन को निराशा हाथ लगती है और उसका मन कराह उठता है।

जिन्दगी हमार

गॉव के तीन कोस पूरब पहार,
बोझाा अस लागत है जिन्दगी हमारि
जेठ दुपहरी मा महुआ कइ छॉह,
आमन के फुनगी मा पकी-पकी साह
बहुत दूर जहॉ है सपनन केर खेत
चॉदिन कस घाम अउर सोने अस छॉव।

सनत सिंह बघेल

रीवा जिले के कोनिया कला त्योंथर में जन्मे सनत सिंह बघेल ने बघेली में सवैया और दोहे लिखे हैं। इनकी सवैया में बिम्ब, प्रतिबिम्ब, रूप, रस और प्ररस का सफल प्रयोग हुआ है। सवैया की भाषा ठेठ बघेली है, और समाज की कुरीतियों से लड़ने की ताकत देती है। समाज की विसंगतियों के साथ ही साथ मानव जीवन की व्यक्तिगत प्रवृत्ति का उल्लेख इस कविता में बघेली साहब नें बड़े ही तरीके से किया है, जगह-जगह बघेली लोकोक्तियों के प्रभाव से भाषा में परिवक्वता और शैली में बोध्यगम्यता स्वभाविक रूप से बन पड़ी है, श्री बघेल, बघेली काव्य के प्रतिनिधि रचनाकारों में गिने जाते है, आपकी प्रयोगवादी रचना धर्मिता बघेली साहित्य को नया आयाम देती हैं।

गोली केर घाव

अपना के बाति हमहीं, रूपिया भर लागत ही।

जब कुठुली सोइ जात, तबै भूंख जागत ही।

का जानी का होई, आजु एंह रजइसी मा।

कूकुर के पूंछि धरे, जनता सउंकहाबत ही।

बिड़र बिड़र प्रीत मिली, बाइत भर ऑसु।

एक पसर भर पीरा केतना घन जामत ही।

छांह जबइ फुरअरी तबइ पाती झारि दिहिन,

एंह घर रहा चिआर कबौ, एतनिन सुधि आबत ही।

रोटी खातिर हेरा खोजी, दउड़ा-धूपी बिरथा भइ।।

बिना बिआही बिटिया रहि गइ, जिनगी अइसन लागत ही।

बेटवा के भूखि बनी चुम्मा महतारी के।

गोली के घाउ इया गोबरे मां ताबत ही।।

मनौती

नाहक मा एतना रिसिआइ के

बेला के फूल गुलाब कइ डारिउ

रोइ के ऑसू बहाइ ऐरान के-

देह से भारी भुलाउ कइ डारिउ

बूड़ि रहीं पुतरी मछरी,

अकुलाइ के ऑखी तलाउ कइ डारिउ

फूलेनि फूले रहँइँ गलुआ

मुँहुँ अइसन काहे फुलाउ कइ डारिउ।।

प्रमोद वत्स

प्रमोद वत्स का जन्म 01 जनवरी 1960 को ग्राम सिगटी, पोस्ट-बधवा, जिला-रीवा (म0प्र0) में हुआ है। बत्स जी मूलतः कवि है किन्तु गद्य लेखन में भी वे एक जाने-माने हस्ताक्षर हैं। आप पत्रकारिता से सरोकार रखते है, तथा समाज की घटनाओं को समाचार पत्रो के माध्यम से उजागर करते हैं, कसक नामक साहित्यिक पत्रिका का आप वर्तमान में सम्पादन कर रहे है, हायकू विधा के बत्स सशक्त एवं सिद्धहस्त रचनाकार है। हिन्दी एवं बघेली में पर्याप्त लेखन एवं प्रकाशन किया है। देश की प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं आकाशवाणी केन्द्र रीवा से आपकी रचनाओं का प्रसारण समय-समय होता रहता हैं। आपकी प्रस्तुति से बघेली साहित्य का भण्डार निश्चित रूप से सम्पन्न हुआ हैं, इस कविता में जीवन के दोनो पहलुओं को रूपायित करने का जो प्रयास किया गया है वो निश्चित ही अनुकरणीय हैं। वत्स जी इस सवैया, में समाज की विसंगतियों एवं बढ़ते हुये भ्रष्टाचार की ओर संकेत करना चाहते हैं।

बघेली सवैया

भूखि पियासि सवैइ बिसरी ।
जब से उलटी मन केर सिलौटी।।
ऑखिन काजर पोंछि रही तब।
काली-कलूटी जबै कजरौटी ।
माथे बड़ेरी चियारे चढ़ी जब ।
झूलि परी सगली मेड़रोली ।।
सांझि के बाती जली कासिक के।

जब सूनी हमारि हबई डेहरौली ।।

एही जिन्दगानी केर लरकई है जिन्दगी।
जेका माजि पोछि के चमक बढाये तूं।
निखरि-निरखि उठै छवि देश भर के।
जगत भरे मा घूमि-घूमि के देरवाये तूं।।
माटी के गन्ध ले के सभ्यता के संग लेके
पढ़ि-लिखि, खेलि-कूदि अपने ईमान माही
प्रगति-विकास अउ उन्नति कराये तूं।।
पल-पल रोके सॉस
अत्नगोजा कै जिन्दगी, तापर भरी उसास।
आलर विरवा झूलि गा, थूनी के विश्वास।।
चउमासे चहदर मची, गइला छोडिस ठांव ।
बखरी के कंदरी लगी, गइला मेंहदी ढूंढे पॉव।।

अंगना केर किनौची उल्टी परी निधाह।
तुलसी बिरवा सूखिगा, मन मां नहीं उछाह।।
औधन पन्तन मा लुकी, घेटिन-घेटिन आस।
जोरई बैठी साधना, पल-पल रोके सांस।।

❖❖❖

बघेली के प्रतिभागी कवि

बघेली में अनेक कवियों नें कई पुस्तकें लिख डाली हैं, तो कुछ नें 10-5 कविताएँ लिखी हैं, और कुछ 1-2 कविताएँ ही स्वान्तः सुखाय के लिये लिखी हैं। अतएव बघेली के ऐसे रचनाकार जिन्होने बहुत कम लिखा है, या सामान्य रूप से बघेली में लेखन किया है, अथवा मूल रूप से हिन्दी में कविताएँ लिखी है, किन्तु बघेली में भी उनकी सहभागिता हुई है ऐसे काव्यकारो को इस श्रेणी में रखकर शोध परख बघेली साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि पर विवेचित करना प्रसंगानुकूल होगा।

राम रक्षा द्विवेदी 'शिशु'

राम रक्षा द्विवेदी का जन्म उमरिया जिले के मानपुर गांव में 07 जून सन् 1943 को हुआ है। आपके पिता का नाम श्री स्व0 रामानुज द्विवेदी है। आपने बी0ए0, डी0एड0 करने के पश्चात् शिक्षा विभाग में शिक्षक पद पर कार्य करने लगे। आपके गीत, कहानी, कविताओं का प्रसारण आकाशवाणी से तथा प्रकाशन पत्र पत्रिकाओं में होता रहता है। हिन्दी एवं बघेली में आप समान रूप से कविताएँ लिखते है। इन कविताओं में देश एवं समाज की अव्यवस्था विद्रूपता एवं असमानता का वर्णन अनुभूति परक ढंग से द्विवेदी जी ने किया है। आपकी केाई भी कृति अभी स्वतंत्र रूप से प्रकाशित नही हो सकी है।

मोरे बप्पा

दिन भर बदरी रात तरइया मोरे बप्पा,

मुँह फारे नोरिआय तलइया मोरे बप्पा।

बूँद-बूँद का गिरो पशीना माटी मिलिगा,

कॉकर लीलै लाग चिरइया, मोरे बप्पा।
सेवर नेत बनाय लिहिन पहिलेन ते छानी,
नव सिखिया अब चढ़े छबइया, मोरे बप्पा।
एक रसइयॉ माहीं तौ ना चना चवेना,
दुसरे माहीं चढी कढइया मोरे बप्पा।
अपने गरिया केर पार ना नापे पाइन,
बने हिमालय केर नपइया, मोरे बप्पा।
काल्हय का तौ डंक देंह का साले डारै,
रगड़ि लिहिन पुनि के बर्रइया, मोरे बप्पा।

❖❖❖

रामभद्र तिवारी 'भद्र'

रामभद्र तिवारी का जन्म शहडोल जिले की सोहागपुर तहसील मुख्यालय में हुआ है। आप हा.से. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ओ.पी.एम.लि. अमलाई में नौकरी करने लगे। फैक्ट्री में बर्करो के साथ रहते-रहते आपके हृदय में मजदूरो श्रमिकों और गरीबों के प्रति भाव दया जागने लगी और आप बघेली में कविता लिखने लगे। रामभद्र तिवारी बघेली में अनेक रचनाएँ लिखी है तथा बघेली सवैया, कुण्डलिया, दोहा, तथा बघेली गीतों की विधा को अपनी लेखनी उरेहनें में निपुण है अभी आपकी केाई भी रचना पुस्तकाकार नही हो सकी है किन्तु बघेली कविताओं का प्रकाशन प्रतिनिधि पत्र पत्रिकाओं में होता रहता है तथा प्रसारण आकाशवाणी शहडोल से हो रहा है। आपे ओ.पी.एम. अमलाई की नौकरी से सेवा निवृत्ता होकर अब आप घर में साहित्य सर्जना कर रहे है। इस कविता में भ्रद जी ने फैशन के चकाचौंधी करिश्मा को देखकर धोखा खा जाते हैं और अपनी इस वैयक्तिक अनुभूति परक घटना को इति बृत्तात्मक शैली में इस भांति आरेखित कर बैठते हैं। आपके लेखन से हमारा बघेली साहित्य सम्पन्न श्री हो रही है।

कहेन कि धोखा होइगा

रहित गॉव हम शहर न जानी
अबकिन दुसके दिल्ली
गैल-गैल मा लरिका रोवै,
दिखेन कन्हैया बिल्ली।।
अस आवै और जाय सड़क मा
पॉव धरे नहिं अड्डा।

चीड़-पोड़ं के गाडी सरपट
दिखेन न बैला पड्डा।।
बेरा दिखे न मिलै महल के
ऊपर दक्षन अटारी।
उगती बुडती सुज्झ न आवै
परी चकल्लस भारी।।
एक चौरहा मा मुँह बाये
ठाढ रही जनु ठूँठा।
दिखे न बोलै गदबद् सटकैं,
हम कह काखर फूका।।
घडी न घोड़ा रहै पास मा
जानी कसत कै बजिगा।
दुइ ऑखिन के रहते ऑधर
या जिउ जबरन सजिगा।
कउने कुघरी मा मन लहका
चढी चुलुक औचर धुन।
नाहक आय फँसे पछताने
ले मन मोर भुगत पुन।।
हरौ गुनौ अस करत रहेन कि
दिखेन एक जंटर मन।
हाथ घडी का देख चले हम
पूछै टेम के कारन।।

राजकुमार शर्मा 'राज'

श्री राज का जन्म रीवा जिले के रामपुर (धवैया) गांव में 01 अप्रैल सन् 1964 को हुआ है। आपके पिता का नाम श्री रामसिया शर्मा है। एम.एस.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप साहित्य लेखन में जुट गये। भिन्सार (बघेली संग्रह) आपकी प्रकाशित कृति है। देश की प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। विभिन्न सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मंचो का संचालन आप आत्म विश्वास के साथ करते हैं। सन् 2009 में तिवनी के मंच पर आपको आंचलिक कवि के रूप में सम्मानित किया गया है। आकाशवाणी रीवा से आपकी कविताओं का समय-समय पर प्रसारण होता रहता है। इस बघेली घनाक्षरी विधा में श्री राज बघेली की गरिमा एवं उसकी अस्मिता का चित्रांकन बड़े आदर सम्मान के साथ करते हैं। दूसरी कविता में राजनेताओं की बेइमानी बदमासीनुमा चालाकी को कवि निर्भीकता के साथ उजागर करता है तथा देश चिन्ता का संदेश समाज को देता है।

बघेली मोर

गंगा केर पानी अस, गुरु केर वानी अस,

शारदा भवानी अस, लागति हइ बघेली मोर।

रानी महरानी अस, राजा हिन्दुस्तानी अस,

विन्ध्य राजधानी अस, लागति हइ बघेली मोर।।

उमिरि जमानी अस, उछलत पानी अस,

रेवा स्वाभिमानी अस, लागति हइ बघेली मोर।।

बढ़ई केर रूखानी अस, दहिउ मां मथानी अस,

बरसत मांही छान्ही अस, लागति हइ बघेली मोर।।
राम के कहानी अस, राजा कर्ण दानी अस,
रणमत के कुर्वानी अस, लागति हइ बघेली मोर।
तानसेन तानी अस तुलसी के बखानी अस,
दाई अउर नानी अस, लागति हई बघेली मोर।
मेछरी काहीं पानी अस, अपने परानी अस,
आंधर का देखानी अस, लागति हइ बघेली मोर।।
कोयल केरे वानी अस, बसंत मस्तानी अस,
सबके जानी-मानी अस लागति हइ बघेली मोर।।
केंउटी केर कूड़ा अस, महाना केर बूड़ा अस,
वीहर, बिछिया जुड़वा अस, लागति हइ बघेली मोर।
नर्मदा के कंकर अस, विरसिंहपुर के शंकर अस,
देव तलाये के मंदिर अस, लागति हइ बघेली मोर।।
उज्जर शेर दहाड़ अस, विन्ध्यांचल पहाड़ अस,
पथरा मां उगे झाड़ अस, लागति हइ बघेली मोर।।
गंगा अउ अजीत अस, पद्मधर शहीद अस,
चिन्ताली वाणभट्ट अस, लागति हइ बघेली मोर।

❖❖❖

राजीवलोचन शर्मा 'राजीव'

1 अप्रैल, 1934 को ग्राम कपसा, जिला रीवा म.प्र. में जन्मे श्री राजीव अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., और बी.एड. हैं। बघेली में अनेक गद्य एवं पद्य रचनाएं लिखी हैं। -अनब्याही सुधियां, कुइनिन के फूल, साक्षरता की राह में, और विंध्य केहरी उनकी प्रकाशित कृतियां हैं। श्री राजीव को अक्षर-आदित्य सम्मान, लोकभाषा सम्मान, साहित्य सृजन सम्मान, हजरत मस्तान समिति एवं सुदर्शन शिक्षा समिति बंधवा द्वारा बैजू सम्मान प्राप्त है। इस कविता में कवि आध्यात्मिक ढॉचे में ढालकर मझधार में पड़ी नैया को परमपिता परमेश्वर ही पार लगायेगा, ऐसा संदेश आत्म विश्वास के साथ समाज को देता है।

उहइ खेबइया

का करबे जब दइउ बेकुरिया।

ध्यान धरा बस बइठ ओसरिया।।

समय न बरसै जाड़न गरमी, उनहीं भला कहॉ बेसर्मी।

जब मनई के मन्त्र न पावै, कइसन के उनहीं को पावै।

का करबे जब टुटही खटिया।

करा उपाव कि लागै निंदिया।।

सेय-पालि के बड़ा कइ दिहे, वित्त से अपने सुखौ दिहे

गउरइया के जउन चराये उहै गर्रपन मुंह बिचकावै।।

का करबे जब लड़िका बिटिया।

नन्च न सेटैं, करै न बतिया ।।

कहन के धरम कहन के पंडा, गली-गली मां गाड़े झंडा।

बोले कहौं त पाये डंडा, हर जग्घी हैं बइठे संडा।।

का करबे जब मारैं सरिया।

चलै उहै चिचुआय खोपड़िया।।

पेट-पिठांह माधुसिगास उहै, चहटिस मंहगी टोरिस चउहैं।

दुनहूँ जून जरै न चूल्हा, नीक मीठ के टूटिगा कूल्हा।।

का करबे जब रोबै धनिया।

हई परी जब सून रोसइया।।

धंधा है अपहरन के बगरा, मिली फिरउती पइसा ओगरा।

चोरी करै अ कूदै पगरा, कुछू न पामै फोरैं गगरा।।

का करबे जब हिचकै चुनिया।

तलकि-तलकि तन त्यागिस धुनिया।।

देंह अउर मरजाद के सउदा, होइगा है लभेर कस.लउदा।

मोर दइउ जेतना गुड़ डारा, गुरतुल हरबिन पउबे ओतना।।

का करबे इनखर जब छहियां।

हरि लीन्हिन जब खुदै गोंसइयां।।

निपट अकेले घरे रहइया, चढै बोखार को देय रजइया

कबौ न कोरचा करिन कमाई, रोज्जि कमाई रोज्जि खबाई।

जिनखर बेटबा भे परदेसिया

करै जो सोच बढै अंधिअरिया।।

करा सोच भल का कइलेबे, है अउकात कुछू कइलेबे

हबै करइया अउरै कोऊ, अनजाना निरूआरी सोऊ

का करबे मझधारे नइया, पार लगाई उहै खेबइया।।

❖❖❖

श्रुतिवन्त प्रसाद 'विजन'

श्री विजन का जन्म 04 जुलाई 1940 को ग्राम पचौर पोस्ट बन्धा वाया बैढ़न जिला-बैढ़न में हआ है। आपके पिता का नाम श्री साधू प्रसाद दुबे है। श्री दुबे एम.ए., बी.एड. करके शिक्षक हुये और अब अवकाश प्राप्त परियोजना अधिकारी औपचारिकेतर है। आपको सन् 1972 में राष्ट्रपति पदक से तथा जैमिनी अकादमी पानीपत द्वारा 2000 में सम्मान से विभूषित किया गया है। आपकी प्रकाशित पुस्तकें धुआ के छल्ले (कविता संग्रह) नारी (काव्य) गोदना (बघेली काव्य संकलन) होइगा पुनिके मुन्ना आदि है। आप हिन्दी एवं बघेली के समर्पित एवं संघर्षशील वरिष्ठ रचनाकार हैं। इस कविता में नदी का सुन्दर किनारा, महुआ की छॉव ओर लहलहाते हुये गेहूँ वालो गॉव का मनोहारी वर्णन कवि ने किया है दूसरी कविता में श्रृंगार रस की प्रधानता।

मन महुआ कइ ठाट हइ

बेंदी नहीं बड़ी टुकुलिया, झरका दूनउ पाट हइ।
बाल बदरबा बगरे कजरा छोंडे आपन घाट हइ।।
मन का बना मदरसा लरिका बइठ बरौनी टाट हई।
अइसन गोल गाल गोरी क, जस टाठी पर गाट हइ।।
गोर गोदनबा गोर चिबुक पर लाल ओंठ कइ बाट हइ।
छुपे न भइया लगी बिजुरिया, नजर कहंउ से साट हइ।
बडे मथारे लगी डहइ हइ, सेंदुर छुइ-छुइ घाट हइ।
बगिया सजी जिगरबा मंहकइ जूड़ा दुइ-दुइ गांठ हइ।।
नाक ठोंर क उपमा छूंछी, अस असोक कइ लाट हइ।

छाती ऊपर धरा अदहरा, धड़ा घिनउची फाट हइ।।
नाभि बनीं हइ गुफा मझारे, पेट सपाटी खाट हइ।
अगल-बगल पगडन्डी रेखा, पतरइ चुम्बक राड हइ।
कमर करधनी एतनां पातर, भला सेरनी काट हइ।
तन पेंड़ें मां तना बनाये, मन महुआ कइ ठाट हइ।।

नदी किनारे -

बइसाखी हबा चली मंहमही, महुआ-महुआ छांव रे।
गोहू पल्थी मांरि बजारे झांके मोरा गाब रे।।
कोइली काजर आंजे डरिया चूमि टिकोरा पाब रे।
अउर अंजोरी झूला डारे, नदी किनारे गांव रे।।
छपरा खपरा इहां टटिहरा घासफूस कइ मान रे।
सुरूज सुनें गांव कइ बोली भीती दइ दइ कान रे।।
देहरी धरी धीये कइ मेंटिया दूध चमोरी धान रे।
छोड़ि के गोरिया आंचर भुइयां छुइ-छुइ उठा किसान रे।
जंगल खड़ा खबानीं लइके डुंडबा खड़ा सयान रे।
मिरगा मिरगी ऐरा बागे, बाधा नहीं मचार रे।।
कान मां अंगुरी दिहे अहिरबा बिरहा झारे तान रे।
अहिरिनि पहिरे मोंट लुगरबा, नैना खीचें प्रान रे।।

❖❖❖

रामाधार शुक्ल 'बिद्रोही'

सीधी जिले के तहसील रामपुर के अन्तर्गत ग्राम तितिरा में 24 दिसम्बर 1944 को हुआ है। आपके पिता का नाम कन्हई राम शुक्ला है। आप सन् 2004 में तहसीलदार पद से सेवानिवृत्त हो चुके है। साहित्य सृजन में सन् 1965 से सम्बंद्ध है।अभी तक कोई भी स्वतंत्र कृति प्रकाशित नही है। यदा-कदा पत्र पत्रिकाओं में आपकी रचना प्रकाशित होती रहती है। बघेली एवं हिन्दी में गीत और कविताओं का लेखन आपके द्वारा होता है। रचनाओं की भाषा के प्रभाव और शैली में प्रवाह मिलता हैं। आपकी इस कविता में ग्राम्य सौन्दर्य की मनोहारी झांकी एवं खेत खलिहानों की फसलों के चित्र अच्छे बन पड़े है। यद्यपि आपने बघेली बहुत कम लिखा है। किन्तु जितना भी लिखा है स्वस्थ एवं सारगर्भित है।

बारह मासा

पियरी ओढ़े चैती गाबै नाचइ गोहूँ बाली,
खरिहानन मां गोरि किसानिन होय धूप मां काली,
मोरे आँगन मां चुइ-चुइ जाय बदरा।

डोली मां बैसखिया आई अमुआ कोइली बोली,
छिउला फूलें सेमरा फूले गमकी अमरइया कै चोली,
मोरे महुआ मां गुहि-गुहि जाय गजरा।

जेठ मां आगी बरसै उड़ई गइल मां धूल

कंचन काया माटी होइगै दागी होइगे फूल
मोरे मनुआ मां लगि-लगि जाय पहरा।

धरती मां का पानी लैके आबा मास अषाढ़,
सोनभद्र मां चढ़ी जवानी गंगा मां जागी बाढ़,
मोरे गइला मां बढ़ि-बढ़ि जाय बहरा।

झर-झर-झर-झर पानी बरसै फुर-फुर उड़इ फुहार
मन कै झाँकिया खोल सजनि अब सावन खड़ा दुआर
मोरे बगियां से कहि-कहि जाय भँवरा।

झुकइ अंधेरी भादौ महिना पपिहा करइ पुकार,
कजरी हिंदुली अउ आल्हा संग पुरबी बहइ बयार,
मोरे खेतबा मां लहि-लहि लेइ कुहरा।

अगहन कातिक कइ पाती लैके आबा मास कुँवार
बाँच-बाँच जोन्हरी कइ बिरबा चिरइन का भेजैं तार
मोरी मैना कै उड़ि-उड़ि जाय जियरा।

❖❖❖

डॉ. रामसिया शर्मा

आपकी कई कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। डॉ. शर्मा की इन कविताओं में राजनेताओं की नैतिकता पर व्यंग्य और दूसरी कविता में नारी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अभिनव प्रयास किया गया है।

रिमहा चुनावी गीत

ई सांपनाथ, ऊ नागनाथ,

भगवान बताबा कउन चुनी।।

अब सगला दल एक दुसरे का,

कहि रहे भस्ट, बईमान, चोर,

कहि रही बिलारी मूसन से,

हर बिलि मा पहुंचाउब अंजोर।

हम ओन्ना फारी हंसी खूब,

के लोढा लइ के करम धुनी

ई सांपनाथ ऊ नागनाथ,

भगबान बताबा कउन चुनी।।

लबरी बोलइ कइ लगी होड़,

एकबा गोहूं दइ रहा सेंत

दूसर भरमाबइ - दारिभात,

सेंतइ पउबे नेउता समेत

तीसर मिरजाइ भइया का,
भउजी का देइ कहइ नथुनी
ई सांपनाथ, ऊ नागनाथ,
भगबान बताबा कउन चुनी।।
ऐनसे पूंछा केके पइसा से,
करां मउसिअउ कइ सेराध।
कइसन चढ़ि रहें सफारी मा,
जे मरत रहें सइकिल के साथ।
अब झारि रहे हां देशभक्ति जयचंद,
विभीसन अउ सकुनी।
ई सापनाथ, ऊ नागनाथ,
भगबान बताबा कउन चुनी।।
एक लाख के ठीका बीस मा लइ,
जे बारू पर सिलमिट छिरकां।
जेनकर बनबाये घर, पुलिया,
आंधी आए नाचा थिरकां।।
जे ठगिन गदेला, मेहरिन का,
बंटबाइ कइ दरिआ सरी-घुनी
ई सापनाथ ऊ नागनाथ,

भगमान बताबा कउन चुनी।।

अब टिकस बेसाहि बने नेता,

एनकर विकास सबके विकास।

कहि रहें गरीबी खेदि दिहेन,

हम सुरूज, चंद्रमा, हमिन सांस।।

पइ जीते पर सब पांच बरिस,

काने मा दिहे रहां ढेपुनी।

ई सांपनाथ ऊ नागनाथ,

भगबान बताबा कउन चुनी।।

रिमहा गीत

भइया ! बाबू का दीन्हे संदेश

पढामा छुटकी का....

हम अनपढि हेरे पढा बहनोई

नियरे न हिरकइ नितलबे मा सोई

पोथी लिहे रोज ननदी बिराबइ

सासु हंसइ त अकेले मा रोई

चाहइ ओन्ना पहिरइ मोट

खाइ कोदउ कुटकी का

भइया ! बाबू का दीन्हे संदेश .....

तूं न हिंआं न हिंआं अम्मा, बाबू

रिसई त पूंछा का खाये ? का खाबू ?

सबइ कहां नोकरानी रही आबा

हक्क जो मगबू त प्रानउ से जाबू

पूजी निशि दिन गउरी-गनेश

बचाये घुटकी का

भइया ! बाबू का .....

बाबू पढिन, भइया ! तोहंका पढ़ाइन

हमसे घरे कइ चिन्ति कराइन

बिटिया मा खरचा, जई घर दुसरे

ऐंह से न नामउ लिखइ सिखबाइन

अनपढ़ि का हां लाख कलेश

सुक्ख नही चुटकी का

भइया ! बाबू का दीन्हे संदेश पढामा छुटकी का .....।

❖❖❖

चित्रेश चित्रांशी

चित्रेश चित्रांशी का मूल नाम मुकेश श्रीवास्तव है। इनका जन्म 20 फरवरी, 1959 को रीवा में हुआ है। विज्ञान स्नातक होते हुए इन्होंने हिंदी, बघेली में काव्य-सृजन किया है। अनेक रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं साथ ही **प्रकाशित पुस्तकें हैं** - सुरुज की टोह में, प्रभो रक्षा किह्या, रिकार्ड प्लेयर राही, मेला के उल्लास, आबा हम रूठी, और लखटकिया। इस कविता में अभावग्रस्त जीवन की दिनचर्या का वर्णन संकेत द्वारा किया गया है इसी प्रकार समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला दिनो-दिन बढता ही जा रहा है, नैतिकता कमजोर होती जा रही है, इस आशय की प्रस्तुति हुई है।

मेला के उल्लास

1. मेला के उल्लास चुका, तूं नहीं मिल्या,
जीवन से मधुमास चुका, तूं नहीं मिल्या।
जीवन बीतइ सांस गनत, कइसउ मइसउ,
कइसे कही संत्रास चुका, तूं नहीं मिल्या।
कइसउ होय महउल साथ मैं कोऊ होय,
इया जीवन से हास चुका, तूं नहीं मिल्या।
बंदनीय तूं फुरि तोहार, वाह मिठुराई,
रोवत-रोवत दास चुका तूं नहीं मिल्या।
'चित्रेश' हमार हाल बउरन-पगलन साही,
सुख-दुख के आभास चुका, तूं नहीं मिल्या।

कमि गइ

खरच बढ़िगा हइ, कमाई कमि गइ,
दरद बढ़तइ से दबाई कमि गइ।
जे जरे हइं, इहइ बताबत हइं,
सुरुज के अपने उंचाई कमि गइ।
हम त पुछबइ भले लगइ नागा,
काहे बोली मं मिठाई कमि गइ।
कसके ढोबइ हो सपन कोऊ, जब,
भोर त बढ़िगा ढोबाई कमि गइ।
काहे खीसा के, बेरामी सुनिके,
'चित्रेश'साथिन के अबाई कमि गइ।

❖❖❖

सुधाकान्त मिश्र 'बेलाला'

आप लोकभाषा विकास परिषद् तिउनी रीवा व्द्वारा बैजू सम्मान से सम्मानित हैं। पेशे से आप शिक्षक हैं। इस कविता में दीपावली के उत्सव को वर्णन प्रधान शैली में बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है, कहीं तुलसी के चबूतरा, का चित्र प्रस्तुत हुआ है तो कहीं पंक्तिबंद्ध दिया का रखा जाना और कहीं पर लक्ष्मी पूजन के वैशिष्ट को उजागर किया गया है। आपसी भाईचारा और प्रेम व्यवहार को बनाये रखने के लिये इन कविताओं में कहा गया है।

दिया-देवारी

मची सफाई कोने कतरे, खडहर पिछवारी मा ।
घूरन के दिन लउटें देखा, दिया-देवारी मा ।।
घर दुआर चउगिरदा चमकइ, लीपी पुती डेहरिया।
कॉदउ छूही पोतना लीन्हे, बिटिया अउर मेहेरिया।।
भीतिन काहीं छापि-लीपि के, छिरिकिन जइसन चन्दन।
घर के लक्ष्मी करइ तयारी, लक्ष्मी के अभिनन्दन।।
बरकेटा लइ जाला झारंइ, चढ़ी अटारी मा ।
घूरन के दिन लउटें देखा दिया-देवारी मा ।।
तुलसी चउरा दिया जरामै गामै लक्षमी किरतन।

धन तेरस का धन जुहबामै बेसहँइ गहना बरतन।।
गोरूआ भइसी सींघि रँगाये अलगइ सान देखामै।
अहिराने मा पहिरि फुलेहरा अहिरा बिरहा गामै।।
परदेसी लइ छुट्टी आयें चढि के लारी मा ।
घूरन के दिन लउटें देखा दिया-देवारी मा ।।

दिन बुड़तइ से जुरें सगुड़ई कीन्हे हइ उपचीर।
महकइ आजु रोसइयाँ चूल्हा चढ़ी कराही खीर ।।
दउड़ि-दउड़ि के दिया जरामै लरिका बिटिया नाती।
टिमटिम दुअरा-अँगना तरई सजि गइ पाँतिन-पाती।।
रउसा-भउस मा लोन नहीं डारिन तरकारी मा।
घूरन के दिन लउटे देखा दिया-देवारी मा ।।

सिन्टू-पिन्टू हमा समेटे छुछुई अउर पडाका ।
गोरूआ बिचिकि टोरामइ खूँटा सुनि-सुनि धूम-धड़ाका।।
बम राकेट छुरछुरी लीन्हे काकू बइठि बतामा ।
लडिकेहरी लूकी लइ हाथे दूरिन ते हिरकामा ।।
समिटि सगुड़ई उधुम मचाइनि कुलि घरे ओसारी मा।
धूरन के दिन लउटे देखा दिया-देवारी मा ।।
रंगई-विधुई अधिरतिया से फेटि रहे हइ तास ।

खेलइ जुऑ किटी तिनपतिया, करइ कमाई नास।।
हारि-हारि के किस्मत मॉजइ लक्षमी रहें जगाइ।
आरउ मिलतइ अरहरिया मा खूसइ रहें लुकाइ।।
रूपिया-गहना हारि खेत लिखि दिहिनि उधारी मा।
घूरन के दिन लउटे देखा दिया-देवारी मा ।।

आबा सब केउ दिया जराई भागि जाइ अँधियार।
बाहर भीतर करी सफाई अन्तस के अलियार।।
छोड़ि घिनहाइ आलस मेहनत से लक्षमी जगाई ।
दुःख-दलिदद् आलस अँधियर भारत से दूर भगाई।
लक्षमी लगइ भगइ तम जब मन लगइ बिहारी मा।
घूरन के दिन लउटे देखा दिया-देवारी मा।।

❖❖❖

डॉ. राधेश्याम साहू 'व्यथित'

सामाजिक सक्रियता में अचूक हैं। किसी के मरने-जीने पर उसके द्वार पर खड़े हैं। साहित्य विशेषकर बघेली भाषा से गहरा लगाव है। सर्वहारा वर्ग से संवेदना रखने वाले श्री साहू की कविताओं में बघेली समाज की एक-एक परत खुलती है। उनका व्यंग्य मिर्चे की तिताई रखता है। इन कविताओं में बघेली की महत्ता सामाजिक दुराव एवं अव्यवस्था तथा प्राकृतिक विपदा का वर्णन प्रभावी ढंग से किया गया है।

बघेली महातम

चीकन-भूकन अउर रसीली, लागइ मोर बघेली।
अभरन यमक अनुप्रास से, सजतइ लगइ बघेली।।
घाघ-भड्डरी के छूतइ, बनि गै लोक पहेली।
सैफू-बैजू-काकू के संग विहंसी, किलकी खेली।।

देउतन-देबिन के अस्तुति मां, आगेन-आगे भागै।
बेद-पुरान सकुचि बस बपुरे, एखेरे पाछे लागै।।
कंठहार बनि सुंदरिअन कइ, सोंध-सोंध रस पागै।
लरिकन संग तुतुराइ चलइ, ठुमुकि-ठुमुकि कइ बागै।।

खेतिहारिन संग खुरपी लइके, कजरी-हिंदुली गावै।

बैरि-बयारि समनही सीतल, पिया वियोग मां भावै।।
आंसु मलाल धोइके बपुरी, खजुलइअन संग सोवै।
पिआ मिलन मां तपै तीज भर, लागइ आस संजोवै।।

खखरी खनइ खदान मां माटी, चाहइ सड़कि बनावै।
टप-टप चुअइ पसीना तबहूं, तुकि-तुकि टप्पा गावै।।
कोलदहका, करमा, केहरा, दादरि, राई रीना छितरावै।
बिरहा संघे छोंड़इ छरहा, ठुमरी जीवन राह बताबै।।

दिद्दा संघेन खेलिसि कूदिसि, दीदी के संग खाइसि।
हर उछाल मां संग-संग अपने, खासा उधुम मचाइसि।।
गति-बिपति मां परिजन बनिके, मिलिकै हाथ बटाइसि।
झगरा-झांसी मनमुटाव मां, इया दादी कस दुलराइसि।।

बहनोई-संग बंहकइ औचक, देवरा संग हहराय।
भउजी के संग मारि फिरिहरा, जेठउत से सकुचाय।।
पिअउ संग गलबहियां डाले, औरउं देखि लजाय।
घर-कुटुंब-परिवार साधि के, मंद-मंद बिदुराय।।
सुघर सलोनी बोली आपन, सुख-दुख साथ निभावै।

सद् संस्कार श्रुति वेद पुरानहिं, छांटि-छांटि समुझावै।।
भूत-भविष्य-आजु कइ आहट, सांझइ सोधि सुझाई।
जेवर अक्षुण धरोहर लागइ, एखा गरे लगाई।।

सलाह

आजु बिहन्ने बड़कीबा कइ दीदी, सालन मां मुंहु खोलिस।
केतनउ अतार छोंड़ि के बपुरी, व्याकुल होइ कइ बोलिस।।
सुना सुना बड़कउनू के दद्दा, कब तक पैदल चलबे।
ये मूठी भर तनखाह के मथरे, कब तक लड़िका पलबे।।
कोदई-माठा खाइ के अइसन, कब तक पेट का भरबे।
एंह भीसन मंहगाई माहीं, कब तक अइसन जरबे।।
पांड़े रोज पपीता झटकां, मिसिरा झटकां मिसरी।
तिवारी घरे मनामा तीजा, पाठक चखैं फुलौरी।।
बगजा बनइ बिकोदर सिंह के, शरमा के घिउ खिचरी।
हम भंटइ भर के भरता भूंजी, कबहूं बरी अदौरी।।
सब के घर मां गाड़ी मोटर, ई रोजइ गढ़ां हबेली।
तोहईं देखि कइ मुंहु बिचकामा, पट्टइ कहत हां तेली।।
ओइसइ तुहूं नौकरी कीन्हें, ओइसइ पढ़े पढ़ाई।
ओइसइ गढ़िसि दइउ है तोंहई, ओइसै किहे लढ़ाई।।
अइसइ जइसइ पुचका मारइ, बड़कउना कइ महतारी।

निकही सीटि लहावइ खातिर, सिखबइ रोज बिचारी।
सीटि के खातिर गोड़ पकड़ि के, आंसू खूब बहाबा।
मंत्रिन नेतन के तरबा मां, डोकिया भर तेल लगाबा।।
छोट भइन नेतन चमचन का, पहिले खूब पटाबा।
घनघनाइ के घंटी मारा, अफसर का फून कराबा।।
कइसेउ मइसेउ जमि जमाइ केइ, निकही सीटि लहउबे।
बड़े-बड़े शास्त्री आचार्य का, संउहेन खड़ा करउबे।।
केतेनेउ भेंचुड़ भाई बंद कइ, मेरिट तक बनबउबे।
सोफासेट कुर्सी सगोन के, गाड़ी भर मंगबउबे।।
बड़े-बड़े परफेसर तक तोंहई, नमस्कार तक ठोकिहीं।
दस-पचीस रुपिया के खातिर, कुकुर जइसन भोंकिहीं।।
बड़े-बड़े चौरसिहा बगिहीं, आगे-पीछे कटिहीं चक्कर।
पांचौं अंगुरी घिउ मा होइहीं, लरिका खइहीं सक्कर।।
छक कइ पीबे दारू निकहा, हम झारब रसगुल्ला।
संत फकीर सबै ढुरि अइहीं, ड्यौढ़ी अइहीं मुल्ला।।
देस जाइ दे चोबरे मांहीं, प्रतिभा का दफन करा।
परंपरा कइ होली तापा, संस्कृति मां कफन धरा।

❖❖❖

डॉ. प्रणय

प्रणय का पूरा नाम डॉ. रामशंकर द्विवेदी है, आपका जन्म सन् 1954 में चित्रकूट जिले के मानिकपुर गांव में पं. द्वारिका प्रसाद के घर हुआ, एम.ए.पी.एच.डी. की परीक्षा शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् आप सुदर्शन महाविद्यालय लालगांव रीवा में हिन्दी के प्राध्यापक पद पर पदस्थ हैं। आप एक विद्वान प्राध्यापक सुपरिचित गीतकार तथा सुप्रतिष्ठित चित्रकार है, आपकी प्रकाशित कृतियां नागार्जुन की सामाजिक चेतना, हिन्दी भाषा, पत्र लेखन तथा प्रारूप, मीडिया लेखन, प्रयोजक मूलक हिन्दी, आदि हैं। वर्तमान में "धत तेरे की" कहानी संग्रह प्रकाशाधीन है। आपकी कहानी कादाम्बिनी आंचलिक कथा की दृष्टि से पुरस्कृत है, प्रणय जी को विन्ध्य श्री से साहित्यिक अवदान हेतु पुरस्कृत किया गया है। गहोरा बघेली के इन दोहो में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व प्रयोगधर्मिता के साथ हुआ है।

अँगरा उगिल

मोटर सैकिल, दुइनली, टेक्टर अउर मकान।
करे सुदमवा! तैं भए, परैसाल परधान।।
अयो कबौं हमरे हियाँ, दिख्यो जियै का फर्क।
दहसत के टावर गड़े, दुक्खन के नेटवर्क।।
मुर्गा बेंड़े पेट मां, दारू चार गिलास।
द्याथीं गांधी चउक मा, भासण फस्स किलास।।
करा जमानत जिहल से बाहेर भें सिरिमान।
पहुँचे संसद भवन तौ, चालिस जने भेंटान।।
किसा बीच पूछिन परा, ल्वालर नानी क्यार।

कउन देस गें दउँगरा, कउन देस झरियार।।

रिंजर कान दबाय के, अइसा गावै फाग।

हरियर जंगल रेल चढ़ सरहन कइती भाग।।

चील्ह, बाझ, हाड़ी अउर, खूसर करैं अनंद।

बरगद बुलबुल क्यार भा, हुक्का-पानी बंद।।

ढनढनान मंडा परे, बँधवा परे झुरान।

मिला किसान-मजूर का, छठवाँ वेतनमान।।

रामसखा नामदेव

आपका जन्म ग्राम मझौली जिला-सीधी में 15 अगस्त 1944 को हुआ है, आपकी शिक्षा एम0ए0 बी0एड0 है वर्तमान में आप शासकीय शिक्षक के पद से सेवानिवृत्त है, आजकल आप जिला चिकित्सालय के पीछे आर्शीवाद कालोनी शहडोल मध्यप्रदेश में पदस्थ है। हिन्दी कविता का लेखन 1986 से प्रारम्भ है साथ ही साथ बघेली कविता का लेखन एवं आकाशवाणी शहडोल से प्रसारण हो रहा है, फुटकर रूप से कविताओं का प्रसारण पत्र-पत्रिकाओं में होता है किन्तु स्वयं की कोई भी पुस्तक अभी प्रकाशित नही है। गीत, गजल, दोहे, एवं सामाजिक जीवन ग्रामीण परिवेश व खेती किसानी से सम्बंधित रचनाएँ लिखते है, मूलतः आप हिन्दी के कवि है। इस रचना में आपने बरखा गीत का लेखन किया है।

बरखा गीत

गुठअन चलै बोकइयां बदरी
सागर से भरि लावै गगरी
चला अषाढ धरे हर बइला
आपन करै किसान।
छम-छम नाचै बरखा रानी
रिमझिम रिमझिम बरसै पानी।।
धीरे-धीरे बढिगें पांव
दौड़ि-दौड़ि देखि आई गांव।
खेतन म है लगी जोताई,

होइगै शुरू किसानी।।

छम-छम नाचै बरखा रानी

रिमझिम रिमझिम बरसै पानी।।

हरिअर चुनरी ओढिस भुइया।

भरे तलाब भरे सब कुइंया।

नरबा छोडिन मरजादा।

नदियन म चढी जवानी

छम-छम नाचै बरखा रानी

रिमझिम रिमझिम बरसै पानी।।

पर्वत केर देंह हरिान

पेडौ लागै लगें जवान।

खूब सुना मै टिप टप टिप टप

पत्ता किस्सा कहानी।

छम-छम नाचै बरखा रानी

रिमझिम रिमझिम बरसै पानी।।

मेहदी हाथ रचाए सावन

गामै गीत सखी मन भावन

राखी खडी करै भइयन के

घर घर मा अगुआनी।।

छम छम नाचै बरखा रानी, रिमझिम....

बरखा होइगै पूर जवान

धरती केर पियास बुझान

सागर लेय हिलोर जिया मा

लहर उठै तूफानी।।

छम-छम नाचै बरखा रानी

रिमझिम रिमझिम बरसै पानी।।

वन मा फूली कांस देखाय

बरखा रानी, चली बुढाय

गरु पांव धती के होइगे

होइगै सफल किसानी

छम-छम नाचै बरखा रानी

रिमझिम रिमझिम बरसै पानी।।

❖❖❖

रामचंद्र सोनी 'विरागी'

निवृत्त शिक्षक के रूप में साहित्य की सेवा कर रहे है सीधी जिले के साहित्यिक धरा को उर्वर बनाने का आपने अथक प्रयास किया है, विरागी मूलतः हिन्दी, मे लिखते है, बघेली की स्फुट रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है, इस कविता में सर्वहारा वर्ग, की पीडा एवं गरीबी का चित्र खीचने का प्रयास हुआ है, इसी प्रकार राजनीति से जुडे सत्ताधारियों जिनसे विकास की संभावनाएँ थी, उन पर कवि अपना आक्रोश व्यक्त करता है। विरागी को बघेली का प्रतिभागी कवि के रूप में अंगीकार करना उचित प्रतीत होता है।

बघेली दोहे

दिया बरी उंजियार भा, सबतर होत सबेर।
शीतल चंदन अस लगइ माटी भारत केर।।
मटरा तउ पोथी पढ़इ, लहिला अरथ लगाइ।
अन्नन का उपजावइ, सेवा मा जिउ जाइ।।
भाजी खोंटि के खात है, हरियर मरचा लोन।
बपुरेन का मेवा इहइ, अउर इहइ हइ सोन।।
अंगना मा पाला परा, अंगरा बिछा दुआर।
हइ आंतकिन से घिरा, भारत देस हमार।।
दइउ बरोबर दुक्ख भा, सुख के कंहउ न रेख।
कइ गलती हम सबन के, कइ विधिना के लेख।।

कगारउ नही मिलय

ई राति लंकिनी अस आरउ नहीं मिलय,
जे गइल बताबइ, उआ तारउ नहीं मिलय।।
आजादी के कोठबा मा हंइ आजु लग अंधियार,
बिल्यान कीरिन हइ कि सकारउ नहीं मिलय।।
हइ दुख के संघे बियाही आजादी-बिटीबा,
पलकी उठाबइ तक का कहारउ नहीं मिलय।।
सोने के चिरइया का अइसन विपत्ति परी,
माड़ी का को कहै, पछारिपेउ नहीं मिलय।।
सोचे रहेन कि फूल से बगिया भरी हमार,
रखबार भें अइसन, कि उजारउ नहीं मिलय।।
बूड़त हइ नाउ अब त दहारइ मां 'विरागी',
केमट हइं धोखेबाज, कगारउ नहीं मिलय।।

❖❖❖

अनूप अशेष

लौट आएंगे सगुन पंछी, वह मेरे गांव की हंसी थी, नवगीत दशक - 2, नवगीत अर्द्धशती, काला इतिहास, अंधी यात्रा में आदि उनकी प्रकाशित कृतियां हैं। मूल रूप से आप हिन्दी नवगीतकार है, किन्तु यदा-कदा बघेली में भी लिखते है, इस कविता के माध्यम से कवि नें प्रकृति चित्रण और पक्षियों का सांकेतिक चित्रण प्रतीक के माध्यम से किया है।

नवगीत

चिरइया के लाग जरै नैना

ऑखिन रात

कटै ना।

फुलसुँघी मन मोर उपासा

देहॅ के आगी मा

पेट का पॉसा

खउलत आगी मा डइना

चिरइया-

करिआ हॉथ दिखाबै दुनियॉ

धान कै बॉध बिसरिगें गुनिया

बिलखत पिंजरा मा मनइ

चिरइया-

केला के पत्ती बइर केर गुठली

चीरै करेजा का

खाली कुठिली

बिसरि गा फेर चबइना

चिरइया के लाग जरै नैना।।

❖❖❖

डॉ. रामगरीब पाण्डेय 'विकल'

डॉ. विकल का जन्म सीधी जिले के ग्राम परसवार में 02 दिसम्बर 1960 को हुआ है। आपके पिता का नाम स्व. मोहनलाल पाण्डेय है। आपने एम.ए. करने के पश्चात् हिन्दी साहित्य में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। वर्तमान में आप बी.एस.एन.एल. विभाग में पदस्थ हैं। आप खड़ी बोली हिन्दी एवं बघेली दोनो विधाओं में समान रूप से लिखते हैं। भाषा में प्रौढ़ता तथा चिन्तन में गहराई होती हैं। आपका हिन्दी कविता संग्रह "वक्त के इन्तजार में" प्रकाशित है। साहित्य के क्षेत्र में आपकी पहिचान एक स्वस्थ और प्रतिष्ठित गीतकार के रूप में बनी हुयी है। कई प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ प्रकाशित होती है। आकाशवाणी केन्द्र रीवा से रचनाओं का नियमित प्रसारण होता है। आपकी इस कविता में शरद कालीन चन्द्रमा की गतिविधियों के द्वारा मानवीय करण करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

सरद के जोधइया

मन म न उठि पाई, एकौ हिलोर।
सरद के जोंधइया जब होइ गै मुहुचोर।
राखी खजुलइयॉ और तीजा तिथि पामन,
बीतें पै चुका नही ऑखिन' के सामन।
कसकि उठै, पीरा के बिजुरी घनघोर;
सरद के जोंधइया जब होइ गै मुहुचारे।
मड़पख म पीतर और देउपख म देउता,

होम दिहेन दूनौ का, दूनौ का नेउता।
दसमी म अउर बढा राबन के जोर ;
सरद के जोंधइया जब होइ गै मुहुचारे
घूरे म टिमटिमाय, माटी के दियना,
नकली उँजिआर बीच, दुर्घट भ जियना।
कइसन देबारी, नहीं दिया के अँजोर;
सरद के जोंधइया जब होइ गै मुहुचोर।

देवीशरण सिंह 'ग्रामीण'

सतना जिला नागौद में देवीशरण ग्रामीण शिक्षक थे। सेवानिवृत्त होने के बाद नागौद में रहकर साहित्यिक रचना कर रहे हैं। श्री ग्रामीण ने अपनी कविताओं में अन्योक्ति का अच्छा प्रयोग किया है। ग्रामीण जी का जन्म पौष शुक्ल पक्ष प्रतिपदा सम्बत 1989 में सतना जिले की नागौद तहसील के अन्तर्गत ग्राम बाबूपुर में हुआ है। आपके पिता का नाम श्री हिरई सिंह था, आपने स्वध्यायी छात्र के रूप में एम0ए0की परीक्षा उत्तीर्ण की और स्थानीय विद्यालयों मे शिक्षक के रूप में शिक्षण कार्य करने लगे। देशबन्धु दैनिक समाचार पत्र में आपने गाँवनामा स्तम्भ का नियमित लेखन करते रहे है, वर्तमान में आप शिक्षकीय कार्य से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र रूप से साहित्य सेवा कर रहे है, गांव की धूल कहानी सग्रह, धूल ध्वनि, कविता संग्रह गाँवनामा निबंध संग्रह आदि आपकी प्रकाशित पुस्तके है, आपने बघेली में कई कविताएँ लिखी है, आपकी इस कविता में मानव के भीतर पल रही बेइमानी, बदमाशी, चालाकी एवं ईर्ष्या द्वेष को आरेखित करने का अच्छा प्रयास किया गया है।

मालिक का प्रेम प्रसंग

लाला समुझि गयेन हम तोंहई, गइल चलत बोलियास।
आपन कबहूँ दिहा नहिं काहुहि, सबका सब लइल्या।।
य मुस्कानें मा तोंहरे है, घुरी जहर के पुरिया।
औ चुम्बन मा चलती आई है, तुम्हरे सब दिन छुरिया।।
द्यांह दिखात रही आबै पै, तुम पहिराबा चुरिया।।
औ चुनूका जब चूक परी न काट्या गुरिया-गुरिया।

औ फिर फिर होइ जा दूध के धोये, गंगा जाय नहाय।
लाला समुझि गयेन हम तोंहई गइल चलत बोलियास।।
सुरिज उये तुही तो मालिक, अँधियारिउ होय तुम्हार।
आबै गमन त तुमहिन आंगे, और रहा रंड़हुन के तुम यार।।
फूलन के भंवरा जस तुमही, रही तोंहरेन हांथे तरबार।
लूट्या कहूँ त तुमहिन लूट्या, नहीं बॉटत फिरत्या प्यार।।
त प्यारौ की निहछल ललकनमा, द्या लूँड़ा तुहीं लगाय।
लाला समुझि गयन हम तोहँई, गइल चलत बोलियास।।
तुम्हरे तो य प्यार मा प्यारे, हम होइ गयेन मिठाई।
औ थोड़कउ भयेन पुरान त, फेक्या जस फटही मिरजाई।।
भूल गया संस्कार धरम उइँ, जब आदि शक्ति रहीं माई।
पै छूट न पाएन तबहूँ तुमसे, लएन चला डोरिआई।।
कबहूँ दासी रहेन भयेन अब सिस्टर, अब न जाने का होइ जाय।
लाला समुझि गयन हम तोहई, गइल चलत बोलियास।।

❖❖❖

सम्पति कुमार सिंह

प्रभाग सूचना प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार से भी संबद्ध रहे हैं। इस कविता में संकेत एवं प्रतीक के माध्यम से कवि नें मानव की वैयक्तिक प्रवृत्ति की ओर उगली उठाकर जागरण का संदेश देता हैं।

फूल

फुदुकि-फुदिकि फूलन मा बइठी चिरैया
आपन बडाई बताबय चिरैया ।।
तोहरय रस लय मछेह महिपर बनावय
तोंहार हालि देखि हँसी हमका आबय।।
आपन लुटाउते सब फेरिउ का पउते
रस ते होइ खाली असमय झरि जाते ।।
कउन लाभ तोंहका जिउ दुसरे का देते
आजु ओइ फरा फूला जबरन छीनि लेते।।
आपन चालि बदला दुक्ख काहे सहते
अमरित छाड़ि कहे जहर पियत रहते ।।
फूल बोल हँसि कय, परमारथ जे जियत हय
उनहिन कय जनम सुफल, मरिउ कय जियत हय।।
देब न लेब प्रकितिउ सिखाय रही
मंहक रस गंधरूप धरतिन लुटाय रही ।।
माटी मा मिलकय बीज अपने का खोय देय
तबहिन त ओकर घरे-घरे पूजा होय ।।

सुरेन्द्र द्विवेदी

श्री द्विवेदी का जन्म सीधी जिले के ग्राम मोहनिया में 03 मार्च 1961 को हुआ है। आपके पिता का नाम श्री सूर्यभान परौहा, है। आप मूलतः बघेली के दोहाकार हैं। खड़ी बोली हिन्दी में भी आपकी लेखनी चलती हैं। स्वस्थ्य सृजन एव सघन लेखन आपकी आदत में सुमार है। पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन तथा आकाशवाणी रीवा से प्रसारण होता है। गरीबी, उत्पीड़न, समाज, की विदूपताओं को द्विवेदी जी बड़े ही कुशलता के साथ चित्रांकित करते है। आपके दोहे समाज की विसंगतियों और बुराइयों को भी बयान करते है। आपके लेखन से बघेली साहित्य को सम्म्बल एवं प्रोत्साहन मिलता है। वर्तमान में आप सतना में निवास करते हुये एन.जी.ओ. के माध्यम से समाज की सेवा करते है। प्रस्तुत दोहों में आभावग्रस्त जीवन मूल्यों, गरीबी, भुखमरी का बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है।

बघेली दोहे

जउने दिन रोटी मिलइ, उहय दिना तेउहार।

जउनें दिन भूँखे कटय, उहय रोज इतवार।।

रिनि कइ हय खूँटी गड़ी, दिहिन देस लटकाय।

भोजन मां रोटी मिलय, कोइया मुर्री जाय।।

संविधान मां घुन लगा, प्रजातंत्र मां ढोंढ।

आजादी के पेंड़ मां, भीतर झलकै खोंढ।।

छूत चढ़ी है देस मां, रोज खुनहई होय।।

तिथि पामन फूहर लगै, आबइ रोइन रोय।।

खउरि मची है देस मां, हरहा खूब हुहान।

खूंटा गेरमा टोरिकै, घरही हबैइ सकान।।

बैल बिके बर खोज मां, खेत तिलक कै साज।

टाठी लोटा भैं गहन, तब सहनइया बाज।।

डॉ. देवेन्द्र द्विवेदी 'देव'

डॉ. देव का जन्म सीधी जिले के ग्राम पराई में 01 अगस्त सन् 1968 को हुआ है। आपके पिता का नाम श्री एल.आर. द्विवेदी है। डॉ. देव एम.कॉम. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् "सीधी जिले की कोयला खदानो में कार्यरत श्रमिको का आर्थिक अध्ययन" विषय पर पीएच.डी. की उपाधि ली तत्पश्चात् एम.ए. एवं बी.एड. किया शासकीय उत्कृष्ट उच्च. माध्यमिक विद्यालय सीधी क्रमांक-1 में वरिष्ठ व्याख्याता के रूप में पदस्थ हैं। संस्था से प्रकाशित होने वाली नियमित स्मारिका 'अपूर्वा' के आप संपादक हैं। साहित्य में गहरी अभिरूचि होने के कारण वर्तमान में आप बघेली साहित्य परिषद् के साहित्य मंत्री है तथा आपके सौजन्य से 'टेसू केर फूल' पत्रिका प्रकाशित हो रही है जो पूर्णतः बघेली साहित्य पर केन्द्रित होती है, डॉ. देव हिन्दी के सशक्त काव्यकार हैं किन्तु छुट-पुट रूप से बघेली में भी स्वान्तः सुखाय लेखन करते हैं। आपकी रचनाएँ देश एवं प्रदेश की समय की साखी, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती है। महकते सुमन साहित्य, संगम, वाण वीर सप्तक आदि में प्रकाशित है। कवि ने सीधी जिले की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गरिमा को उजागर करने एवं बघेली संस्कृति की अस्मिता को आयाम देने के लिये संकल्परत होता है।

सीधी पहिचाना हबै

सीधी कोयला के खातिर स्थान पहिचाना हबै।

चोरहट सरीखा गॉव संसार मां जाना हबै।।

कल कल बहै नदी अउ सोन अभिमान है

माड़ी अउ नेबूहा बॉध काचन शान हैं,

वाण सागर बॉध देस मां ता जाना हबै

सीधी कोयला के खातिर स्थान पहिचाना हबै।
वन उपवन अउ कइमोर परबत है जहाँ,
माड़ा जूडी रौहाल केर गुफा है उँहा,
सिद्ध भूमि सीधी सिद्धस्थली जाना हबै।
सीधी कोयला के खातिर स्थान पहिचाना हबै।
चर्चित चन्दरेह केर मंदिर जिला केर प्रान हैं,
कुडारी केरि भवानी अउ घोघरा देवी जान हैं,
बढौरा नाथ केर धाम पहिचाना हबै
सीधी कोयला के खातिर स्थान पहिचाना हबै।
इतिहास मां बरदी किला चुरहट गढी बिसाल है
साहित्य मां वाणभट्ट बघेली मां मिसाल है,
बीरबल रैदास कस मनीषी माना हबै
सीधी कोयला के खातिर स्थान पहिचाना हबै।

❖❖❖

पं. रोहिणी प्रसाद मिश्र

मिश्र का जन्म सतना जिलान्तर्गत कोठी के पास ग्राम मौहार में ब्राम्हण परिवार में हुआ है। आप एम.ए., बी.टी. करने के पश्चात् शिक्षक के रूप में सतना में ही पदस्थ हो गये। श्री मिश्र खड़ी बोली हिन्दी के माने जाने कवि एवं गीतकार हैं। आपकी कृति "गीत गंगा" प्रकाशित है जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित एवं परिस्कृत है तथा शैली रोचक है। मिश्र जी ने बघेली के उत्थान के लिये "बघेली लोकोक्तियों" की कृति भी तैयार की है जो प्रकाशित है। आप बघेली से प्रेम रखते हैं इसलिये यदा-कदा स्फुट रूप से आप बघेली में भी लेखन करते हैं। आपकी इस कविता में 'लूट-मार' भ्रष्टाचार, घूँस, अनाचार, एवं सामाजिक विदु◌पताओं का वर्णन लोकोक्तियों के प्रयोग से हुआ हैं।

नेगौरा लागै

मॉग का तेल नहीं।

मनुस मुगउरा मॉगै।

लागय न छागय

रंग सुनउरा लागै।।

नून, तेल, लकड़ी तो,

चरसी निकार रहे।

कउर-कउर रोटी का

टोरबा निहार रहें।

काम के न बूत के

खाय का सगउरा लागै।

कउनउ के पोथी न,

कापी है कउनउ के

कउनउ तो छीछन औ,

लीबर बहाइ रहें।

फुरय-फुर कहै ता

सुनै मां मखौरा लागै।

कथरी तक दुरघट

सपन होइगा पियरा।

अइसे सुराज मां

महगै होइगा जियरा।

पग-पग मा लूट मची

अफिसन मा नेगौरा लागै।

❖❖❖

शिवाकान्त त्रिपाठी

दिनांक 05.07.1960 को ग्राम चिल्ला खुर्द पो. अतरैला खुर्द जिला रीवा म.प्र. जन्मे श्री सरस बघेली एवं हिंदी में काव्य-रचना करते हैं। आप विंध्य के उत्तरांचल में श्री अंबा भारती नामक साहित्यिक संस्था का संचालन कर रहे हैं। बघेली काव्य संग्रह 'उच्छिन होइगा', एवं सुगन्ध काव्य संग्रह प्रकाशन की अवस्था में हैं। आप शिक्षक हैं। इस कविता में जीवन की बुराइयों सामाजिक विद्रूपताओं तथा मानव की संकीर्णवादी सोच को वर्णनात्मक ढंग से त्रिपाठी नें उद्घाटित करने का प्रयास किया है। समाज में फैली हुई विसंगतियों और मानव की प्रवृत्तियों के बदलाव से कवित चिन्तित है, अतएव अपनी पीड़ा को इस कविता में व्यक्त कर उठता है।

देखाइ लाग टेड

हरा भरा ठाढ़ अब झुराइ लाग पेड़ ।

सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़।।

जउन जहॉ जइसन देखात अब नहीं।

राह-गली घाटउ रुंधाइ लाग बेढ़।।

कहो कउन जुग अब जमाना हइ आबा।

लरिकन गदेलन के बाति न चलाबा।।

भाखा ई बोलत हां आंखी लड़ेर ।

सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़।।

केखर अब कसि के बिसुआस करी भाई।

अपनइ अब दगा देंइ मउके मां भाई।।
संघेन ऊ रेंगि रहें, काटि रहें फेड़ ।
सीध-साध मनईउ देखाइ लाग टेढ़।।
धरती के पानी उड़इ लाग सरगा।
केउ नहीं केहू के मानत हां बरजा।।
इज्जत बेचाइ जस छेरी अउ भेड़।
सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़।।
पानी मां दूध अमिस सबतर बेचाइ।
बहरा के पानी गंगा जल कहाइ।।
फुरि का पछोरि रहे झूठि लाग ढेर।
सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़ ।।
दुअरा के कउड़ा मोहारे के पीपर ।
अंगने के तुलसी नदारत हइ भीतर।।
देउतइ के पूजा अब होइ एंड़-बेड़।
सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़।।
जउन कबो नही दिखेन ऊ अब देखाइ।
जउन कबो नही सुनेन ऊ अब सुनाइ।।
आमां के बिरबा मा फरइ लाग रेंड़ ।
सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़।।

होइगा उच्छिन्न अब केसे बताई।

कउन-कउन बातिं के गोहारि अब लगाई।।

सरगउ मा होइ लाग बड़े-बड़े छेंड़।

सीध-साध मनइउ देखाइ लाग टेढ़ ।।

प्रह्लाद दास त्रिपाठी 'प्रह्लाद'

श्री त्रिपाठी बघेली रचनाओं के अतिरिक्त 'अध्यात्म रामायण', 'दुर्गा सप्तशती', 'श्रीमद्भागवत गीता', 'सती सावित्री कथा', 'कौशिक-धर्मव्याध संवाद', एवं श्रीमद्भागवत के 'रास पंचध्यायी' को दोहों चौपाइयों आदि छंदों में निबद्ध कर बघेली में रूपांतरण किया है। इस कविता में बघेली परम्परा मान्यता, एवं आध्यात्मिक आस्था का एक चित्र हास्य व्यंग्य शैली में उद्धृत हुआ है। कल्पवास की यात्रा में जुटाई जाने वाली सामग्री के परिपेक्ष्य में कवि व्यंग्य प्रहार करता हुआ प्रतीत होता है।

जइहीं कलपबास

कपड़ा कइ करा सफाई अब
बनबाबा नई रजाई अब
तिलबा कइ करा बंधाई अब
जुहबाबा खूब मिठाई अब
सेतुआ बहुरी का हइ सुपास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
दलही भतही चाही हंडी
बनबाबा एक सइह बंडी
गंगा मां परइ बहुत ठंडी
पहिचान का एक हरी झंडी
जातइ पहिचानी हम निवास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।

गठियाबा सब सीधा पिसान
चटनी बुकना मर्चा सेंधान
करिहीं कुछु खिचरी अन्नदान
होई दूनउं जूनी नहान
बनिहीं संतन मां परम खास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
बेसन, चिउरा, गुड़ लोन, बरी
अमचुर, कुट्टी, घिउ, और करी
गंगा जल खातिर एक जरी
बनवाइ दिहे सथरी गोदरी
कमरा, लकड़ी सब रहइ पास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
कहिहीं ई अलख निरंजन खुब
दांते मां करिहीं मंजन खुब
बनबइहीं सालन ब्यंजन खुब
घुमिहीं बनिके ई सज्जन खुब
सुरती सुंघनी सब रहइ पास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
भोरहिं लेइहीं गंग नहाय
फेरि भर गिलास कड़कीली चाय
गैस के चूल्हा दे मंगाय
चाहे जसिके तूं करा उपाय

परि जाइ भले घर मां उपास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
सब साधन रहै अमीरी के
कुछु कस्ट न होइ सरीरी के
थैला दइ दिहे पंजीरी के
भगवा एक रहइ फकीरी के
होई दंद-फंद से समय पास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
छोड़िहीं घर का सगलउ बवाल
भोगा तूं सगलउ भरम जाल
बस दुइ हजार के हइ सवाल
ई खर्चा लागी एहूं साल
डरिहीं तोंहरे नटई मां बांस
दादा फेर जइहीं कलपबास।।
ना मनिहीं केहू के बरजा
होइ जाइ चहे केतनउ हरजा
काढ़ा तू केहू से करजा
रहि जाइ सपूत का दर्जा
बनि जाइ तोंहारउ पुन्न पास
दादा फेर जइहीं कलपबास।।

❖❖❖

धर्मेद्र कुमार मिश्र 'धर्म'

श्री धर्म की कविताओं का प्रकाशन पत्रिकाओं में होता रहता है। आप मध्यप्रदेश विद्युत मंडल में नौकरी करते हैं। धर्म जी नें इस कविता में मजदूर की जीवन शैली को परम्परागत ढंग से प्रस्तुत करने की पहल की है, मजदूर बड़े-बड़े महल बनाता है, दूसरे के लिये सुख सुविधा देता है, लेकिन जीवन भर अभावग्रस्त जीवन जीता है, आंसुओ के घूट को पीता है और धनवानो के सुख सुविधा का शोषण होता हुआ सारी जिन्दगी ब्यतीत कर देता है, तथा भरपेट भोजन के लिये तरसता रहा है। बस इसी भाव को कवि नें इस कविता में रूपायित किया है।

हम मजदूर

हम मनई मजदूर अहन मेहनत कइ रोटी खाईथे।
रूखी-सूखी खाइ के कइसौ, आपन पेट चलाईथे।।

टुटही मड़ई फरिका झॉझर, बरखा सगल बिताइ दहेन।
सथरी पालि के कथरी ओढ़ि के जाड़ा सगल बिताइ रहेन।।
जेठ बइसाख के तपन लूक सहि, पेंड़े तरे बिताइथे।
रूखी-सूखी खाइ के कइसौ, आपन पेट चलाईथे।।

ऊँच हबेली बखरी बनयेन, बड़े बड़े मनइन केरे।
कुँआ नहर पोखरी हम खोदेन, गॉउ-शहर-चउहद्दी घेरे।।
बरधा नाधि के खेत जोति के, गल्ला हम उपजाइथे।।

रूखी-सूखी खाइ के कइसौ, आपन पेट चलाईथे।।

ऊबड़ खाबड़ ऊसर बंजर समथर खेत बनाइ दहेन।
निकहा निकहा बिया बोइके, सोना हम उपजाइ दहेन।।
सगल विपत्ति मूड़ पर धइक, भारत देश बनाइथे।
रूखी-सूखी खाइ के कइसौ, आपन पेट चलाईथे।।

मेहनत अउर मसक्कत कइके, सांझि सकार बिताइ रहेन।
हरिअर धानी धरती माई का अपने पहिराइ रहेन ।।
दुःखे-सुखे मा नहीं सुनइया, भितरेन रोइत-गाइथे।
रूखी-सूखी खाइ के कइसौ, आपन पेट चलाईथे।।

❖❖❖

रामलखन सिंह महगना

रामलखन सिंह का जन्म 14 जनवरी सन् 1967 को रीवा जिले के महगना गाँव में हुआ है। आपके पिता का नाम यज्ञराज सिंह बाघेल है। हायर सेकण्ड्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप कृषि कार्य में संलग्न होकर साहित्यिक सेवा करने लगे। मंचो में बघेली के हास्य कवि के रूप में आपकी अच्छी खासी पहिचान बनी हुई। आपकी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी दूरदर्शन से प्रसारित होती है। आप बघेली के साधनारत कवि है अतएव आपसे अभी अनेक संभावनाएं हैं। आपकी 'नवा फैशन' कविता में हास्य व्यंग्य की छटा इति वृत्तात्मक शैली में देखते ही बनती है तथा 'पौ बारा' शीर्षक हास्य के रंगीन गुब्बारों का सौन्दर्य प्रस्तुत करते है।

नबा फैसन

देखि के टीबी बाला फैसन, बदले बिटिया लड़िका,
जब देखैत फिल्मी धुनि मॉ, नाचै दुअरा फरिका।
लाला बूटूहन का चाही मेर-मूर के कपड़ा,
फैसन मॉही कमी परै त करिही घर मा नखड़ा।
लकस लिरिलि के साबुन लइ-लइ सगल दिन मुह धोमै
चूल्हा चउका बरतन माजै काही मुँह बिचकामै
पढि के जे दुइअक्षर दादू अब परदेश से लटकत हॉ
गॉव के अँउठा छाप बिचारेन से अंग्रेजी झटकट हॉ
सरमाइ के निहुरँइ पॉउ छुअइका

हाथ धराथॉ गुढुआमा

दसन खलीसा बने पैन्ट मां

घसा न एकौ बटुआमा।

चारि दिना का बिलिसि के पैकिट

लिहे खलीसम बॉगा

पचमे दिन से कुट्टी बीडी दॉत निकारत बॉगा,

दिन भर मारि मेछर्रा बागै, खाइके खासा है ददुदुआन

नाउ करै का पढिन लिखिन पै अकिलिन मॉ

हय बेढ सकान

चक्क बुक्क सब कइके फैसन

लिहे मोबाइल रंगे रहा

काला अक्षर भैसि बराबर पै अपसर कस सजे रहॉ

पढै मा ना मन दीदा लागी, चाही बस बेलकउरा

मारि कुदक्कड़ खेलै दिन भर, चढे बरम कस चउरा,

साझै से पेलिआइ परै ता, आठ बजे तक सोमै,

जाइ परिक्षम देखै पेपर मूड धरे तब रोमै

दिदी बिचारी मेढुलिन मॉही नौ दिन रोज उपासै

करै मनौती पास करै का देवियन का नहबामै

के रोट लेबाला नरियर देबै कइसौ पास कराबा

परू त बेलन्टे दादू हमरे आसौ पार लगाबा
देबी देउतउ का करै जब लिखिन न एक्को पन्ना
तिथि ब्यौहारी भरे का दादू खोलिन नही पोथन्ना,
जउन वीति गइ छोड़ा ओही आगे के सुधि कइल्लेजा
बिना पढे अब पास न होवे किच-किचाइ के पढिल्लेजा।

पौ बारा

भुइ जाघा दुइ कोठिया होया,
सोफा कुर्सी खटिया होय
घर मॉ लोटिया टठिया होय
चढै क जो फटफटिया होय
साथी सगले मिलै अवारा-रामलखन के पौ बारा
सुन्दर बनी हबेली होय,
जोडी नयी नबेली होय
गलुआ गुड कस भेली होय
चरि ठे हेली मेली होंय
जेबा खर्चउ करै सहारा-

❖❖❖

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद गुप्ता 'बैकुण्ठपुरी'

दिनांक 28.03.1959 को जन्मे डॉ. गुप्ता पेशे से होमियोपैथी के चिकित्सक है। ग़ज़ल, कविताएं, गीत, दोहे, लघुकथा आपकी प्रिय विधाएं है। आपकी रचनाओं का प्रकाशन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है। गुप्त की इस कविता में ग्राम्य परिवेश एवं मानवीय प्रवृत्तियों, विसंगतियों को सरल सपाट लहजे में विवेचित किया गया है, अभी आपसे बघेली काव्य हेतु अनेक संभावनाएँ है।

गॉउ के हाल-चाल

छोटे बडे के लिहाज न रहिगा,

लाज शरम है किनारे मां ।

काकू हाल न पूँछा हमसे, गॉव घरे के बारे मां।।

अपना के ईं लडिका जब से

पढि-लिखि शहर से आएं हइ

खेती पाती करइ न कउनउ

घर मां रोब जमाये हइ।

देखी अब तक सोइ रहें ई, घाम चढा है चियारे मां

काकू हाल न पूँछा हमसे .....।

रमई तिकड्डम बाज निकलिगा

आपन धाक जमाई रहा

समई केर आरि जोति के

उल्टा गारी देत रहा ।

आबा कउन जमाना काकू, सोचित हइ सरतारे मां।

काकू हाल हाल न पूछा हमसे .....।

शम्भू करे हाल न पूछा

देखतइ हयेन पडोसे मां

झाम के आगे रोजइ बपुरा

जाइ न पाबइ खेते मां ।

सास पुतउअउ बडे सकन्ने, लड़ती हंइ दुआरे मां।

काकू हाल न पूँछा हमसे .....।।

रहिमन भाई के रे लडिका

जिलाधीश बनि राज करइं

हमरउ तुंहरउ लडिकउ नेता

सीधे मुँह ना बात करई ।

टारे से टरइ न कबहूँ लिखा है जउन लिलारे मां।

काकू हाल न पूँछा हमसे .....।।

सुखई प्रसाद सोंधिया 'अटल'

अटल ने बघेली बोली कविता में बघेली की गरिमा एवं महत्ता का वर्णन प्रधान शैली में उद्घाटित किया है, इन दिनो बघेली में आप अच्छा प्रयास कर रहे है, अभी आपसे बघेली साहित्य को बहुत अपेक्षाएँ है।

बोली बघेली

विंध्य कइ माटी मां, बोली बघेली,
महकति हइ, जइसन बेली-चमेली।
तुहूं कुछ बोला, हमूं कुछ बोली,
मुरब्बा के नाईं, मीठि बघेली।।

जउन एंड़बेंड़ हमरे कस पेंड़ होइ,
फाट-पुरान ओन्ना मां, चलनी कस छेंड़ होइ,
जेंटा भर चुंदई, मूंड़ ठकठइला होइ,
लसर-फसर हांथ-गोड़, जेकर मटमइला होइ।
ओरमानी गिरत होइ, ठाट खपरइला होइ,
टुटही घिनौची पर माटी केर घइला होई,
मूड़े पर खोम्हरी, खेते मां भैरा होई,

ओढ़इ का लुगरी, बिठाबइ का पइरा होइ।
फटही फतोही, उधार मउरा होइ,
उपन्ना के खातिर लुगरी केर कउरा होय।।

लड़िकन का रूख-सूख, अपने का उहउ नहीं,
ठुर्री चबइना मां, दिन जे गुजारत होय।
ओठी-तता जानत होइ, गोरू-रकरा पालत होइ।
दादा-दिदी दिद्दा, भइअउ का मानत होय।
छोटकउना, बड़कउना, बेटउना-बिटीबा,
जेठरिया, मझिलिया, संझिलिया, छोटकीबा,
कहि-कहि, गोहराबत होय।
फुरिन-फुरि बोलत होइ, लबरी न जानत होइ,
भूखे भले सोबत होइ, आन से न मांगत होय।
पढ़ा-लिखा भले कम, अंउठा लगावत होय,
आजु कस दंद-फंद, अदालत न जानत होय।
पइ, परेम के रस मां रसाइ के जिभिया,
कहि-कहि 'अपना', आदर फइलाबत होय।
राम-राम कहिक जोहार करइ जानत होय,
अपने सयानन का देउता कस मानत होय।

इहइ आइ बघेली माटी कइ निसानी,

एहीं मोरि उमिरि सिरानी बीती जाइ जमानी।

रीबा-सीधी, सतना-सहडोल तक हइ जानी,

एंह बघेली मोर बोली केरि, अजबि हइ कहानी ।

रामकुमार पाण्डेय 'अरथी'

आपका जन्म शहडोल जिले की तहसील ब्यौहारी के अन्तर्गत ग्राम चौरी (बुड़बा) में 01 मार्च 1941 को हुआ है। आपके पिता का नाम प्रयागदत्त पाण्डेय हैं। आप एम.ए. (समाजशास्त्र) एवं आयुर्वेदरत्न हैं। अर्थी जी शिक्षक पद से सेवा निवृत्ता होकर अब स्वतंत्र रूप से साहित्य सेवा में संलग्न हैं। आप मूल रूप से खडी हिन्दी में लिखते है, किन्तु यदा-कदा आपकी लेखनी बघेली विषय वस्तु की ओर उन्मुख हो जाती है। आपने हिन्दी में अनेक रचनाएँ की हैं। फिल-हाल कोई भी कृतियाँ प्रकाशित नही है। पत्र पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। आपके लेखक से बघेली साहित्य को प्रोत्साहन मिलता है। इस बघेली कविता की भाषा सहज-सरल एवं सपाट है। जिससे पाठक सीधे-सीधे भाव अर्थ ग्रहण कर लेता है। शैली पूर्णतः इति बृत्तात्मक है। दीनानाथ की माया कहीं धूप कहीं छाया, कही राजा कही रंक भाव आपके इस कविता में वर्णित किया गया है।

दीनानाथ की विचित्रता

पानी बरषयँ अंते-मंते,
कुहिरा रहय इहाँ छाई।
दूहय कहिन ते गरीब के मेहरी,
लागय सबके भउजाई।।
हमहीं महुआ के लाटव नाहीं
सब झारयँ रसगुल्ला।
सबकेर लड़िका कहामयँ दादू,
हमरे का कहयँ ददुल्ला।।

एक पतरी दुई भॉत करय जब,

दुनिया केर रखइया।

लोठ अउर आगी हमाख बिटिया,

उनखे का कहयॅ चिरइया।।

दीनानाथ अउर दीनबंधुता,

नाव धराइन पोहगर।

देखयॅ हमहिं भरकहा भइंसा,

कस पय सबका मोहगर।।

जेइन मंदिर मस्जिद लूटयॅ,

उनहिन केर पडबारा।

उनहिन काहीं बनामय नाहर,

हमहिं बंधामय गारा।।

भजी सिंगट्ट न कोऊ जाना,

इया करतूत जो करिहे।

दीनानाथ जो नाव धराये,

ता दीनयका का मरिहे।।

❖❖❖

गंगा प्रसाद पाण्डेय

आपका जन्म सतना जिले के अन्तर्गत हुआ है। आप विगत कई वर्षो से हिन्दी एवं बघेली में कविताओं का लेखन कर रहे हैं। मूलतः आप खड़ी बोली हिन्दी के कवि है। किन्तु स्फुट रूप से बघेली में भी लेखन करते है। आपकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। स्वतंत्र कृति प्रकाशित नही है। बघेली की इस कविता में किसान की कृषि सम्बंधी तैयारी का बरसात के पूर्व कर लेने का वर्णन कवि द्वारा किया गया है। आप बघेली के प्रतिभागी कवि है।

सियारी का सूखा

पहिलेन किहेन मेढ़-माटी, सब घूर खेत मा डारेन।
गिरा दउँगरा जोत बोय के, दूब-कॉद सब झारेन।।
कढतै डउवा किहेन चेतन्नी लगाई निदाई-
जब तक छींद न परी राम दे, फेरी रोज लगाई।।
छींदी परे निसोच न सोएन, सॉझ-रात भिनसरहा।
हॉकत रहेन कट्टहन के संग, भइँसी-गोरू हरहा।।
हम तौ जिउ अउटबै भएन, पै लड़िकन कै महतारी।
घर का काम समेट सकरभर, पहुँचै खेत बिचारी।।
लरिका बपुरे चिरई हॉकै, बोएन धान मताई।
महिनन नहीं मदरसा पहुँचें, होइगै बन्द पढाई।।
नींदत भै गोड़े मां कॅदरी, ठेंठा परिगें हॉथे।

सहेन घाम झरियार सबै, टुटही खोम्हरी के माथे।।
चार महीना लगे रहेन हम, मूडे माटी दइके।
बपुरी उहौ तीज-तेउहारे, जाइ न पाइस मइके।।
बढी धान गठिलाय लाग तब, सगला दुक्ख बिसरिगा।
पै जबहिन गलेथ मा आई, तबहिन दइउ निकरिगा।।
जउन आसरा मा भादौं मा काढ़-काढ़ के खाएन।
लेई पूँजी घर के खेती मॉही सबै लगाएन।
दइउ छोड़ाइस परसी टठिया, बल भर भै नकसानी।
पानी मॉही गै हमार सब, मेहनत अपना मानी।।

दया राम गुप्त 'पथिक'

पथिक जी का जन्म शहडोल जिले के व्यौहारी मुल में हुआ है, आपने सागर विश्वविद्यालय से एम.ए. अर्थशास्त्र की परीक्षा उत्तीर्ण कर साहित्य सर्जना में लग गये वर्तमान में आप विजय वस्त्रालय व्यौहारी के व्यवस्थापक है, गुप्त के अब तक अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके है, आप निरन्तर काव्य मंचों एवं लेखन के माध्यम से साहित्य की सेवा कर रहे है, साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आपको अनेक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हो चुके है, पत्र पत्रिकाओं मे आपकी कविताओं का प्रकाशन तथा आकाशवाणी से कविताओं का प्रसारण होता है गुप्त जी की भाषाशैली इतिवृत्तात्मक है तथा भाषा सरल सपाट है। आप मूतलः खड़ी बोली हिन्दी के कवि है यदा-कदा आप बघेली में लिखने का बाल प्रयास करते है। प्रतिभागी रचनाकार के रूप में आपको स्वीकार करना उचित होगा, इस कविता में आपने गिरते हुये जीवन मूल्यों की बातो को वर्णित किया है।

बनि गयेन भिखारी

दुइ दिन के जीवन मां, छिन न मिला सुक्ख।
अउ पहार कस आगे, ठूंठ ठाढ़ दुक्ख।।

जोति लिहिस जबरा कस, समय, सुक्ख खेती।
जिलहन मन बंजर अब, गुठुआ भर रेती।।

ब्याजन निहारी मां उमिरि बीति नउढ़ी।

प्याट बांध बाउर कस, कइसन के पउढ़ी।।

टुकुर-टुकुर ताकित हन, सरग के तरइया।
भभरिआय गय आंखी, कउन हइ देखइया।।

छाती मां मूंग दरै, बने छत्रधारी।
भरे घर माही हम, बनि गएन भिखारी।।

धीरेंद्र त्रिपाठी

सीधी जिले के ग्राम लोढ़ौटा तहसील रामपुर नैकिन में 4 अगस्त 1957 को जन्मे धीरेंद्र त्रिपाठी बघेली कविताओं में रुचि लेते हैं। वे शिक्षा विभाग में लिपिक के रूप में आजीविका चलाते हैं। बघेली में अभी तक कोई भी प्रकाशित कृति नही है, किन्तु स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन होता रहता है, आकशवाणी रीवा से आपकी कविताओं का प्रसारण भी होता है। बघेली में आप इतिबृत्तात्मक शैली में समाज की बुराइयों, एवं भ्रष्टाचार का वर्णन करते है, बघेली की इस कविता में मनुष्य की व्यक्तिगत जिन्दगी के दुख का विवेचन किया गया है, मूल रूप से आप बघेली में कहानी लिखते है, और खड़ी बोली हिन्दी में कविताएँ। यदा-कदा बघेली की ओर भी आपकी लेखनी चल पडती है। आपको बघेली के प्रतिभागी कवि के रूप में स्वीकार किया जाना समुचित प्रतीत होता है।

का कही

आजु काल्हि आपन हालि का कही।
लागै सांप के बिला, जउने घरे मा रही।।
बिसुआस के सगली, छान्हीं खंरहंट होइगै।
बइहरै कुछु अइसन है बही।।
सही सलामत जउने अपना घर तक पहुंची।
कउने गली से अब जाय का कही।।
सगली राति मनै-मन सोचेन इहै बिचारेन,
कइसे छोटकउना बिन रोटी काल्हि रही।।

केसे कही अपने भीतर के बाति केसे कही।
दिनमाने होइगै राति केसे कही।।
कुहिरा कुन्निआउ के छाबा है सगले गांव मां
कउनउ गली नहीं देखाति, केसे कही।
बखरी मां गहन भा अंजोर सब,
हमरे दिया नहीं लेसाति केसे कही।
जे आंसू पोंछि के पुचकारै गरीब का,
अइसन कोऊ नहीं देखात, केसे कही।।

❖❖❖

रामनाथ सोनी 'अनाथ'

अनाथ जी का जन्म सन् 1940 में रीवा जिले के बरहदी गाँव में हुआ किन्तु व्यवसाय के कारण अब शराफा बाजार सीधी में स्थाई रूप से निवासी बन चुके हैं। आपके पिता का नाम रामविशाल सोनी था। अनाथ जी का प्रेम साहित्य के प्रति अदम्य है। आप कुछ न कुछ लिखने का प्रयास करते हैं। बघेली कविताएँ फुटकर रूप से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। सरल सपाट बयानी लहजे में आप बघेली कविताएँ लिखने का प्रयास कर रहे है। इस कविता मे वृक्षारोपण की प्रेरणा देते हुये कवि पर्यावरण को स्वस्थ्य बनाये रखनें के लिये संकल्परत है । आपको बघेली का प्रतिभागी कवि के रूप में स्वीकार करना न्याय संगत प्रतीत होता है।

जवर बनावा

बाग बगइचा खूब लगाये, अब लड़िकन कांहिं बतावा।

पेड़ लगामइ मेर-मेर के, धरतिउ जवर बनावा।।

हितकर विरवा सबइ पेड़ हई, जगत के राखन हार।

जियतइ मा फल-फूल देत हई, बनते फेर पियार।।

पेड़ लगावा मेर-मेर के, धरहिइ जवर बनावा।।

पेड़ बीज के बेहनि बोवा, लड़िकन अस तू जाना।।

पीपर पेड़ भगवान हई दादू, सवइ मनउती माना।।

आमा के पेड़ के काज होत हइ, लडिकन काहि बतावा।

पेड़ लगावा मेर मेर के, धरितउ जबर बनावा।।

दाइउ, काकी हरछठ पूजइ, छिउला कॉश बरारी।

बरा पेड़ बरसाइत पूजइ, सबइ बहिन महतारी।।

कहइ अनाथ-सनाथ पेड़ सब, अन्त चित्ता तक पावा।

पेड लगावा मेर-मेर के धरतिउ जवर बनावा।।

❖❖❖

बृजेश सिंह 'सरल'

बृजेश सिंह सरल का जन्म रीवा जिले के रायपुर कर्चुलियान के रोर ग्राम में 10 अगस्त सन् 1976 को हुआ है। आपके पिता का नाम महेश्वरी सिंह कर्चुली है। हायर सेकेण्ड्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सरल संविदा शिक्षक के रूप में प्राथमिक शाला कटई जिला सिंगरौली में पदस्थ है। बघेली के इस नवोदित कवि में काव्य लेखन के प्रति निष्ठा एवं लगन की सघनता है। आपकी कई कविताएँ प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। हास्य विधा में आपको लिखना और मंच में हसी की फुलझड़ी छोड़ना अधिक पसन्द है। अभी आपसे अनेक अपेक्षाएँ हैं। समाज में फैली हुई कुरीतियों मान्यताएँ आस्थाएँ एवं अंध विश्वास के विरोध में सरल का स्वर इस कविता में मुखरित हुआ है।

धन्नि है आपन हिन्दुस्तान

चढै बोखार त बाधै बीरा,

मंत्र से झारै पेट के पीरा,

दात पिराय त कान में दवा,

स्नोफीलिया झारै बबा,

इहां पीलिया हाथ से छूटे,

झारै जब तक सासि न टूटै,

बडे पडंन के बाति का कही,

छुटभइया तक बने महान,

धन्नि है आपन हिन्दुस्तान

मरै आदमी भूत बनि जाय,
रोट निवाला मरेव म खाय,
जेखे चाहै सिर चढि डोलै
का का चाही मरेव म बोलै,
जियत म चाहे मागै कउरा,
मरे म ओहू का चाही चउरा,
मनई चाहे बेघर रहै,
भूतन केर इहां बनै मकान,
धन्नि है आपन हिन्दुस्तान।
तेरही म तीन खाड़ी के पूड़ी,
चारि गांव तक बाम्हन डूढी,
जियत म एक मूठिव न देई,
मरे म सब महबाम्हन लेई
गंगा जी तक दान लुटाई
अउर गया तक पिड़ पराई,
जेखे मरे म जेतनय दान
ओखर ओतनै ऊँची शान,
धन्नि है आपन हिन्दुस्तान।
इहा है जनसंख्या विस्फोट,

दुइ के परमिट दिहै है कोट
पै कानून रहा है नाचि,
एक के पीछे लड़िका पाचि,
चीन तक हमसें पीछे होई,
देश अपने पूतन पर रोई,
पै इनखर नहीं गलती आय,
सगला करइया है भगमान,
धन्नि है आपन हिन्दुस्तान।

बघेली ग़ज़ल

बघेली के अनेकानेक रचनाकारो ने बघेली गजल विधा में अपनी लेखनी चलाई है। बघेली गजल सर्वप्रथम किसने लिखा यह कहना कठिन है, किन्तु यह सच है कि सन् 1958 के आस-पास से इस विधा में लेखन प्रारम्भ हुआ है, डॉ0 श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' की कृति "अँजुरी भर अँजोर" में लगभग 30 बघेली गजल और अमरउती कविता संग्रह में 25 गजले प्रकाशित है।बघेली गजलकार के रूप में जिन काव्यकारो नें बघेली के काव्य वैभव को सम्पन्न बनाया है, ऊचाई दी है और बघेली को नई दिशा प्रदान किया है, उनमें से कालिका प्रसाद त्रिपाठी, डॉ0 श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' बाबूलाल दाहिया, अंजनी सिंह सौरभ, रामसखा नामदेव, रामरक्षा द्विवेदी आदि का नाम परम् सम्मान के साथ साहित्येतिहास में उद्घाटित करना समुचित प्रतीत होता है। बघेली गजल की प्रस्तुति से बघेली साहित्य-भण्डार निश्चित रूप से समृद्ध हुआ है।

कालिका प्रसाद त्रिपाठी

बोट ठिकाने मां -

पुनि के दबी बटन मां अंगुरी, परिगा बोट ठिकाने मां।
दिन बुड़तै अंधियार पसरिगा, रीमा लारीखाने मां।।
सौ-सौ के कलदार कटें जब, काकू के मिरजाई से।
फटा खलीसा रपट लिखाबै, कब तक चउकी थाने मां।।
काने के बाला, नाके के, नथिया कटी फतोही से।
घर बारी कुछु बेंचा भांजा, का होई बउराने मां।।
तिलक न पहुंचा, काकू पहुंचें, पुरिखन के अमराई तक।
बरिअत्तन के काज बइठ तै, निकहा चोख घराने मां।।
झंडा के मिरजाई कुरथी, बैनर खोल रजाई के।
सगले दल के ओढ़ि पिछउरी, बुढ़ऊ हैं मैदाने मां।।

रामरखैया -

चिट्ठी मिली, मरे गिरधारी, आगे राम रखइय्या है।
कच्ची कोमर, जरी सियारी, आगे राम रखइय्या है।।
कड़ा-छड़ा, नौगिरिही-पायल, डब्बलही तर गहन रहा।

गति-गंगा के सबै उधारी, आगे राम रखइय्या है।।

सोबरि-सूदक से कुछु आगे, बड़कीबा के काज रहा,

लकबा म चुरकुन महतारी, आगे राम रखइय्या है।।

लोनगी, लोंहदी, डिहुला बगरी, चंउसेला के महकि मरी।

जब से चला बीज सरकारी, आगे राम रखइय्या है।।

बेउहर के बंधवा के खाले, तिरबेनी के गाय मरी।

सगले गांव चढ़ी हत्यारी, आगे राम रखइय्या है।।

बउठरिहा मइरे के भीती, सालै कटै बड़ेरी से,

दुई-दुई आंसू चुयै ओसारी, आगे राम रखइय्या है।।

होम, गरास, लेवाला, पंडा, बाना, बरछी, लिहे फिरै।

देवी फिरै बिपति के मारी, आगे राम रखइय्या है।।

बोबै बोट, बिदाहै इरखा, पंचाइत के खेती म।

दुअरा से अंगना तक बारी, आगे राम रखइय्या है।।

अंजनी सिंह 'सौरभ'

ठीक नही लागइ -

मुँह के मरचा पेट के छूरी ठीक नही लागइ,

देखा हमसे अतनी दूरी ठीक नही लागइ।

हम बॉदर कस बच्चा तोहका छपटाये बागी,

तू ऐखा माना मजबूरी ठीक नही लागइ।

जब तक चलइ पसीना तब तक काम करामै,
ऑसु गिरे पर देइ मजूरी ठीक नही लागइ।
जतनी सउखि रही तइ ओतनी सबइ पूर कइ लीन
अतनेउ मांही कहै अधूरी ठीक नही लागइ।
नोचिन कोथिन काटिन कूटिन तबहूं भर मां,
कहैं साधि का भय न पूरी ठीक नही लागइ।
जब तक हाथ लगउतइ रहबेऽअ ठाढ न होइ पइही,
फेरउ कहबेऽअ हबइ जरूरी ठीक नही लागइ।
अब भथुआ के आड़े गोहू पानी पाइ रहे हॉ,
कब तक मनबेऽअ खेत के मूरी ठीक नही लागइ।

धउ काहे भइया -

कहत रहा त करत रहा अब नही करइ धउ काहे भइया,
मुरगी अण्डा धरति रही अब नही धरइ धउ काहे भइया।
दुइ पइला खाड़ो हिसाब से झरत रहा तइ दाना,
अब खादिउ पानिउ दीन्हे पर नही झरइ धउ काहे भइया।
मालदहा, महिपरिया, कलबा, कारी, सुन्दरजा,
सगले लगे बगइचा मांही नही फरइ धउ काहे भइया।
आधिन दूर किसानी पहुचइ लउटि जाइ बरसात,
गरमी खूब परै पर ठण्डी नही ठरइ धउ काहे भइया।

खूब गोलहथी खई पेट पर चकरन निघरइ चाउर,
अब चक्की के आगे चकरा नही ढरइ धउ काहे भइया।
खोरबा भर सेतुआ खुब खायेन पूरी अउर पना,
लहिला केर बरी अब मन से नही टरइ धउ काहे भइया।
ठण्डी मां घिउ चुपरी रोटी जेठ बइरि केर अमचुर,
बरसाते मां फरा मउहरी नही जुरइ धउ काहे भइया।
निचि का तिनगी धरत भरे मां बरत रही तइ आगी,
अब कतनउ फूके-फाके पर नही बरइ धउ काहे भइया।

चित्रेश चित्रांशी

अपनइ से -

मउसम मां हबइ जान, अपनइ से,
जान के हइ प्रमान, अपनइ से।
होय गुलमोहर कि कउनउ गुलाब,
लइके लाली ललान, अपनइ से।
सगल तीरथ, बरत अउ पूजा हइ,
अउ हइ गंगा नहान, अपनइ से।
जब कभूं ठेस लगी मन हारा,
पाएंन हम शक्ति दान, अपनइ से।

बाबूलाल दाहिया

न होई व -

ऑखिन के दीख बात जे भाखी कबीर कस।
कउनौ ढपोल संख के बानी न होई व।।
जोखिम म खुद का डार जे इतिहास का गढी।
नानी कै फेर झूँठ कहानी न होई व।।
आने के लिखी बात कै गठरी लिहे फिरै।
केतनौ करै गुमान पै ज्ञानी न होई व।।
मेहनत किहे जो देंहॅ से टपकी जमीन म।
कउनौ नदी तलाब क पानी न होई व।।

मनई -

साथै तो रोज काम करै जाथै मनई।
कइ के सलाम बन्दगी, बिदुराथै मनई।।
धाई कमाई लाबा जो जांगर क पेर के।
गल्ला बेसाह सत महॅग खाथै मनई।।
जाड़े म जाड़, घाम सब का लागै पियास।
छाया म बइठ-बइठ के सहुँताथै मनई।।
कुइयॉ नलन का पानी पियै एक मेर के।

घरहूँ मा एक मेर के, रहि ल्याथै मनई।।

यंतरौ के जिन्दगी म, य माहुर को मिलाये।

काहेधरम के नाव म, बिलगाथै मनई।।

हिन्दू कि मुसलमान, जहाँ सिक्ख व बना।

मनई क काहे देख के, अँइँड़ाथै मनई।।

फुर-फुर जे जियाये, जहालत कै जिन्दगी।

ओसे लड़ै म काहे य, सकुचाथै मनई।।

रामसखा नामदेव

न मागेन कबहू -

हम ता ऐस आराम के, सौगात न मागेन कबहूँ।

जिन्दगी एतनी मोहताज, न मागेन कबहूँ।।

घाम एतना नहीं, भुइंया के जेसे देंह जरै।

उमिर भर दलदली बरसात न मांगेन कबहू।।

सपन अइसन नहीं, जउन सपनेव म न पूर होंय।

सपनन से हकीकत म, मुलागात न मांगेन कबहूँ।।

दिन इअसन नहीं, जउन अंजोरौ का कैद मा राखै।

सबेरन से एतनी दूर, रात न मांगेन कबहूँ।।

जीत अइसन नहीं, जउन जीत के हराय देय।

अइसे जीतन से हम, मात न मांगेन कबहूँ।।

घाम मूठी पर जउन घर मां अंजोर भरै।
अउर अपने खितिर, इफरात न मांगेन कबहूँ।
प्यार भरा दिल, अउर धड़कन इंसीनियत के।
हम सिरिफ इंसान के कउनौ जात न मांगेन कबहूँ।।

डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'

भइया बड़े हिम्मती -

बैन लिहिन पहिचान भइया बड़े हिम्मती।
बेंचि दिहिन ईमान, भइया बड़े हिम्मती।
बड़े-बड़े बणमान धुरंधर नाके रहिगें,
काट लिहिन उँइ, कान, भइया बड़े हिम्मती।
बीता भरके तोंद लिहे ई बकुलाधारी,
देखत देखत सास रजंसी मां सब सरिगा
गोहू के खरिहान भइया बडे हिम्मती
सकुनी वाली बुद्धि आज सोख बस और
गीता अउर कुरान भइया बड़े हिम्मती

चउमासें मां उतिन मड़इचा उँइ गरीब के
बखरी लीन्हिन तान भइया बडे हिम्मती
सरम के मारे सिकुली सिकुली जनता दागै
आपुन चलै उतान भइया बड़े हिम्मती
रकतचिखा भे जबसे भइया तबसे अब तक
हतिन हजारन प्रान, भइया बड़े हिम्मती
सिखत-सिखत सब स्वाहा होइगा सरस रामदे
आपन हिन्दुस्तान भइया बड़े हिम्मती।
हमरे खातिर जेठ लगा है
आन के देखबे खातिर भले भिरेठ लगा है।
तिली निझरिगै तापय निता तिलेठ लगा है।।
जेखे खातिर सामन होई होई लाग के
हमरे खातिर देखा भइया जेठ लगा है।
हमरे नाव के आगू-पाछू कुछू नहीं पय
उनखे नाव के पहिलेन धन्ना सेठ लगा है।
हमरे हींसा मां परेठ भुँइ परी अमल्लक
उनखे मांही बँधवा पूर भरेठ लगा है
अगुरिआइके कइसन केहीं करी इसारा
अगुँरी मांही चारिउ कइत चपेछ लगा है।

कोइदा बतिया तक बिरबा मां सब अइलानी।
बगिया मांही निकबर 'सरस' जरेठ लगा है।।
अकिल अमिस के कइसन के उखियारी मुद्दा।
प्रत्यय मांही पहिलेन से उन्नेट लगा है।।

रामरक्षा द्विवेदी 'शिशु'

का बताई -

दादू हम अइसन के सोएन का बताई।
पुरखन के पूंजी का खोएन, का बताई।।
पारसमणि के लालच माहीं बीस साल से,
अजगर का कांधा मां ढोएन, का बताई।।
घर के अइना चिपुरा मानेन चिपुरचौंध मां,
अपनें आंखी का न धोएन, का बताई।।
जे मोइनि घिउ हमरे मुंहुं मा बड़े प्रेम से,
उनके मुंहु हम मिरचा मोएन, का बताई।।
कामधेनु के धोखा माहीं चुपके-चुपके,
दुहै खीतिर बघिनिउ का नोएन, का बताई।।
जबै-जबै हम हाथ पसारेन करि के आसा,
अपनै आपन दुखड़ा रोएन, का बताई।।
मरभुखहा हाथी के भूंखि मिटामैं खातिर,
अपना दुइठे रोटी पोएन, का बताई।।

बघेली हाइकू

हायकू एक विदेशी विधा है, अर्थात् यह विधा जापान से आई है, जिसको प्रो. आदित्य प्रताप सिंह चिरहुला रीवा नें अंगीकार करके बघेली में सफलतम प्रयोग किया है। बघेली की यह रचना जिसकी प्रथम पंक्ति में पांच अक्षर, दूसरी पंक्ति में सात अक्षर और तीसरी पंक्ति में पांच अक्षर होते है, "गागर में सागर" भरकर अर्थवत्ता देती हैं। बघेली हायकू के जनक प्रो. आदित्य प्रताप सिंह नें भरपूर प्रयोग करके बघेली काव्य भण्डार को सम्पन्न श्री किया है। हायकू की हवा धीरे-धीरे पूरे बघेलखण्ड में फैली और प्रमोद वत्स, डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' श्रुतिबन्त प्रसाद बिजन, को भी स्पर्श कर गई। फलतः जिन बघेली कवियों ने हायकू का लेखन एव प्रकाशन किया है, उनकी वानगी उद्धृत है।

प्रो. आदित्य प्रताप सिंह

1. बदरा लिखै
सरग मां कविता
भुइं मां अर्थै।

2. महुआ डोंगा
चिहुंटी लीन्हें जाय
बहू का डोला..।

3. बनका माहीं
फिरैं तितली खोजैं
धौंका टिकुली ?

4. फूले का उड़ा
गोंदिली मा गा फे फे
कांदौ मा भिन्ना।

5. जिंदगी बस
चार, आमा, महुआ
फेर कहुआ।

6. आमा पकसा

गोलइंदा डिढ़ान

बघेली बोली।

7. हवा बहत

तट नदी, नांव धौं

चौमत भेंक।

8. सरद भोर

घेंटुला चरावै रे

डोकरी दाई।

9. चैती चांदनी

पोखरी मा गोबरी,

भूख धोबै रे।

प्रमोद वत्स

1. रात-विरात लील पाटी

कल्हरत अरुआ धुधकुहुरि पोति

पुनि हँसत।

2. लील पाटी

धुधकुहुरि पोति

रचत ककहरा।

3. जेठ केर धूधुरि जोन्हइ चेहरा

कहर सनाटा नदी मा बहतरे

मारत फूल।

4. जोन्हइ चेहरा

नदी मा बहतरे

कुआ मा कैद।

5. कुइनी मुंह बूदबूद काट

चूसत है भउरा गिरगिटी नजर

फूल सेहुड़ा।

6. बूदबूद काट

गिरगिटी नजर

जहरीले चाकू।

7. नदी बीच ब

बहत फूल

मारत भौता

डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'

1. मैर मारइ चील्ह निहारै

मरा सॉप के नॉई -पखना पसारि के

छुहिया घाटी।

2. चील्ह निहारै
पखना पसारि के
आनकै फूली।

3. आमा कहतमइल मन
बररी जाय जीभ-फॅराकेन फॅराके
अमिली कॉहीं।

4. मइल मन
फॅराकेन फॅराके
गइल हीठै।

5. छीछिल भूँखसरी लहास
अधबुढ़ान बाध,चौगिरदा चॉचर
भाई पलागो।

6. सरी लहास
चौगिरदा चॉचर
मॉछी भिनकै।

7. बोट बटोरैबुढान बाघ
परदनी सिंगोहेबराबै कटइया
लॅपहा खेत।

8. बुढान बाघ

बराबै कटइया

सिकार निता।

9. ओलिया मारेखींसा थथोलै

जमानी मां जोसपकड़े परदनी

देंह टोरइ।

10. खींसा थथोलै

पकड़े परदनी

सुपेत सेर।

11. दूध बजारेआगी सुलगै

नसान जीभ मागैनागिन के नाच मां

चुपरी रोटी।

12. आगी सुलगै

नागिन के नाच मां

नाग मस्त।

अध्याय : तीन

बघेली भाषा के गद्यकार

जिस गति से बघेली की काव्य विधा का विकास लेखन प्रकाशन के माध्यम से हुआ है उस गति से बघेली गद्य का नहीं हुआ है। अति विरल कार्य बघेली की गद्य विधा में बन पाया है। फिर भी 'पूत के पाव पालने में' की भाव भूमि पर यह माना जाना चाहिए कि अभी तक बघेली गद्य में - बघेली नाटक, बघेली कहानियॉ, बघेली लोक कहानियाँ, और बघेली शब्द-कोश का कार्य भले ही न्यून परलक्षित होता है किन्तु सार गर्भित है। बघेली भाषा के गद्यकारो का समुचित अध्ययन करने की दृष्टि से यहॉ पर विधागत अनुशीलन क्रमवार प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

बघेली भाषा के विकास में जहॉ प्रमुख गद्यकार डॉ0 भगवती प्रसाद शुक्ल, डॉ0आर्या प्रसाद त्रिपाठी, डॉ0 लखन प्रताप सिंह उरगेश, डॉ0 सूर्यभान सिंह नें गद्य विधा को समृद्ध किया है। वहीं बघेली कहानी को अनेक रचनाकारो ने आयाम दिया है। बघेली भाषा की दिशा में डॉ0श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने एक ऐतिहासिक कार्य "बघेली शब्द-कोश" का लेखन प्रकाशन करके किया है। उनका यह कार्य बघेली साहित्य में प्राण फूकने जैसा मान्य हो सकता है।

क– बघेली के नाटककार

हिंदी के सर्वप्रथम मौलिक नाटक रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह कृत 'आनंद रघुनंदन' का प्रथम प्रकाशन लायड यंत्रणालय काशी से सन् 1871 में हुआ था। किंतु इसकी प्रतियां संभवतः महाराज रीवा के सरदारों और संबंधियों में ही वितरित हुईं। क्षोभ का विषय है कि नाट्य साहित्य में ऐतिहासिक महत्व रखने वाली इस कृति की प्रकाशित प्रतियां अर्धशताब्दी से अधिक काल तक उपलब्ध न होने पर भी इसके पुनः प्रकाशन का कार्य नहीं किया जा सका।

इस तरह से माना जाता है कि बघेलखंड में नाट्यलेखन की परंपरा बहुत पुरानी है। संस्कृत परंपरा से उद्भूत हिंदी नाटक का इतिहास बोलियों में लिखे गए नाटकों से ही प्रकट हुआ है। आनंद रघुनंदन नाटक में प्रयुक्त बोली प्रमुखतः ब्रज है। यह वह समय था, जब खड़ी बोली का विकास नहीं हुआ था, और सभ्रांत भाषा के रूप में संस्कृत के बाद, थोड़ी बहुत स्वीकृति ब्रज को ही थी।

बघेलखंड में लोकनाट्यों की परंपरा रही है। हिंगाला और बघेसुर आदिवासियों के प्रमुख दो नाट्य हैं। गैर आदिवासी बघेली लोकनाट्यों में छाहुर, जिंदबा और मनुसुखा प्रमुख हैं। ये सभी नाट्य अ-लिखित होते हैं, और पीढ़ियों से खेले जा रहे हैं। समय-समय पर परिस्थिति-अनुसार इसमें संवादों में परिवर्तन भी होते रहते हैं। बघेली में कुछ लेखकों ने छोटे-छोटे नाटक लिखे हैं, परंतु ये नाटक मंचित, या प्रकाशित न होने के कारण प्रकाश में नहीं आ सके हैं।

योगेश त्रिपाठी ने कई बघेली लघुनाटकों के अलावा, पूर्ण कालिक मौलिक बघेली नाटक छाहुर का लेखन किया है, जिसका मंचन उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत एवं कला अकादमी द्वारा आयोजित मध्यप्रदेश नाट्य समारोह में दिनांक 3 अप्रैल 2005 को दमोह में किया गया है। इस तरह से छाहुर प्रामाणिक रूप से बघेली का पहला सशक्त नाटक है। छाहुर बघेलखंड की लोकनाट्य शैली है, जिसे मूल रूप से यादव लोग दीवाली के अवसर पर किया करते हैं।

योगेश त्रिपाठी

18 जून 1959 को ग्राम बड़ागांव (त्यौंथर तहसील) जिला रीवा में जन्मे, श्री त्रिपाठी एक बैंककर्मी होने के साथ-साथ हिंदी के काफी चर्चित नाट्य-लेखक और निर्देशक हैं। इन्होने पंद्रह मंचीय, छः नुक्कड़ और चालीस से अधिक रेडियो नाटकों का लेखन किया है। कागज पर लिखी मौत, हस्ताक्षर, मुझे अमृता चाहिए और हस्ताक्षर, मुझे अमृता चाहिये, और युद्ध, नाटकों की सफलता के बाद इन्होंने बघेली नाटक छाहुर, का लेखन और मंचन 2005 में किया। पूर्व में स्व-लिखित बघेली नाटक 'होइहैं वहि जो राम रचि राखा' के कई मंचन सन् 1995-1996 में रीवा, सतना, शहडोल और मथुरा में कर चुके हैं।

बघेली नाटक : छाहुर

कथा–सार

छाहुर की कथा अत्यंत सीधी-सादी है। छाहुर एक गरीब अहीर नवयुवक है, जो अपनी विधवा मां के साथ एक गांव में रहता है। इन दोनों का जीवनयापन का सहारा उसकी एक गाय और एक कानी भैंस है। राजा का आदेश है कि दूध देती गाय-भैंसों को पूरी प्रजा गढ़ी में पहुंचाये ताकि गढ़ी के बछेड़ों (घोड़ों के बच्चे) को दूध पीने को हो जाए, और जब दूध देना बंद कर दें तो उन्हें वापस ले जाएं। छाहुर इस आदेश को नहीं मानता और अपने मवेशी नहीं भेजता। राजा उसको दरबार में तलब करता है। राजकीय आतंक से अपरिचित छाहुर वहां राजा को अपने मवेशी देने से इंकार कर देता है। राजा का आतंक कहर बनकर टूटता है और छाहुर के मवेशी छीन लिए जाते हैं। छाहुर के घर में कुहराम मच जाता है। छाहुर इस अन्याय को सहन नहीं करता और वेश बदलकर राजा की गढ़ी में जा पहुंचता है।

गढ़ी पहुंचने के बाद छाहुर, राजकुमारी से प्रेम का स्वांग करता है और उसी के माध्यम से गढ़ी में चरवाहे की नौकरी पा जाता है। दोनों में प्रेम-व्यापार चलता रहता है कि एक रात मौका पाकर छाहुर अपने मवेशी लेकर भाग आता है। मां जब यह देखती है कि छाहुर सिर्फ अपने मवेशी लेकर आया है तो उसे बहुत बुरा लगता है, और वह छाहुर से कहती है कि अगर वह उसका असली बेटा है तो फिर से गढ़ी में जाए और सारे गांव वालों के मवेशियों को ले आए। छाहुर भी जोश में भर उठता है और कहता है कि वह मवेशी ले आएगा, साथ ही राजकुमारी को उसकी बहू भी बनाएगा। मां अवाक रह जाती है। छाहुर के जोश को देखकर सभी गांव वाले भी साथ हो लेते हैं, और लाठी लेकर गढ़ी पर चढ़ाई कर देते हैं। राजा जनता के आक्रोश के आगे डर जाता है और सबसे माफी मांगता है। छाहुर राजकुमारी को ब्याह कर वापस लौटता है और सभी गांव वाले अत्याचारी राजा से निजात पाते हैं : -

विभिन्न लोकवाद्यों के साथ, रंगबिरंगी वेषभूशा में कलाकर मंच पर आते हैं और वंदना गाते हैं।

वंदनानमो नमो हे सारदे नमो नमो जगदंब।
निज भक्तन के काज में करना नहीं बिलंब।।
कर जोर करूं मइया बिनय सुनिले, कर जोर करूं।
मोरे बानी मां बेदन के सार भरि दे, कर जोर करूं।।
मोरे सपनन का माई साकार करि दे, कर जोर करूं।
मोरे जीबन के सुखमय डगर करि दे, कर जोर करूं।।
मोरे छाहुर के दरसन अमर करि दे, कर जोर करूं।
कर जोर करूं मैया बिनय सुनिले, कर जोर करूं।।

वंदना समाप्त होती है। नगरिया की तेज ताल पर जानवरों का रूप धरे

कलाकार नृत्य करते हैं। इन जानवरो के बीच छाहुर भी नृत्य कर रहा है। नृत्य थमता है तो छाहुर गा उठता है।

गायन **बाम्हन लड़िका पोथी बिचारै औ बनिया करै बइपार।**

अहिरा के घर मां छाहुर जनमा गोरू तकत दिनरात।।

समूह **छाहुर गोरू चराय, अहिरा के घर मां है जनमा..**

गायन **भूरी औ भामर भंइसी हैं ओखे, गइया है धउरी कलोर।**

परै झुरखुली अबै रोज वा, दूध दुहै उचि भोर।।

समूह **छाहुर गइया लगाय, अहिरा के घर मां है जनमा..**

गायन **गइया चराबै ओगरिन डोगरी, भंइसी चराबै ज्वान।**

बरा अखेवट पेड़े तरे नित, छेड़ै बिरहा के तान।।

समूह **छेड़ै बिरहा के तान, अहिरा के घर मां है जनमा..**

नेपथ्यस्वर **अरे छहुरा रे!! हरबी घरे आउ, तोक दिदी बोलाबथी रे!!**

छाहुर लागथै, रोटी के बखत होइगै, तबहिनै दिदी बोलाइसी। जा तूं पंचे निकहे से चरे! अउ, एक बाति है! केहू के खेते मां न जए, नहीं त बहुतै मार परी, बताये देइथे हां!

मवेशी सिर हिलाते हुए नेपथ्य में जाते हैं। छाहुर दूसरी ओर निकल जाता है। अगले दृश्य में छाहुर अपने घर आता है। मां आंगन लीप रही है।

छाहुर अरे दिदी जमके भूंख लगी है। ले आउ हरबी रोटी दे, फेर जई गोरुअन का देखी, कहौं केहू के खेते मां न चले जांय!

मां लय अइथे रे!

छाहुर अरे हरबी कर! का लीपै-पोतै मां लगी है।

मां अरे कल कर रे। तैं त भंड़बा हाथे से गिराबै लगते हये!

मां अंदर जाती है। छाहुर गाने में मस्त होता है। सैनिक आते हैं। छाहुर उन्हें नहीं देखता, अपने ही में मगन है।

सैनिक 1 एंह घरे मां कोउ है का?

मां (अंदर से) देख छहुरा केउ बोलाबत लाग है।

सैनिक 1 अरे हा त बहिरे निकरा!

छाहुर सैनिकों को देखता है।

छाहुर को अहे हो? मूड़े पर गोहार मरते हा!

सैनिक 1 अरे एंही ठे बइठ है,बोलत नहीं आय। घंटन से हम पंचे चिल्लइत लाघे!

छाहुर उनकी वेशभूषा को देखकर अपनी हंसी रोक नहीं पाता। अंदर तरफ जाकर बोलता है।

छाहुर अरे दिदी! देख त बहिरे आयके! दुइ ठे नमूना आये हैं!

सैनिक 1 ए!! एंह कइत आउ!

छाहुर हां। का आय!

सैनिक 1 ए! छाती अंदर कर!... अउर अंदर!... अउर अंदर!! हां त सुन! छाहुर तहिन अहे?

छाहुर हां, हमिन अहेन। त?

सैनिक 1 अरे! छाती अंदर! सौंह खडे हो! अब सुन! हम पंचे अहेन,

राजा के करिंदा। अउ, रउरे के हुकुम है, कि दरबार मां तुरत हाजिर हो!!!

सैनिक मुड़ते हैं, कि तभी छाहुर उन्हें बुलाता है।

छाहुर ए!! सुना-सुना!! दरबार मां हाजिर होऊं? काहे हाजिर होऊं?

सैनिक 2 तोसे मतलब?

छाहुर अरे बाह! हमका बोलाइन हीं, अउ, हमिन से का मतलब?

सैनिक 1 त हमसे का मतलब?

छाहुर का कहे?

सैनिक 1 हम पंचे रउरे के मुलाजिम अहेन। हम पंचे तोरे अस छोट मनइन से जादा बात नहीं करित।

सैनिक 2 अउ, हमका इहै भर काम है का? कि रउरे तोका काहे का बलाइन हीं, हम इहै बताबत फिरी।

सैनिक 1 सगला दीवाने आम, सगला दीवाने खास, अउ सगला रनिवासा हमिन दूनौ जन देखिथे। समझे! जब दरबार मां पहुंचबे त खुदै जान जाबे! चला हो!

सैनिक 2 चला हो!

दोनों जाते हैं। छाहुर परेशान होता है।

नेपथ्य गायन राजा के संदेस का सुनिके,दरकि उठी मन के धरती!

कर-लगान सब दइके निपटेन, अब जाने धौं का झपटी!!

मां आती है।

मां छहुरा! रउरे तोका काहे बोलाइन हीं रे?

छाहुर अरे दिदी! राउर बोलाइस ही त कुछ लेइन खीतिरै बोलाये होई। दय त ऊ कुछु सकत नहीं।

मां अरे बेटबा, भगमान के किरपा से हमरे लघे सब कुछ है, हमका कुछु न चाही।

छाहुर पै ओके लगे त कुछु नहीं आय दिदी! राजा होत कीन आन के घर हड़पि लेथै। हजार बीघौ जाघा ओका कम परथी त कउनौ न कउनौ बहाने आन के जमीन-जाघा लय लेथै।

मां अरे बेटबा, धीमे बोल!..राउर के मनई जाघा-जाघा फइले हां!

छाहुर अरे काहे का धीमे बोली?अउ कब तक धीमे बोली? बोल दिदी, अनियाऔ सहै केर एक ठे हदि होथी। इया कहां केर निआय आय कि सलगी परजा आपन लगता गइया अउर भंइसी गढ़ी पहुंचाय देंय, अउर जब छुटाय जांय त खबाबै खीतिर लौटाय लय आंमैं! .. मजा मारां गाजी मियां धचका खांय मुजाबर!

मां बेटबा! हमका लागथै राजा तोका एंही से बोलाइस ही जउन तैं आपन भुअरी भंइसी राजा के गढ़ी मां नहीं पहुंचबाये तै। हम कहत रहि गयेन तोका कि राजा के हुकुमउदूली ना कर पै, तैं नहीं माने त नहिन माने!

छाहुर अरे काहे का दय देई हम? हमार भंइस आय, कि राउर के भंइस आय?

मां हे भगमान, अब न जाने का होई?

छाहुर मांर दिदी! तैं थोरौ का सोचि न कर! राजा हमका बोलाइस ही

त का भा? हम राजा के सौंहें जाब। सुन दिदी! (गाता है)

अरे माल खजाना ना मैं लूटेंउ, औ लूटेंउ न हाट बजार।

जाय के रउरे, से मैं पूछेउं, मोहे काहे लीन्हें बोलाय।।

गायकसमूहकाहे लीन्हें बोलाय, जाये के रउरे से पूछेउं ..

(आवृत्तियां)

मां और छाहुर अलग-अलग विंग्स में जाते हैं: राजा एक गरीब किसान को कोड़े मारता हुआ प्रवेश करता है। साथ में दीवान भी है।

राजा बोल! कब देइहे लगान! लगान खीतिर रुपिया नहीं आय! बिटिया का बिआहै खीतिर है? बोल! अब त देइहे?

किसान हजूर! मरि जाब हम! मारी न हजूर! गलती होइगै मालिक!

राजा गलती होइगै? त ले सजौ ले? ले!! कितना लगान बाकी है हो देमान?

राजा दीवान की ओर मुड़कर बात करने लगता है।

दीवान चार रुपिया बारा आना!

राजा चार रुपिया बारा आना !! अउ, बिआज केतना भा?

दीवान बिआज मान लेई रउरे कि भा.. बारा रुपिया पंद्रा आना।

राजा मूल चार रुपिया बारा आना, बिआज बारा रुपिया पंद्रा आना!! कुल भा सतरा रुपिया ग्यारा आना! एकर इथा जुर्रत! एतना लगान बाकी है, अउ सार .....

मारने के लिए मुड़ता है कि देखता है कि किसान भाग चुका है।

राजा कहां गा?

दीवान लागथै भागिगा रउरे!

राजा एकर सगरी जमीन हड़पिले, इया जिंदगी भर न दइ पाई।

सैनिक 1 छाहुर को लेकर आता है।

सैनिक 1 एंही ठे ठाढ़ रह! रउरे जब बोलइहीं तब भितरे जए! समझे!

छाहुर अरे त चले जाब, डेरइत थोड़ौ हन!

राजा लागथै केउ अउर आबा?

सैनिक 1 राउर के जुहार! डेउढ़ी पर छाहुर ठाढ़ा है!

राजा कउन छाहुर?

दीवान उहै छाहुर रउरे,जउन आपन लगता भंइसी गढ़ी मां नहीं भेजबाइस रहा!

राजा अच्छा-अच्छा, उआ चोंघटबा!

दीवान बाह-बाह!

राजा उआ, खंइतड़बा!!

दीवान बाह-बाह!

राजा जा! छाहुर का दरबार मां हाजिर करा!

सैनिक 1 राउर के हुकुम।

दीवान बाह बाह!

द्वारपाल छाहुर के पास जाता है।

सैनिक 1 सोचत का लाघे। जा भितरे। अब मजा अई ददुअऊ!.

छाहुर त फेर चला तुहूं! मजा देखै!

सैनिक 1 हुंह!

सैनिक 1 बाहर जाता है और छाहुर अंदर। दीवान छाहुर को झुकने के लिए इशारे से कहता है। छाहुर नहीं समझता। वह साष्टांग के लिए इशारा करता है। छाहुर लेट जाता है। राजा की निगाह उस पर जाती है।

राजा ई का करत लाघै?

दीवान मूरख है रउरे। सहूरै नहीं कि राजा के आगे कइसन गोड़ गिरै का परत है।

राजा ए उठ!! (छाहुर उठता है।) त इया आय छाहुर! हां, त बोल छाहुर,.. तोका का कहय का है?

छाहुर पहिले हम कही?

राजा हां।

छाहुर त सुन!

दोनों अपनी-अपनी स्थितियां बदलते हैं। (गाता है)

सामन समनी धौं ना पाये, धौं पाये न घिउ के भेंट।

कउन जरब तोंही परिगै अइसन,छहुरा लीन्हें बोलाय।।

गायकसमूहकाहे लीन्हे बोलाय, रउरे तूं हमका बताबा..

(आवृत्तियां)

दीवान बाह बाह! रउरे! हुकुम होय त एखर मतबलौ समझाबा जाय।

राजा हुकुम है।

दीवान छाहुर पूछि रहा है रउरे, कि सामन महीना मां दीन जाय वाली भेंट 'समनी' त हम पठबाय दीन रहा..

राजा हौ।

दीवान एक मटकी घिउ के भेंटौ पठबाय दीन रहा।

राजा हौ।

दीवान अब अइसन कौन तोंहका जरब परिगा कि तूं हमका बलबाये?

राजा मतलब कि अब एखर जबाबौ दीन जाय?

दीवान जबाब नहीं हजूर, हुकुम .. हुकुम! राजा हुकुम देथां!

राजा त मतलब कि एखर हुकुम दीन जाय।

दीवान तौ रउरे!

राजा हां, त एखर हुकुम अब देइथे हम।

दीवान बाह बाह! देई हुजूर।

राजा त सुन रे छाहुर! (गाता है)

भादौं मां भंइसी बियानी रे छहुरा, पै छूट थने के दूध।
लगता भंइस पठौते ज आपन, पियत बछेड़बा रे दूध।।
गायकसमूहबछेड़बन के नीता, लगता तूं भंइसी पठाबा..

(आवृत्तियां)

दीवान बाह बाह! रउरे के हुकुम है कि गढ़ी के भंइसी भादौं मां बियानी रहा। अब ऊ सगली भंइसी छुटाय गईं हां। एसे छाहुर तैं, आपन लगता भंइस तुरतै गढ़ी मां पठाउ, जउने से गढ़ी के बछेड़बन का दूध पियै का होइ जाय। समझे!

छाहुर अब हमूं कुछु कहै चाहिथे।

दीवान बाह-बाह! रउरे, छहुरबौ कुछु कहै चाहथै।

राजा अच्छा! त कहै पुन!

दीवान बाह बाह!

छाहुर (गाता है)

भंइस दूध भंइसांइध महकै, गाय दूध पनियार।

दूध पियाबा छेरी कि गाड़र, घोड़ होंय मनियार।।

गायकसमूहघोड़ होंयहीं मनियार, छेरी के दूध पियाबा...

(आवृत्तियां)

दीवान बाह बाह!

राजा ई का फरियाद करिस ही?

दीवान एखर फरियाद फिजूल है रउरे।

राजा फेरौ, हम सुना चाहिथे।

दीवान बाह-बाह! राजा होय त अइसन! हजूर, छाहुर के फरियाद इया आय कि एखरे भंइसिन के दूध भंइसांइध महकै लाग है, माने दूधे मां भंइसि के महिकि आइ गै ही, अउ गइया के दूध पनियार होइ चुका है, माने पातर होइगा है, त एखर सल्लाह है हजूर..

राजा हमका सल्लाह??

दीवान मतलब इया कि एखर बिनती है कि, हजूर अपने बछेड़बन का छेरी के या कि गाड़र के दूध पिआमैं। छेरी-गाड़र के दूध पी के बछेड़बे बड्डे मनियार घोड़ होइहीं। ई कहत है।

राजा हुंह! बांड़ी बित्तुइया, बाघे से नजर्रा मारै! छाहुर बेटबा, हम एंह राजि के राजा अहेन! का अहेन हो देमान?

दीवान राजा रउरे!!

राजा परजा कउन मोट-पातर चाउर खाथी, हम सगल जानिथे अउर सगल देखिथे। सुन -

दीवान बाह बाह!

राजा (गाता है)

भुअरी औ भामर भंइसी है तोरे, बामि आंखि हबै फूट।

वहै भंइसि हर्मी दै दे रे छाहुर, पियै बछेड़ा रे दूध।।

गायकसमूहभंइसि हरबी पठाउ, पीयैं रे दूध बछेड़ा..

(आवृत्तियां)

दीवान बाह बाह! बाह बाह! धन्य है! अइसन राजा न पहिले कबौ भें हां अउ न आगे कबौ होइहीं! राजि के एक-एक तिनका केर खबर राखथां। त सुन छाहुर, राजा जी के हुकुम है कि भुअरी औ भामर भंइसि जउन तोरे लघे है, अरे उहै जउने के बाईं आंखी फूटि हय.. बाहबा..! धन्य हो! का अव्वल सुधि है राजाजी के! राजि भरे के एक एक भंइसि के, हर भंइसि के एक-एक आंखी के पूर-पूर खैरियत राजाजी जानथें।

राजा आगेउ कहा!

दीवान हुकुम। त छाहुर, उहै आपन भुअरी औ भामर भैंसी गढ़ी मां पहुंचाय दे, जउने से बछेड़बन का दूध पियै का होइ जाय! समझे?

छाहुर त फेर हमरौ जबाब सुनि ले!

दीवान बाह बाह!

राजा इया फेर सुनाई?

दीवान कहत त है हजूर..

राजा त फेर सुनाबै

दीवान बाह बाह!

छाहुर (गाता है)

भुअरी औ भामर भंइसी है मोरे, बाम आंखि हबै फूट।

वा भंइसी न देइहौं मैं राजा, छूटी मुंहें के दूध।।

गायकसमूह छूटी मुंहे के दूध, वा भंइसी ना देइहौं राजा..'

(आवृत्तियां)

दीवान बगावत!

राजा कहां!!

दीवान एंहिन ठे।

राजा उआ कइसे?

दीवान रउरे, छाहुर कहि रहा है कि भुअरी औ भामर भैंसि ओके लघे है!

राजा काहे जनतिन नहीं अहेन।ओंही मां त एक घंटा से माथापच्ची कइ रहेन है...

दीवान पै देई न!

राजा उआ काहे??

दीवान एसे, कि छहुरा के मुंहे के दूध छूटि जई!

राजा हं हं हं.. बहुत गदेलई है। न हो देमान!

दीवान हुकुम रउरे!

राजा कहत है कि ओके मुंहे के दूध छूटि जई।न हो देमान!

दीवान हुकुम रउरे।

राजा लागत है निछक्क उजबकै है!

दीवान बाह बाह!

राजा अरे बकलेल!

दीवान बाह बाह!

राजा(छाहुर से) हम तोसे भीखि नहीं मांगित लाग हन कि दइ दे ..दइ दे! अउ न दइया मांगित लाग हन कि लय आउ ... लय आउ! अरे चोंघट, तैं' आपन अउकात औ राजा के जोर, दूनौ का नहीं जनते! राजा के फरमान न मानै के सजा जनते हए?

दीवान बताबै का परी रउरे!

राजा बीच चौगड्डा मां, गरे मां रसरी के फंदा डारि के लटकाय दीन जई!

दीवान बाह बाह!

राजा देखत हए! एक ठे भंइसी मांगित लाग हन त चिंपोग मना करत है! अरे सगल मवेसी हंकबाय लेब त का कय लेई? (सब हंसते हैं) ए पहरुऔ!

दोनों सैनिक हुकुम रउरे!!

राजा छहुरबा के गइया-भैंसिन का हांक लय आबा! देखी त केतना सपूत है!

राजा दीवान के साथ जाता है, हतप्रभ छाहुर विंग को जाता है। गाय-भैंस के मुखौटे लगाये कलाकार नृत्यात्मक ढंग से कूदते-फांदते आते हैं। प्रसन्नचित्त होने का आभास देते हैं। मां भूसा-चारा देते हुये गीत गाती है।

मां (गाती है। हिंदुली)

अपने महलिया से माया गोहरामैं, उठा हो कान्हा ना।

गउआ ढिलन की बेरिया है आई, उठा हो कान्हा ना।

बायें हाथ लिहे बांसे के बंसुरिया, दहिने हाथे ना।

कान्हा गउआ डहरामै दहिन हाथे ना..

दोनों सैनिक आते हैं।

सैनिक 1 ए रे डोकरिया! निगद के खबाय-पिआय दिहे मवेसिन का। इनखा बहुत दूरी जाय का है।

मां को आय रे? औ तोका काहे फिकिर हय हमरे मवेसिन केर? बड़ा हेतुआ आबा है! अउ इनखा जाय का कहां है? खूंटै से त

बांधा रहै का है!

सैनिक 2 हम पंचे राजा के करिंदा अहेन, पहिल बात।

सैनिक 1 दूसर बात ई कि, अब ई मवेसी तोर नहीं, राजा के अहीं।

सैनिक 2 औ तीसर बात ई, कि राजा के गढ़ी हिंयां से तीन कोस दूर है! आगे बोल?

मां का! तूं हमार मवेसी छोड़ाबै आये हय? नहीं-नहीं! अइसन जुलुम न करा! एई त हमार जीवन-अधार आहीं। राजा केर करिंदा अहे त बिराजा, कहा त बिछौना लै अई। अबै हमार बेटबा छाहुर घरे मां नहीं आय, नहीं त तोंहार पंचेन के खूब सेवा करत।

दोनों सैनिक हंसते हैं।

सुना दादू हरे, रउरे के अज्ञा पर हमका ऐतराज नहीं आय। तूं लय जा हमरे मवेसिन का, पै हमरे एइन भर त हैं। एउ चले जइहीं त दूध त छूटिन जई, रोटिउ के लाला परि जइहीं बेटबा!

सैनिक 1 अरे डोकरिया! तैं समझते नहीं आय! अरे तोर त मवेसी बड्डे भागिमानी हमा।

सैनिक 2 गढ़ी के खूंटा पाबत लाग हां।

सैनिक 1 भला सोच! साही महिल के साही खूंटा मां तोर मवेसी बंधइहीं।

सैनिक 2 साही साही बूसा, साही खरी-चूनी, अउ साही पसु आहार खइहीं।

सैनिक 1 अउ एंह मेर से साही माल छानि के पुट्ट होइहीं..

सैनिक 2 अउ पुट्ट होइके बड्डे मनियार घोड़ होइहीं..

सैनिक 1 अउ मनियार घोड़ होइके साही लड़ाई मां राजा का बिजई करिहीं..। अरे बुढ़ीबा, तैं त बड़ी भागमानिन हए, जउन रउरे के काम आय रहे हये!

मां नहीं-नहीं! हमका इया भागि न चाही... हमरे गोरुअन का न लै जा! हम आपन गोरू न लय ज़ाय देब!

सैनिक 2 अरे! राजा के काम मां अड़ंगा डालथे!

सैनिक 1 चल भाग हियां से!

सैनिक 2 अतनी देर से समुझाय रहे हन त कुछु असरै नहीं होय!

मां हम कहिथे हमरे मवेसिन का न लै जा! हम न लै जाय देब! छांड़ि दे इनका!

सैनिक 2 डोकरिया हटि जा! ढोंसा लगि जई त मरि जइहे!

सैनिक 1 अबै तोर जिउ लेय केर अज्ञा नहीं भै आय।

सैनिक 2 पै अगिर ना नूकुर कीन्हें, त उहौ होय मां बेरी न लागी! चल हट!

सैनिक मां का धक्का देते हैं, और मवेशियों को ले जाते हैं। मां रोती है। दो पलों बाद छाहुर आता है।

छाहुर दिदी! ..दिदी का होइगा?

मां छाहुर! मोरे बेटबा! राजा के करिंदा तोर मवेसी लयगें बेटबा!

छाहुर का! मवेसी लैगें? तैं बरजे नहीं?

मां हम बहुत रोकेन बेटबा... पै ऊं एकौ नहीं मानिन! मोर बप्पा मोर दइउ! अइसन जुलुम नहीं दिखेन!!

छाहुर दिदी, हमार गोरू चलेगें! हब हमरे लघे बचबै का भा!

(गाता है)

बिन कोल्हुआ के तेली रहै न, बिन चकबा के कोंहार।

गायभंइस बिन अहिरा रहै त, ओखे जिये का धिक्कार।।

गायक समूह गइया भंइसी बिना, अहिरा के जीयब अकारथ।

(आवृत्तियां)

छाहुर अरे धिक्कार है अइसे जिंदगानी पर! आखिर का अधिकार है राउर का हमरे मवेसिन का लय जाय के? नहीं! हमरे गोरुअन का ऊ नहीं लय जाय सकै! हम अबहिनै जाय के उनका लै अइथे! पै एक बात है। राजा, राजा होत है। सौंहे-सौंहे टकराब त हुसियारी न कहई! भेस बलदिके पहुंचिथे गढ़ी के दुआरे!...दिदी! तैं निंचिउ फिकिर न करे, हम कुछ न कुछ करिथे...

छाहुर अंदर जाता है।

मां अरे! अब ई का करी? हे भगमान! केउ त समझाबा एखा! ई त केहू के कहेन मां नहीं आय! केउ त बरजा एखा! केसे कही कि एका रोकि लेय। एक ठे संकट अउबै भा, अब न जानी का होइ जई! अरे छाहुर हम तोका कहौं न जाय देब!

छाहुर बाहर आता है। अब उसके गले में कंबल है, बंडी बदली हुई है। हाथ में लाठी है।

मां छहुरा, कहां जाथे। हम पूछिथे कहां तैं जाथे?

छाहुर राजा के गढ़ी।

मां नहीं। हम तोका हुंआ न जाय देब। खबरदार ज हुंआ गए! हुंआ जाबे, अउ कउनौ उल्टा-सुल्टा काम करबे, अउ सजा पउबे।

छाहुर बिसुआस मान दिदी, हम कउनौ उल्टा-सुल्टा क़ाम न करब। हम अब सीधै काम करब।

तेजी से जाता है। मां भी चिंतित अवस्था में जाती है।

नेपथ्यगीत **भेस बदलिके छहुरा चला रे, औ जमीं न लागै रे पांव।**

जाय के रउरे, देखै गढ़ी का, बइठा कुआं के पाट।।

छाहुर का बदले वेश में प्रवेश। इस समय वह चरवाहे के वेश में है।

छाहुर इया ठीक है। चरबाह बनिके हम रउरे के गढ़ी के ठीक दुआरे पहुंचि चुकेन है। इया राउर के कुंआ आय। एहीं के पाट पर बइठिथे औ कुछु जुगुत सोचिथे।

राजकुमारी बबुली घड़ा लिये हुये पानी भरने आती है।

इया को आय? लागथै राजकुमारी आय, औ एंही कुंआ मां पानी भरै आय रही है! अब का करी? .. करै का, का है! एंही पाट पर बइठे रहिथे। जउन होई दीख जई।

राजकुमारी बबुली पास आती है। कुंए के पाट पर बैठे एक अजनबी को देखकर गुस्सा करती है।

बबुली ए!! ..... ए!! सुनात नहीं आय का? फुरिन नहीं सुनाय कि ओठर करे हये?

छाहुर ओठर!

बबुली (गाती है)

अरे मूड़ औंधाये कउन बइठ है, सुनिले बटोहिया रे बाति।
कहां से आये कउन जाति तोर, छोड़ कुंआ के पाट।।
गायक मंडलीछोड़ कुंआ के पाट, कहां से आये बटोहिया..

(आवृत्तियां)

छाहुर (गाता है)

मैं तो आहेउं तोंहरेन गांव के, पनही बनाऊं बूटेदार।
आज नगर मां पहुंच्यौं तोंहरे, बेचौं बीच बजार।।
गायक मंडलीबेचौं बीच बजार, नगरी मां पहुंचा बटोहिया..

(आवृत्तियां)

आवेशपूर्ण नृत्य में बबुली छाहुर के हाथ-पांव को ध्यान से देखती है।

बबुली — अरे दूध के पोसी अंगुरी है तोरी, औ घिउ के पोसी है देह।
तेल के पोसी लाठी लिहे है, काहे तैं लबरी बताय।।
गायक मंडलीकाहे लबरी बताय, लबरा है तैं त बटोहिया..

(आवृत्तियां)

छाहुर — अरे बिसरि गयौं मैं जात का दरजी, चोली बनाऊं बूटेदार।
आज नगर मां आयौं तोंहरे औ बेचौं बीच बजार।।
गायक मंडली बेचौं बीच बजार, नगरी मां पहुंचा बटोहिया..

(आवृत्तियां)

बबुली — ठाढ़े रे बोलै बबुली कुमारी, मान बटोहिया रे बाति।

तैं त आहे जात के अहिरा, बदन छिपाये रे जात।।

गायक मंडलीकइसन पकड़ेन रे जात, बबुली न खाई है धोखा...

(आवृत्तियां)

छाहुर बाहबा बाहबा! दाद देइथे तोंहरे बुद्धी के! सही कहे! हम त अहेन जात के अहीर। पै एक ठे बिनती है..

बबुली बिनती?

छाहुर हमका अपने हिंया बरेदी रखि ले।

बबुली बरेदी? हूं .. हये त रिस्ट पुस्ट, अहिरौ अहे, पै..

छाहुर पै?

बबुली अपने हिंया लगा है बदना बरेदी। तोंहका कसके रखि लेई?

छाहुर अरे भगाबा बदना बरेदी का! हमार नाम है चंदना! चंदना बरेदी का रखि ले!

बबुली तोंहार नाम चंदना है?

छाहुर अउर का! फुरिन हमार नाम चंदना है!

बबुली तब त तूं लगि गये माना।

छाहुर उआ कइसे?

बबुली हमीं तोंहार नाउ बहुत नीक लाग।

छाहुर अच्छा? सिरिफ नाउ?

बबुली लजाकर भाग जाती है।

गायक मंडली देखा बबुली लजान, तीर निसाने पे लागा... (आवृत्तियां)

छाहुर भी जाता है। मंच पर नाचते हुये राजा-रानी का प्रवेश। बबुली आती है।

बबुली दाऊ दाऊ!

राजा बोल मोर बिटोल! का चाही? .. अइसन धौड़त- धौड़त काहे आये? बोल का चाही? छन मां हाजिर करिथे।

बबुली दाऊ, बदना बरेदी का निकारि दे!

राजा निकारि दीन। जउन हमार बिटिया चाही उहै न करब।

बबुली अउ चंदना बरेदी का रखि ले!

राजा चंदना बरेदी! चल रखि लीन। जउन हमार बिटिया चाही उहै न करब।

रानी पै सुनु बिटिया! नबा बरेदी आय, नजर जरूर राखे! कहौं अइसन न होय कि गो-रस चोराय लेय!

बबुली गो-रस!!

मुस्कुराती हुई भाग जाती है।

गायक मंडली देखा बबुली लजान, तीर निसाने पे लागा...(आवृत्तियां)

राजा रानी भी नाचते हुये जाते हैं। छाहुर के नेतृत्व में जानवरों का रूप धरे नर्तक दल आता है। बबुली भी आती है। नर्तक धीमी गति पर आते हैं। छाहुर और बबुली पास आते हैं।

गायक मंडली छाहुर औ बबुली के होत मिलनबा गोहूं-चना के मेड़।

बरा अखेबट पेड़े तरी हो चल करी पुतरियन काज।।

उमड़-घुमड़ जल बरसन लागा, आंधी चली अमाझोर।

भींजि के बबुली लथपथ होइगै,भींजिगा लहर पटोर।।

पानी बरसने का प्रभाव होते ही जानवरों का रूप धरे कलाकार भाग जाते हैं।
बबुली और छाहुर मंच पर।

बबुली (गाती है)

ठाढ़ै मैं बोलूं बबुली कुमारी सुनि ले रे चंदना बाति।

जाड़ के मारे जान जाथी, तनी लेते कमरिया ओढ़ाय।।

गायक समूह जान जाड़े से जाय, लेते ओढ़ाय कमरिया...

(आवृत्तियां)

छाहुरअरे का कहते हा? हम तोंहका आपन कमरिया ओढ़ाई?

ओढ़े कमरिया छाहुर मैं बोलूं, सुना हो बबुली बाति।

कमरा तो आय अहीर के जेमा, आबै दूध के बास।।

गायक समूह आबै दूध के बास, कैसे ओढ़ाबैं कमरिया..

(आवृत्तियां)

बबुलीथर-थर कांपत बबुली मैं बोलूं, दांत किटाकिट होय।

कमरी के छोर ओढ़ाय ले रे चंदना, करज तरे होइ जाब।।

गायक समूह मोर अरजी सुना हो, अब त ओढ़ाय ले कमरिया..

(आवृत्तियां)

छाहुर कंबल ओढ़ाता है। दोनों कंबल के अंदर हैं। बिजली चमकती है।

बांसुरी की मधुर आवाज सुनाई देती है। बबुली लजाती हुई कंबल से निकलती है।

बबुली यहै बरखा के ओट रे चंदना, चला निकरि चली तजि राज।
जानै ज पइहैं दाऊ हमरे, गरे हललिहीं रे साल।।

छाहुर मारि न डारौं बाप का तोंहरे औ सौपौं बीच दुआर।
पांजा ठोंक अखाड़े मांहीं, उचटि गढ़ी चढ़ि जाब ।।

बबुली हेंह! जानिथे तोंहार बहदुरी!

छाहुर बाति मानि ले घर जा तूं बबुली, कीन्ह मैं कौल करार।
एक पाख के बीतत बीतत, ब्याह तोंही लय जाब ।।

गायकसमूह तोंही ब्याह लै जाब, कीन्हेंन मैं कौल करार.

(आवृत्तियां)

नृत्य समाप्त कर दोनों विंग में जाते हैं। संगीत बदलता है।
सैनिक 1 आता है।

सैनिक 1 रानी हजूर के जुहार! रउरे पधारि रहे हां!

पहरुआ जाता है। रानी आती है। दूसरी ओर से राजा चिंतित अवस्था में आता है।

रानी रउरे! काहे सोचान हन? का बाति होइगै?

राजा स्यानी रे बिटिया बबुली अब होइगै, पै भंइस दुहामैं जाय।
कौनौ छलिया छल कीन्हिस के, डसिस कालिया नाग।।

रानी रोने लगती है।

का बाति होइगै रानीजू! काहे रोमैं लागीं?

रानी कउनौ न छलिया छल कीन्हिस, ना डसिस कालिया नाग।
बिटिया त फंसिगै चंदना अहीर से, भई कुमति की रात।।

राजा क्रोधित होता है।

राजा मार न डारौं चंदना अहीर का, औ सौंपौं बीच दुआर।
सीध जान बिटिया का हमरे, बांधिसि प्रीति के डोर।।

छन-छन पायल करती राजकुमारी आती है।

राजा बबुली! मोर बिटोल! रात भर कहां रहे? बोल मोर बिटोल?

रानी बताउ न बिटिया? कहौं तैं कउनौ ऊंच-नीच त नहीं कय आये? अरे कुलच्छनी! बतौते काहे नहीं? कहौं तैं राति भर ओंह चंदना अहीर के संघे त नहीं रहे?

बबुली झिमिक झिमिक जल बरखा रे दाऊ औ भींजिगा लहरपटोर।

राजा हां-हां, फेर?

बबुली सूझ परी जब गइल न मोहीं, कोढ़ें बितायेन राति।।

राजा अच्छा! कोढ़ें मां रहे!

गायकसमूह कोढ़ें बितायेन राति बबुली झूठ ना बोला..(आवृत्तियां)

राजा-रानी संतोष की सांस लेते हैं, नृत्य करते हुये चले जाते हैं। मंच पर अल्प प्रकाश। छाहुर अपने मवेशियों के बंधन खोलता है और उन्हें ले जाता है।

नेपथ्य गायन रानी औ बबुली केर गढ़ी मां, होत रहै जब बाति।

आपन भंइसी गाय ढीलिके, चुपके से छाहुर भाग।।

तेज नगरिया बजती है। चारों तरफ अफरा तफरी मचती है।

समूह स्वरगोरू लै के भगान, छाहुर के हिम्मत त देखा ...

(आवृत्तियां)

राजा दो सैनिकों के साथ छाहुर की खोज कर रहा है।

राजा कहां गा चंदना? कहां गा चंदना? कहां गा चंदना? तूं पंचे लउआ अस मुंह काहे लटकाये हा?

सैनिक 2 उआ सरकिगा हजूर।

राजा आगबबूला होता है।

राजा का कहे? चंदना सरकिगा? हमार मवेसी लयके सरकिगा? .. कय ठे लइगा?

सैनिक 1 लय त दुइन ठे गा है हजूर!

राजा दुइ ठे लइगा? कसके लइगा? का गढ़ी के फटका खुले रहें?

दीवान होइन नहीं सकै हजूर।

राजा त का पहरुए सोय गें रहें?

दीवान कबहूं नहीं होइ सकै।

राजा त का कउनौ नसा-पत्ती करे रहें?

दीवान इया होइ सकथै।

राजा एं!

सैनिक 1 नहीं हजूर, नसा-पत्ती कुछु नहीं करे रहेन मालिक।

सैनिक 2 भा का, कि हम पंचे दुइ बजे राति तक त जगतै रहेन। ओखरे बादि भा का कि, एक ठे भैंसि बेर-बेर चिल्लात रहै.. आं ....! **(भैंस की आवाज निकालता है।)**

सैनिक 1 आं ...!

सैनिक 2 आं ..!

सैनिक 1 आं ..!

राजा अरे आगेउ बोला!

सैनिक 2 त हम गएन देखै कि काहे चिल्लाथी।

सैनिक 1 कहौं उठी-पुठी त नहीं आय।

सैनिक 2 त भा का कि हजूर हम दिखेन कि एक ठे मनई ठाढ़ रहै। अंधियारे मां।

सैनिक 1 ऊंच। पोरसा भर।

सैनिक 2 हम पंचे झट्टै समुझि गएन कि राम जिआमन के परेत आय।

राजा इया को आय?

दीवान राम जिआमन मुंसी रहें न रउरे, मरे के बाद उनखर आतिमा भटकत ही।

राजा अच्छा..!

सैनिक 2 इहै समुझिके हम फेर बहुरि आएन। हम का जानी कि उआ चंदनमा आय ठढ़ा रहा,

सैनिक 1 बांसे मां ओन्ना टांगिके।

राजा औ फेर ऊ आपन गोरू ढीलि लैगा?

सैनिक 1 तौ मालिक।

सैनिक 2 ओका त समुझबै नहीं भएन न,

सैनिक 1 हम त इया मानेन कि रामजियामन अहीं।

राजा अरे त रामजियामन का गोरू लै आबत लै जात हां? अब इहै काम है उनके? अउ तूं पंचे अइसै लै जाय देथा? ...एक-एक के खलरी हम उकेलब। एक-एक के। आज चंदनमा लै गा है। काल्हि सब अइहीं, आपन-आपन गोरू लै जइहीं। राम जिआमन बनिके। जा, हमरे गोरुअन का लै आबा चाहे जहां होंय, नहीं त खैर नहीं आय तोंहार पंचेन के!

ताल-वाद्य से दृश्य परिवर्तन। ताल-वाद्य पर द्रुति गति से राजा जाता है। सैनिकों में तेजी आती है। जानवरों की वेशभूषा में कलाकार छाहुर के साथ मंच पर आते हैं, खुशी में नाचते हैं। नृत्य रुकता है तभी मां आती है। मां जानवरों को दुलार करती है।

नेपथ्यस्वर अरे देखा हो देखा! छहुरबा आपन गोरू लै आबा!!

छाहुर दिदी! ए दिदी!! देख त बहिरे आय के!!

मां छाहुर! मोर बेटबा! तैं आपन मबेसी राजा से छोड़ाय लाये! बड़ा बहादुर है हमार बेटबा! पूर हाल बताउ! राजा के मूड़ त तरे का होइगा होई!

छाहुर अरे बताइथे दिदी। पहिले एनका बांधि त देई।

मां हां हां। अब बताउ छहुरा! हम त पूर किस्सा सुनै खीतिर बेचैन हन रे! तैं कसके लड़े रे राउर के सिपाहिन से? रउरबा के मेछा त तरे का होइगा होई रे!

छाहुर अरे दिदी, सिपाहिन से लड़ै-भिड़ै के जरुरतै नहीं परी! हां।

मां मोर दऊ! ई कइसे रे?

छाहुर अरे दिदी, राति के जब राजा, रानी, दीवान, मंत्री, चौकीदार, पहरेदार सब सोयगें, त चुपारे से जाय के हम आपन मबेसी ढीलि लै आयेन! (हंसता है) सकन्ने जउन भा होय! राउर के मेछा कउने कइत भा, इया देखै खीतिर का हम हुंआं ठाढ़ रहित? हां, रजबा जरूर पछतान होई कि हम कइसे धोखा खाय गयेन! अरे दिदी! गढ़ी से हवा तक बहिरे नहीं निकरि सकै अउ देख, हम आपन मबेसी लय आयेन! औ कितनी त नहीं नौटंकी करेन हम!

मां नौटंकी?

छाहुर हां दिदी, नौटंकी। राजकुमारी का अपने ..परेम-जाल मां फंसायेन! ओंहिन से कहिके, चंदना बरेदी बनिके राजा के बरेदी बनेन। राजा के गोरुआरे मां तैनाती पायेन! फेर का मुस्किल रहा! जउने फिराक मां दिनरात हम पड़े रहेन उआ हम ओका पउतै कय डारेन दिदी!

मां बाह बेटबा बाह! का कहै का तोरे बहदुरी के! तोर पुरखा त आजु तरिगें होइहीं!

छाहुर एं!

मां अरे कलंकी! मारती है।

छाहुर दिदी!

मां जउन राजा दिन दहाड़े जेखर नहीं तेखर गोरू हंकबाय लै जाथै ओसे आपन मबेसी तैं चोराय के बापिस लै आये!.लाज नहीं लाग तोका? काल अपने गांव बालेन का का मुंह देखौबे? इया कहबे कि हम मबेसी चोराय के लै आयेन है?

छाहुर दिदी, हम गलती करेन?

मां हां। बेटबा! हम नहीं चाहित कि तोरे माथे पर चोर होय के कलंक लागै! अगर आपन इया कलंक धोबै चहते हये त जा फेर से गढ़ी मां, औ सबके मबेसिन का छोड़ाय लै आउ!

छाहुर का कहते हये दिदी? सबके मवेसिन का छोड़ाय लै अई? कहां राजा अउ कहां हम?

मां त का भा? तहूं कउनौ राजा से कम हए? उआ राजा आय त का भा? तहूं त हमार राजा बेटबा अहे!

छाहुर अउ कहौं हम मारे गएन त? तैं त बेसहारा होइ जाबे दिदी!

मां तैं हमार फिकिर न कर। एंह कलंक से निकहै है कि हम मरिन जई!

छाहुर त ठीक है दिदी, हम जइथे। सबके मबेसिन का छोंड़ाय के लै अइथे। अउ संघेन राजकुमारिउ से बिआह कइके तोर पतोहू बनाउब!

मां छाहुर!

छाहुर हां दिदी। हमका असीस दे।

नेपथ्यगीत **करिस प्रतिज्ञा माई के सौंहे, लीन्हिस अलख जगाय।**

गांव भरेन का करिस एकष्ठा, चलें गढ़ी डहराय ।।

उत्तेजित ग्रामवासी आते हैं।

नेपथ्यस्वर छाहुर भइया! तूं अकेले गढ़ी न जाबे! हम सब गांव वाले तोंहरे संघे चलब! काहे भइलो?

नेपथ्यसमूह हां-हां। हम सब जन चलब।

सभी जाते हैं। नगरिया की धुन पर राजा रानी इत्यादि नृत्य करते हुये आते हैं।

सैनिक 1 (दूर देखकर) रउरे!

राजा का आय?

सैनिक 1 परजा राजदरसन खीतिर आय रही है!

राजा (नाच में मग्न) आबै दे! ससुरी परजा के अउर कामै का है!

सैनिक 2 (दूर देखकर) अररररर..! रउरे!

राजा अब का आय?

सैनिक 2 पूर मेड़उर उतरान है! अतनी परजा त एक संघेन कबहूं नहीं दीख!

राजा उतराय दे! आजु दसहरा होई!

सैनिक 1 रउरे!

राजा अरे अब का होइगा?

सैनिक 1 सबके हाथे मां लाठी है!

राजा (झटका खाता है) लाठी? अच्छा-अच्छा! हं हं किसानन के हाथे मां लाठी न होई, त का हमरे अस रानी केर आंचर होई! हइ न रानी जिउ!

रानी न बोली करी!

सैनिक 2 रउरे!

राजा खाय त प्रान लिहे! अब का होई गा?

सैनिक 2 परजा त गढ़ी के भितरे घुसी आय रही है!

राजा (फिर झटका खाता है) भितरे घुसी आय रही है! धौं देखी! (दूर देखता है) अरे हां! इनका केउ रोकत काहे नहीं? इनखर आंखी त लाल लाल भई हां। लागथै केहू का मारै खीतिर आय रहे हैं!

रानी मोर दयू! बबुलिया लउटी धौं नहीं?

राजा काहे, कहां गय है?

रानी अड़ारे पर।

राजा अड़ारे पर? अड़ारे पर काहे गय ही?

रानी अरे जबसे उआ चंदनमा चला गा है न तबै से ऊ संझा-सकारे अड़ारे पर जाबा करथी। रउरे नराज न हों तउने से उनखा नहीं बताबा गा।

सैनिक 1 रउरे!

राजा अब का होइगा?

सैनिक 1 भीड़ मां आगे-आगे चंदनमै हय!

राजा कउन चंदनमा?

सैनिक 1 उहै चोरबा! जउन भंइस चोराइसी ही!

राजा ऐं! चंदनमा! जउन आदमी भंइस चोराय सकथै, उआ कुछू चोराय सकथै। ए रानी जिउ! अपना रनिबासे जई, अउ राजकुमारी का अड़ारे से बोलबाई। अरे मटकी न, हरबी करी!

रानी जाती है।

सैनिक 2 बाह-बाह! चंदनमा अइसन लागथै जइसे कउनौ जोद्धा होय! आपन सेना लिहे कइसन सान से चला आय रहा है!

राजा सैनिक की बात सुनता है, दबे-पांव उनके पास जाता है।

राजा बाजू हट! (सैनिक 2 के पास आता है) हां, त कइसन लागथै चंदनमा? जइसे कउनौ जोद्धा आपन सैना लिहे आबत होय?

सैनिक 2 सिर झुकाता है।

राजा हमार दुस्मन तोका जोद्धा लागत लाग है? तैं इहै कहे है न? जा! निकरि जा हियां से! हम तोका बर्खास करिथे! (सैनिक 1 से) ए पहरुआ! लै ले रे! एखर हथियार तैं लै ले!

सैनिक 1, सैनिक 2 से भाला लेकर राजा के पास आता है।

सैनिक 1 राउर! अकेले मां एक ठे बिनती है!

राजा (दूर जाकर) हां सुनाउ!

सैनिक 1 गढ़ी पर एंह बखत संकट आबा है?

राजा हमूं जानिथे। आगे बोल!

सैनिक 1 एका निकारि देब त लड़ी को? अकेले हम?

राजा उसके दुबले शरीर को देखता है।

राजा ऐं! हां हां .. (सैनिक 2 से) अरे सुन-सुन! तोका अबै हम बरखास नहीं करित हन! अबै गढ़ी मां संकट आबा है न! संकट से निपटे के बाद हम तोका बरखास कय देब, भला! अब जा! खूब जिउ लगाय के, पूर मुस्तैदी से चंदनमा का दूनौ जन रोका, नहीं त खलरी उकेल लेब!

नेपथ्य में शोर मचता है।

नेपथ्यस्वर अरे पहिले रउरबा का ढूंढ़ा! पहिले ओका पकड़ा!

राजा ए! रुक-रुक! कहौं नहीं जाय का आय!

सैनिक 1 पै गढ़ी पर संकट...

राजा अरे पहिले हमार संकट देख, गढ़ी के बादि मां दिखे! एहीं रहा दूनौ जन! तैं एंह कइत आउ! अउ दुसरकबा कहां गा? ए! तैं ओंह कइत ठाढ़ का कय रहे है? एंह कइत आउ! दूनौ जन एंही ठे ठाढ़ रहे, निचिंउ सरके न हिंया से!

अपने दोनों ओर एक-एक सैनिक खड़ा करता है।

अब हमरेन लघे रहे। हां, अब देखा! जहां-जहां हम चली, तहां-तहां तूं चला! जहां-जहां हम चली तहां-तहां तूं चला!

राजा इधर-उधर चलकर सैनिकों की परख लेता है कि वे उसीके पास रहते हैं कि नहीं।

लागत है तूं पंचे बहुत डेराय गए हा! तोंहार पंचेन के डेर भगाबै खीतिर एक ठे बेद-पुरान के कहानी सुनाइथे।

दोनों सैनिक सुनाई रउरे!

राजा एक रहें राजा, जइसन कि हम हन।

दोनों सैनिक हां-हां।

राजा अउ उनकर रहें दुइ ठे सिपाही, जइसन कि तूं पंचे।

दोनों सैनिक हां-हां। जइसन हम पंचे।

राजा एक दफा राजा के ऊपर संकट परा..

दोनों सैनिक अच्छा!!

राजा त ऊ दूनौं सिपाही खुद मरिके राजा के परान बचाइन।

दोनों सैनिक एं!!

राजा अउ जनते हा, उनका सरग मिला। उआ देखा! सरग मां कइसन राजि कै रहे हां। (सैनिक ऊपर देखते हैं।) अउ जनते हा, ई बेद-पूरान हम नहीं लिखेन आय, सीधे भगमान खुद अपने हाथे से लिखे हंय। अब मुंह का निहरते हये, एहीं मेर के किस्सा-कहानिन के सुधि करा अउ मुस्तैद रहा। थोड़ौ ढिलाई करे त खलरी उकेल लेब!

सैनिक 1 हौ रउरे।

राजा त सुरू करा!

सैनिक 2 चली पुन!

राजा जहां जहां हम चली, हुआं हुआं तूं चला!

दोनों सैनिक जहां जहां रउरे चलां, हुआं हुआं हम चली!

राजा हां!

राजा और दोनों सिपाही अजीब हरकतें करते है कि तभी अचानक छाहुर का साथियों के साथ प्रवेश। तालवाद्य का प्रभाव।

छाहुर अच्छा! त तैं हिंया कबड्डी खेलते लाग है!

राजा (चीख पड़ता है) ए!! ई को आय? का इहै आय चंदनमा?

दोनों सैनिक हां रउरे। इहै आय चंदनमा!

राजा अरे त देखते का हा? खलरी उकेल ले सारे के!

सैनिक आगे बढ़ते हैं परंतु छाहुर के डर से रुक जाते हैं।

छाहुर केखर-केखर खलरी उकेलबे रे राउर!

राजा (अपने सैनिकों से) एंह कइत आबा। कहाँ जये न! (हिम्मत से) हां, त इया आय चंदनमा! उआ भैंइस- चोर!

छाहुर हां। हमिन आहेंन। त?

छाहुर की मुद्रा देखकर डर जाता है, लेकिन तुरंत संभलकर..

राजा अरे! देखा कइसन छाती ताने ठाढ़ है! एक त हमार सगल भंइसी ढ़ीलि लै गा, ऊपर से छाती देखाबत है! सुन! (गाता है)

अरे छाती ताने बाति करत है, सुनु सारे चंदना बाति।

कोढ़ा के सगली भंइसि रे हमरे काहे भगे डहराय।।

छाहुर अच्छा, त तैं इया पुछते हये कि हम तोरे कोढ़ा के सगली भंइसी काहे लय गयेन! त अब तहूं सुन! (गाता है)

आगू भंइस हंकबाये रे राजा, मैं लय गयउं छोड़ाय।

आय गयउं अब बबुली बियाहै, अंगने मां मड़बा घलाव।।

राजा (आगबबूला) का? तोर ई जुर्रत! राजकुमारी से काज करै के बात करथे? पहरुऔ जा, अउ एखर खलरी उकेल ले!!

सैनिक छाहुर की ओर बढ़ते हैं कि छाहुर उनको रोक देता है। छाहुर आगे आता है और राजा के फेंटे से कोड़ा निकालता है।

छाहुरत इया आय उआ कोड़ा, जउने से न जाने कितनेन के खलरी तैं उकेले होबे!

कोड़ा राजा के सामने फेंक देता है। कई आक्रोशित ग्रामीण आ जाते हैं। सबके हाथ में लाठियां हैं।

ले! ..कोड़ा उठाव! ... उकेल खलरी! केखर-केखर उकेलबे? ...चल हमिन से शुरू कर! हमार खलरी उकेल! चल-चल!

राजा डरते-डरते कोड़ा उठाता है।

चल शुरू होइजा! उकेल हमार खलरी! अउ इनखर खलरी उकेल! अउ इनकर खलरी उकेल! अउ हजार आदमी तोरे गढ़ी के बहिरे ठाढ़ हमां, चल उनकर खलरी उकेल! उठाव, उकेल खलरी! मार जेतना मार सकत होव! हम गांव वाले चिंउ तक न करब! पै फेर, ...हमूं पंचेन से तोका कोड़ा के मार खाय का परी राउर! ...जादा नहीं, बस एक एक कोड़ा! ...सोच राउर, तोर का हालत होई जब हजारन-हजार परजा खैंइच-खैंइच तोका एक-एक कोड़ा मारी! ...तोर त हर वार पछिले से कमजोर होई पर हमार हर कोड़ा जनमन के तोरे अत्याचारन के बदला रही। ओके चोटन का सोच राउर! .. का तैं सहि सकबे!

राजा के हाथ-पांव ढीले पड़ते हैं, और वह कोड़े को फेंक देता है। सैनिक 1 कोड़े को उठा लेता है।

राजा हमका छमा करिदे चंदनमा! बेटबा हमका छमा करिदे!

छाहुर अरे, तोर त करेजा बहुत छोट निकरा रे राउर! एकौ कोड़ा देहें पर परा नहीं अउ अबैहिनै से गोड़न मां लोटै लागे! तोका के छमा करी राउर!..ई करिहीं तोका छमा? जेका तैं घरे से बेदखल कय दिहे रहा! ई करिहीं तोका छमा जेकर तैं जमीन हड़पि लिहे रहा! ई करिहीं तोका छमा जेनका तोर करिंदा लांगड़ कय दिहे रहें!

राजा हम सबसे माफी मांगिथे। सबसे माफी मांगिथे। हमका सब जन माफ कइ देई! हम अपना पंचेन के ऊपर बहुत अन्याय करेन है। हम बचन देइथे कि जेखर जउन हक हम मारे हन सब लौटाय देब! सब लौटाय देब!

रानी दौड़ती हुई आती है। साथ में राजकुमारी भी है।

रानी रउरे! राजकुमारी आय गय! अरे! ई का भा?

छाहुर और राजकुमारी एकदूसरे को देखते हैं।

बबुली चंदना!

छाहुर राजकुमारी! परनाम सासू जी! इया निकहा करेन कि उनका हियां लै आएन! अब एन्हैंन के जरूरत रही है।

छाहुर राजकुमारी के पास आता है।

छाहुर भरी सभा मां हम जानै चाहिथे, कि ..राजकुमारी के मरजी का है? एंह छहुरा के संघे ऊ बिआह करै का तइयार हैं का?

राजकुमारी हां। तैयार है।

छाहुर त फेर चलैं!

राजा रुकिजा छाहुर बेटबा! हमका माफ कयदे! हम तोंहरे संघे बबुली के काज करै का तैयार हन!

छाहुर औ, अपना रानी जिउ?

रानी अ.. हमूं तैयार हन!

छाहुर त फेर असीस देई!

राजा, राजकुमारी के सिर पर हाथ रखता है और रानी उसे गले लगाती है। दोनों चल देते हैं।

नेपथ्य गीत आगे-आगे छहुरा चलत भा, पाछे रे बबुली जात।

राजा-रानी, सैनिक आदि छाहुर, बबुली और ग्रामवासियों को बारात जैसे विदा करते हैं।

चार घरी के अरसा न पूजा, ठाढ़ भें बीच दुआर।।

एक चक्कर लगाते हैं। अब वे अपने घर पहुंच गए हैं।

गायक समूह लाबा बबुली बियाहि, छहुरा के पौरुख त देखा। (आवृत्तियां)

छाहुर रुक कर गाता है।

छाहुर **माता रे माता कहि गोहराऊं, निकरि के बहिरे आउ।**

बहू तोंहारी डेउढ़ी खड़ी है, परछन लेउ कराय।।

मां थाल लिये आती है। परछन करती है।

नारी समूहस्वर (परछन गीत)

परछन के करा हो तैयारी लाल ससुरारी से आयें

सारी अउ सरहज के घर देखि आयें

सासूजी कइ अपने असिसिया लइ आयें

ससुरू से दान लै आयें

हाथी लै आयें अउ घोड़ा लै आयें

दुलहिन के रूप आपन जोड़ा लै आयें

लच्छमी का रूप लै आयें

लाल ससुरारी से आयें..

सभी नाचते-ठुमकते जाते हैं, छाहुर और बबुली रह जाते हैं।

नेपथ्यगीत धरती केर पालकी बनी है, बदरी केर ओढ़ाव।

ओहिन मां बइठी गेल्ही रे बबुली मुंह लुटरैं लहर पटोर।।

तेज ताल पर जानवरों का रूप धरे कलाकार मंच पर आते हैं और नृत्य करने लगते हैं। नृत्य थमता है।

नेपथ्यगीत आगे से मोहरा बबुली छिंदावै, पाछे छाहुर चलें डहराय।

दोउ जने मिल भंइसि चरामैं, औ छेड़ें बिरहा के तान।।

गायक समूह छेड़ैं बिरहा के तान प्रेम के नदिया बहामा ....

बांसुरी के टेर उभरती है। कलाकार तेज नृत्य करते हैं।

ख- बघेली कहानी

हिंदीभाषी क्षेत्र की बोलियों में आपसी सामंजस्य इतना अधिक है कि कभी-कभी यह पता लगाना भी असंभव हो जाता है कि यह शब्द किस मूल बोली का है।

हिंदी गद्य आधुनिक काल की देन है। कहा गया है 'गद्यः कवीनां निकषा वंदति'। प्रत्येक अंचल की अपनी लोकसंस्कृति होती है, अपनी बोली होती है, अपने रीति-रिवाज होते हैं। इन्हीं के आधार पर हम उस क्षेत्र की पहचान को रेखांकित करते हैं। भाषा अपने विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम होती है। लोक में प्रचलित बोलचाल की भाषा को बोली कहा जाता है, और बोली के बारे में कहा जाता है कि प्रति दस कोस में इसका स्वरूप बदल जाता है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि बोली का मानक स्वरूप निर्धारित करना बहुत कठिन है।

बोली में जब साहित्य-सर्जन होने लगता है, और प्रत्येक विधा में बोली, जब अभिव्यक्ति का माद्दा रखने लगती है तब वह भाषा का स्थान प्राप्त कर लेती है। आज जिसे हम हिंदी कहते हैं, वह सिर्फ खड़ी बोली नहीं है। हिंदी का स्वरूप ब्रज, अवधी, मैथिलि, मेवाड़ी, भोजपुरी, बुंदेली, बघेली, छत्तीसगढ़ी इत्यादि लोक भाषाओं से निर्धारित होता है। भाषा की जितनी मिठास, जितना लालित्य, जितनी समरसता लोकभाषाओं में है उतनी खड़ी बोली में नहीं।

डॉ. चंद्रिका प्रसाद चंद्र कहते हैं- 'भाषा जब बोली में उतरती है तो वह या तो परती-परिकथा हो जाती है या मैला आंचल! और वह कभी बलचनमां भी हो जाती है।' आंचलिक साहित्य कथा- कहानियों से भरा पड़ा है।

आंचलिक बोलियों के विकास की कथा शुरू होती है स्वतंत्रता पाने के बाद से। लोकभाषाओं के इस साहित्य में लोककथाएं भी हैं, जो शाम की चौपालों में या 'कौड़े' के आसपास कही जाती थी। मुख्यतः लोककथाओं में शिक्षाप्रद, नीतिप्रद बातें होती थीं। उनमें जीवन का अनुभव होता था, करणीय या अ-

करणीय का निषेध या स्वीकार होता था। ये लोककथाएँ अनंत थीं, ये आंचलिक सीमा को नहीं स्वीकारतीं थीं। आज भी निर्बाध रूप से लोककथाएँ 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' के रूप में पूरे देश में प्रचलित हैं।

जिस प्रकार हिंदी की पहली कहानी कौन सी है, निर्णय नहीं हो सका, उसी तरह बघेली की पहली कहानी कौन सी है, नहीं बताया जा सकता। कुछ लोगों ने बघेली लोककथाएँ लिखी हैं और उन्हें ही बघेली कहानी मान लिया है, जब कि यह उचित नहीं है। कोई प्रचलित लोककथा अपनी बोली में लिख देने से वह कहानी नहीं बन जाती, क्योंकि लोककथाएँ भाषायी सीमा को स्वीकार नहीं करतीं। जो लोककथा बघेली में कही-सुनी जाती है, वही मालवी में भी कही-सुनी जाती है। लेकिन, जो कहानी बघेली में लिखी जाती है, वह सिर्फ बघेली होती है, मालवी नहीं हो सकती। भाव-विचार और कथ्य भले ही मिलते हों, लेकिन प्रत्येक भाषा का अपना शिल्प होता है, अपनी आंचलिकता होती है। जैसे रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, आचार-व्यवहार से हम पहचाने जाते हैं, ऐसे ही भाषा, क्षेत्र की पहचान होती है।

किसी भी लोकभाषा का कथा-साहित्य ढूँढ़ना बहुत कठिन है। लोकभाषा में रचित साहित्य का प्रकाशन समूचे हिंदी क्षेत्र में बहुत ही कम है। बघेली में तो प्रकाशन की बात सोचना ही क्रांति की ओर उठाया गया मानक चिंतन है। बघेली भाषा में जिन लोगों ने लोक कथाएं लिखी हैं उनमें प्रमुख हैं - लखन प्रताप उर्गेश, डा. भगवती प्रसाद शुक्ल, प्रो. आदित्य प्रताप सिंह, डा. विनोद तिवारी, डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' और डा. आर्या प्रसाद त्रिपाठी। इन लोककथाकारों ने बघेली को परिष्कृत और परिनिष्ठित रूप देने का न सिर्फ प्रयास किया है, बरन् लोक भाषा को प्रतिष्ठित भी किया है। देश भर की आंचलिक बोलियों में साहित्य सर्जना की प्रेरणा आकाशवाणी की व्यापक योजना ने दी। और यह कार्य सन् 1955-56 के बाद ही विधिवत् ढंग से शुरू हो सका। प्रसारित और प्रचारित होने की ललक ने लोकभाषाओं को उन्नत किया। बघेली भी इससे अलग नहीं है।

बघेली की अधिकतर कहानियां आकाशवाणी रीवा से प्रसारित हैं।

बघेली कहानीकारों में पहला प्राप्य कहानी संकलन सैफुद्दीन सिद्दीक़ी का 'नेउतहरी' है। नेउतहरी में सत्रह मौलिक कहानियां हैं। बघेली के जिन कहानीकारों ने मौलिक कहानियां लिखीं और अंचल में साहित्यिक पहचान बनाई उनमें प्रमुख हैं - सैफू, सलाहुद्दीन सिद्दीक़ी, रामनरेश सिंह, रश्मि शुक्ला, आरती सिंह, चंद्रिका प्रसाद द्विवेदी 'चंद्र', गोमती प्रसाद विकल, बाबूलाल दाहिया, भागवत प्रसाद शर्मा, डॉ0श्रीनिवास शुक्ल 'सरस', कालिका त्रिपाठी, अनुग्रह 'चिरकारी', सूर्यमणि शुक्ल 'मजगलित', रामनरेश तिवारी 'निष्ठुर', भानुप्रताप सिंह, राजीव लोचन शर्मा आदि। यह सूची अंतिम नहीं है। और भी अनेक नेक और प्रणम्य-नमस्य विभूतियां हैं जो इस पूरे बघेली क्षेत्र में एकांत साधना करते हुए भाषा को स्वांतःसुखाय समृद्ध कर रही हैं। सैफू बघेली के प्रारंभिक कहानीकारों में हैं। उनकी कहानियों में बघेलखंड का समाज दिखता है। सामाजिक कुप्रथाओं से पूरा देश आक्रांत है। इसमें महज एक अंचलविशेष नहीं है। अनमेल विवाह, दहेज, विधवा-समस्या एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। पूरे समाज का ही दुर्भाग्य है। प्रत्येक जागरुक व्यक्ति इन समस्याओं से निजात पाना चाहता है, लेकिन जब अपने ऊपर बात आती है तब उसका असली चेहरा सामने आता है।

नेउतहरी में सैफू की सत्रह कहानियां संग्रहीत् हैं। लगभग सभी कहानियां बघेली जीवन के यथार्थ को व्यक्त करती हैं। नेउतहरी कहानी का हास्य सोद्देश्य है, जिसमें नेउतहरी का झुंड पूरे घर की बगिया उजाड़ देता है। यह परंपरा अभी भी यहां चल रही है कि एक नेउता में एक लगउरा जरूर रहता है। यदि किसी ने खाना कम बनवा रखा है तो उसकी इज्जत का कबाड़ा ये नेउतहरी आज भी करते देखे जाते हैं। कहानी का एक अंश देखिए-

'रमेस्सर काकू के पलटन के धतकरम से थकि कै दादा बोलें- दादू! नसाइगा! नहीं त नातन से कहि देइत के दुलहा भर का पठै दिहे, बरात त रमेस्सरै काकू लय अइहीं!'

सैफू की कहानियां 'दुलहिन कै डोली', 'धिरजिया' पीड़ा, मरम और संवेदना को छूती हैं तो 'पौपखरी' में रामलीला के निपट यथार्थ पर व्यंग्य है। एक सामान्य पात्र जब धनुष तोड़ने दौड़ता है, तब महंत का धैर्य छूट जाता है, कि कहीं सचमुच ये धनुष न तोड़ दे! बोल उठते हैं - 'ए भेलइया! तैं धनुस न उठाइ लिहे! तोरे उठामैं का थोड़िउ आय धरा गा है! ओही त रामलला उठइहैं!'

बघेली समाज संयुक्त परिवार से संचालित है। परंतु उसमें विघटन कराने की प्रमुख 'एजेंसी' ससुराल पक्ष का दखल है। 'हींसा बांट' कहानी इसी प्रकार एक हंसते खेलते परिवार के विघटन की कहानी है लेकिन गलती का एहसास होने पर फिर से एक होने के पुनर्गठन को स्वीकार करती है। 'हरवाही प्रथा' किसान-मजदूर के बीच की साझा कैद की कहानी है। हरवाहों के प्रति किसानों द्वारा उठाए जा रहे अन्यायपूर्ण कदमों को उजागर करती है यह कहानी। 'खटकीरा' एक प्रतीक कहानी है। खटकीरा अर्थात खटमल। समाज के खटमल पटवारी, तहसीलदार, वकील, व्यौहर। इनसे बचने की चेतावनी कब से दी जा रही है। सैफू ने अपनी कहानियों में बघेली समाज के मध्यमवर्ग एवं निम्नवर्ग की समस्याओं को मुखर किया है।

सलाहुद्दीन सिद्दीकी ने बघेली में अनेक कहानियां लिखी हैं, परंतु मात्र सोलह कहानियों की पांडुलिपियां प्राप्त हुईं। बलिदान, सौतेला भाई, सोन चिरैया, श्राप, चंपा केर फूल, सूना खाली पिंजरा, काकी, चंद्रमुखी, कोढ़, डाग्दर केरि बाति सुने न, जलपरी, तिकोन, चंद्रकला, देवारी, बंशबृक्ष, प्रभावती, अजनबी और चंद्रकिरण। शराब जैसी सत्यानाशी प्रवृत्ति पर आधारित कहानी 'चंद्रकला' एक ऐसे वर्ग की कहानी है, जो प्रतिदिन शराब पीकर धन और तन बरबाद करता ही है, पत्नी तक को नहीं बख्शता और नशे की झोंक में उस लक्ष्मी जैसी पत्नी की हत्या करने से भी बाज नहीं आता। सलाहुद्दीन सिद्दीकी की कहानियां शिक्षाप्रद हैं, और कोई न कोई संदेश देती हैं। 'श्राप' कहानी, वृक्ष के लालन-पालन और रक्षण की कहानी है। दीनानाथ एक वनरक्षक होकर भी वनों का

भक्षण करते रहे। उन्हें प्रतिदिन खोखला करते हुए अपना पेट भरते रहे। सुकुमार सुंदर वृक्षों को उन्होंने ऐसी निर्दयता से कटाया कि स्वयं नियति का हृदय भी रो पड़ा। और शायद इसीलिए सयाने वृक्षों ने उन्हें श्राप दे दिया। ऐसा श्राप जिसने न सिर्फ दीनानाथ को, बल्कि उनके पूरे परिवार को भी बरबाद कर दिया।

'दीनानाथ के मन पहिल दरकी दहसियान। लड़िकौना का ओढ़ाए, दुबकाए पड़ाए रहें, पै उआ काँपा जाय। बिजुरी चमकै, बादर अइसन गरजैं के रोमां कनकनाय जाय। पानी झमाझम बरसै। अतने मां बहुतै जोर गरजा औ चर्राय के दुइठे पुरान पेड़ रेस्टहाउस मां गिरें औ छत फारत डरइया दीनानाथ के छाती मां घुसि गइ। दीनानाथ बहिरे भागै का करिन त दुसरकबा बिरछा ओनके मूड़े मां गिर परा।'

सलाहुद्दीन की कहानियों में इतिहास बोलता है। उन्होंने गांवों को उठाया है, उनकी सार्थक व्याख्या की है। गांव के नाम वे हैं जो वर्तमान में हैं। देशभक्ति, त्याग, बलिदान, प्रेम, सौंदर्य, कुरीतियों पर कुठाराघात उनकी कहानियों के मूल स्वर हैं।

बघेली कहानीकारों में एक प्रमुख नाम डा. (श्रीमती) रश्मि शुक्ला का भी है। डा. रश्मि शुक्ला की तीस बघेली कहानियों का संग्रह प्रकाशित है - सेंदुर केर बोझ। लेखिका ने आत्मकथ्य में नारी-विमर्श पर एक सवाल उठाया है। कहती हैं - 'यह सोच- सोचकर मैं कभी-कभी बहुत परेशान हुई हूं कि जहां पति रोज- रोज अपनी पत्नी को पीटता है, भूखा मारता है, उसी के लिए वह हरतालिका व्रत, सावित्री व्रत रखती है! जो भाई उसके हक को छीनकर उसे दूर देश भेज देता है, उसी को राखी बांधने या भाई-दूज का त्यौहार मनाने वह भागी-भागी चली आती है।' लेखिका पूछती है- 'क्या है यह सब ? व्यक्तित्व का दोहरापन लिए स्त्रियां जी रही हैं, जूझ रही हैं, अपने सड़े-गले समाज से, पर कुछ बोल नहीं सकतीं!' 'सेंदुर केर बोझ' की सारी कहानियां स्त्री विमर्श के इर्दगिर्द घूमती हैं।

इन कहानियों में वेदना, यंत्रणा, और जीवन के प्रति यदि एक तरफ कसमसाहट है, तो दूसरी तरफ आशा की कुछ धूमिल-सी किरणें भी दिखाई देती हैं। 'गांव कइत' कहानी गांव से शहर गये आदमी की वापसी की कहानी है। सतवंती गांव की एक गाय के मर जाने पर रोती है। सोचती है- 'जब सुरुज केर किरन गांउ के मटिहा घरे के खपरैल मां पड़ई तबहिन मटरी गइया रंभाय लागै। ओखर रंभाउ सुनिकै लड़िका गदेला धाय जांय!' गांव की संवेदनशीलता एवं शहर की संवेदनशीलता को चित्रित करती कहानी कहती है - 'जब हम गांउ से चलेन तइ, तव सगला गांउ पहुंचावइ आबा तै। बहुतेरे रोवइ लागे तै! गोड़ छुइ-छुइ विदा किहिन तइ! गांउ मं पइसा नहीं रहा, पै बड़मंसी रही। हियन पैसा है पै बड़मंसी नहीं आइ!' परित्यक्ता पत्नी की पीड़ा 'पतरी केर कउर' में व्यक्त हुई है - 'कुंती न त आगे बढ़ सकी, न त ओनसे कुछु कहि सकी - आपन पतरी केर कउर दूसर के मुंह मं जात देखति रही!' कथ्य और शिल्प में भी रश्मि शुक्ल ने कई अच्छे प्रयोग किए हैं।

रामनरेश सिंह ने सत्रह कहानियां लिखी हैं- अंजुरी भर धानि, गलत सवाल, नाता-रिश्ता, चंदन और चमेली भोर के चिरैया, आंखी कइ पुतरी, पहिला पाठ, खूंथ पर पत्ता, चिटकी भर सेंदुर, परछी मं अंजोर, सही सवाल, हंसिया कै धारि, आखिरी साधि, सती कइ पतनि, ममता कइ थाह, अम्मा कइ कनिया, और संसकार प्राप्त कहानियां हैं। 'चंदन और चमेली' रामनरेश सिंह की ऐतिहासिक कहानी है जिसका संबंध भक के सेंगर राजाओं से है। 'चंदन और चमेली' दो अबोध भाई-बहनों के त्याग और बलिदान की कहानी है। रामनरेश सिंह की कहानी में उनका गांव है, पड़ोस है, उनसे जुड़ी कहानियां हैं, सड़कें हैं, गइउहरा है, लोकजीवन से जुड़ी संस्कृति है। प्रेम, भावना, त्याग, ममता का पाठ सिखाती हैं, उनकी कहानियां। 'सही सवाल' कहानी में रामनरेश सिंह ने एक जबर्दस्त सवाल उठाया है -

'दादू, तुहूं गलत सवाल करथा। एंह देस केर राजा, परजा, नेता, परजा

सब गलतै सवाल करथां। भइया, गलत सवालन के उत्तर कभौ न मिली। कौशिलिया कै हतिया सासु, ससुर किहिन होइ चाहे पुलिस किहिस होई, चाहे उ खुदै आपनि हतिया कइ लिहिस होई। ऐसे का फरक परथै। सही सवाल त इ है, के ई कौशिलिया लोगन के मौत के पाछे मूल कारण का है?'

आरती सिंह ने दस कहानियां लिखी हैं और अद्यावधि रचनारत हैं। आस के पंछी, नती माई, सुआरथ केर परदा, मां, बिसुआस, छोटकी बहू, उधार-बाढ़ी, दाई क छोह, माई क मंदिर, और दुआ आरती सिंह की कहानियां हैं। गांव के जन-जीवन से जुड़ी आरती की कहानियों में नारी सुलभ स्नेह, ममता, और स्त्री का दायित्व बोध है। आरती सिंह के 'छोटकी बहू' का एक बिंब देखिए -

'बर्री कइ दुइ ठे रोटी और लहिला कइ भाजी राठी मं धइकै परवीन खाइ बइठीं के चिमनी भभकि कइ बुझाइ गइ। शाइत तेल केर आखिरी बूंद चुकिगै। अंधियारी राति, निरजन झोपड़ी, न केउ आगे न पाछे। चारिउ कइत कुकुरहट। मनसेरू केर पंद्रहियन से कुछु रता न पता। भला नींदउ आवइ त कहां ते!'

बघेली कवि गोमती प्रसाद 'विकल' ने भी कुछ कहानियां लिखी हैं - निकरि चला दइ टटिया, बड़प्पन, अठभुजी महरानी, कर्रा साहब, तीन पहिया गाड़ी, दुर्घटिया, बड़ा ढोल बड़ा पोल, और ठकुराइस विकल की प्राप्त कहानियां हैं। 'बड़ा ढोल बड़ा पोल' कहानी में विकल ने श्रीमंतों की कुटिलता और धोखाधड़ी के कुटिल व्यवहार से समाज को चरमराते हुए देखा है। संयुक्त परिवार का विघटन, बाजारवाद और उदारीकरण से भारतीय समाज में अपसंस्कृति का आगमन उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। 'दुर्घटिया' कहानी में आदिवासी महिला की कथा-व्यथा का मार्मिक चित्रण, रूढ़ियों का टूटना, और नए युग का संदेश स्पष्ट झलकता है। विकल की कहानियाँ नवजागरण एवं शोषितों पर होते अन्याय के विरुद्ध खड़े होते पात्रों के साथ हैं।

भागवत प्रसाद शर्मा की कहानियों में बघेली भाषा की बतकही का ठाठ

है, तो अभिप्रेत यथार्थमूलक है। उनकी लिखी सत्रह कहानियाँ प्राप्त हैं - चिरई-चुनूगुन, सूख पेंड़ झुरानि नदी, कलप डाह, चिपोंग, जिरिया पुरान, महराजिन, करमइते का हर भूत जोतै, रधिया और घुनघुना, टूटा कउरा, करिस्मा भारथ मं, विभुहानी, पंचाइति करनी बनि गइ, छकौड़ी का ताप, बिगड़ी बनत बनत बनि जाइ, और रामकली। शर्मा की कहानियों में भाषा का तेवर, बिंबों का चित्रण, संवेदना की पकड़ कदाचित बघेली के सभी कहानीकारों पर भारी पड़ती दिखती है। एक बिंब देखें - 'जब ऊ पाछ फिरी त आंखी सब कुछु एक बेरै मं देखि औ सहेजि लेइ क ललाइ परीं। फुहरिन झोंटी, जियत ठठरी मं छपटी चिथरी लुगरी, लुगरी के छेड़ेन से झांकति देंह, देंहे पर पसाए मांड़ के नाईं जमी चमड़ी' (कलप डाह कहानी से)। 'चिरई चुनूगुन' कहानी का एकालाप देखिए, कितनी खीझ भरा प्यार - 'एनकरि कजानी कौनि बानि होइगै है। रोजि उहै चंडाली बेरा क आउब। जून-जमाना एंह मेर का। कजानी कै बेर बरजेन, कहि-कहि हलंद होइ गएन, पै इ मंसेरू पुनि दइअइ क बनावा त हइ।' 'सूख पेड़ झुरानि नदी' कहानी तिजिया के संघर्ष की कहानी है। पुरुष झूठा अहं चाहे जितना पाले लेकिन और के त्याग और संघर्ष के आगे कुछ भी नहीं। कहानी का एक चित्र देखिए -

'दुलही! ई लड़िका जून-जमाना से अलगै है। गदहा के पेटे से गाय अइसनै न होथी। ललवा केर छैलाई त सुनबै भइ होई। ललवा जैसन दुइ-दुइ ठे पट्ठा, भोला अपने एक-एक कखरी मं चाँथे चाहे त दिन-दिन भर हर जोतत रहै, पै का मजाल के केहू बिटिया-बेटारौ कैति भोला सौंहे नजरि देखैं।' भागवत शर्मा की कहानियों में भाषा एवं कथ्य सजीव हो उठता है।

चंद्रिका प्रसाद चंद्र की कहानियाँ स्त्री और दलित विमर्श के साथ मानवीय संबंधों पर विशेष जोर देती हैं। चंद्र के प्रकाशित बघेली कहानी संग्रह 'थोर का सुक्ख' में उनकी तेईस कहानियां हैं, जिनमें 'चालिस साल केर आँतर' कबीरदास कहिन, साथी केर दुक्ख, साझे केर बूढ़, इंतिहान, नाउ से कुछु नहीं होत, चुनाउ, थोर का सुक्ख, राति भरे क संघी, एक दिना गाँव मां, इ हमरे गाँउ

के, केकर डीठि लागिगै..और, जीत केर हार, फुलसुंघनी फुआ, किस्सा एक गांउ केर, इ का होइग, रमिया कइसन नाता, रैमुनिया, सोनिया, सुखिया, एक अउर सीता, प्रमुख कहानियाँ हैं। उन्होंने 25-30 कहानियाँ लिखी हैं। चंद्र की कहानियों में नारी का संघर्ष रो-धोकर जीवन काटने का नहीं है, जीवन को निर्णयात्मक दिशा देने का है। 'रमिया' कहानी की नायिका परंपराओं को तोड़ती हुई अम्मा को मुखाग्नि देते हुए कहती है-

'अम्मा क सेवा हम करेन, कभौ कहे के हमहू परिवार आहेन, पूंछे, के काकी तोंहका कौनौ परेसानी होइ त बताबा ? हम मरि-मरि बहिनिन का बिआहेन, कभौ केउ आगे आए ? हमका पामन-अपामन न बताबा। कौने मुंहे से सरग-नरक बतात हा ? हम आगी देब जेका जाइ का होय जा! रहै क होइ रहा, सत लकड़िया देइ क होइ दे। कहि के रमिया लुआठ लै के चित्ता के चारिउ कैत फिरै लागि।'

बाहुबली चुनाव में कैसे वोट मांगते हैं, उनका यह तरीका 'चंद्र' की 'चुनाउ' कहानी में दिखाई देता है। गांधी के स्वराज का सपना कैसे टूटता है, देखें - 'अपना पंचेन जानिथे कि हम जहल से आयेन है। सरपंची मं हम खड़ा हन। सब केउ जानथा के हम निकहा मनई नहीं, न माने जइत, औ सही मं हइयौ नहीं आहेन। अब निकहा मनई बनै चाहिथे औ अब इ अपना के हाथे है, के हमका निकहा मनई बनै मं सहजोग करै खीतिर सरपंची मं जिताई, नहीं त जौन हम हन, तौन त रहबै करब!'

चंद्र की कहानियों में अनेक बिंब हैं। परदेश जाकर बसे पुत्र के पिता की पीड़ा का अहसास उनकी कहानी में है तो अनेक पात्रों का चरित्र, मूल्यों के लिए समर्पण का भी है। मूल्यों के टूटने का दुःख भी है।

अनुग्रह मिश्र 'चिरकाटी' संभावनाशील कहानीकार हैं, उन्होंने भी अनेक कहानियां लिखी हैं। बघेली के कितने ही कहानीकार अंचल में रचनारत होकर भाषा-सरस्वती की सेवा का ऋण भर रहे हैं।

डॉ. रामसिया शर्मा

बघेली कहानी

ठूंठ

गदेलउ इआ किस्सा जंगली इलाका के एक गांउ शिउराजपुर, ओसे जुडे पहार, अउ एक ठे लड़िका पचुआ केर आय। शिवराजपुर के उत्तर मां एक कोस तक कैमोर पहार फइला हइ।

पहिले कबउ ओह मां खूब घना जंगल रहा। बाघ जनाउर, भालू, हिरनी, मिरगी, खरहा बारहसिंघा, कजानी केतना रहें। लडकई मां जब रात मनई रिसई-रोई त दिदी दाई डेरबामा - चुप्पई रहे नही त नदी तलाए पानी पिअइ बाघ आबा होई, सुनलेई त पकडै चला अई। पेड़-बिरछा त अतना रहे के पहार मा घुसई मां डेरि लागइ। बीच जंगल तक जे चले जां ओनकरि गिनती बीर बहादुरन मा होय। चरवाह पहार तीरेन गोरू चरामा अउ गोरू अतनेन मा अघाय जां। पचुआ ओंह चरबाहन में से एक रहा। अंदाजन चौदा-पन्द्रा साल के उमरि तक ऊ हमरे घडउरी केर गोरू चराइस होई। अपने बाप-महतारी केरि पांचउ औलादि होई से ओकर नाउ पचुआ धराइ दीन गा रहा। हम ओसे एक राति केर जेठ आहेन। एह से ऊ हमकां भइया कहत रहा। उहइ पचुआ कइअक साल बाद आसउं जेठ मा अचका कई आइ परा। आपन गांउ आपन जनम भूमि देखइ। अब ऊ उत्तर प्रदेश मा कंहउ भदोही-अदोही मा रहत हई। पहिले ता चिन्हबइ नही भयेन। ई कउन जेन्टरमैन आइगा भाई! पहिरे लपलपउआ ओन्ना, पान खाये, खीसा मा डारे छोटे का बाजा। दिखेन से तउ खूब मजे मा जनान पइ मिलतइ लाग लपटि कई मेहरियन अस रोबइ। कइसउ के सनकायेन, चुप्प भा।

फेरि घंटन मनई पुरानि बातिन केरि सुधि करत रहिगा। ओकर हनुमान चालिसा वाली बाति दोहराय कइ मनई खूब हसबंउ भा। ई बाति अब आगे

अउबइ करी। दुइ-तीन रोज रहि कइ पचुआ त लउटिगा अपने परिवार के लगे। पई बेर-बेर पहार का देखि कइ ओकर रोउब कसकत रहिगा करेजा मा। कहइ कि भइया पहारइ उजारिस हमार घर। परेदस मा नीक नहीं लागत, पइ का करी, टिके हयन पेट खातिर। ओका अबहिनइ पता नहीं आइ के ओके परिवार का पहार नहीं ऊ बडे मनई उजारिन जे सबतर पुज्जिमान हमा। जे पहिले जंगलै भर कटाबइ केर ठेका लेत रहें, अब समाजउ कटाबै केर लेत हां।

पहिलेन बतायेन के पचुआ हमरे घडउरी केर गोरू चराबत रहा। हमार जोड़िगमा रहा, ऐंह से हमार ओकर बहुत पटत रहा। जब ऊ गोरू चराइ कइ पहार से लउटइ, त हमरे खातिर कबउ एक खीसा चार, कबउ तेंदु ,कबउ दूधी-भाती, करौदा, कुछु लइन आबइ, पइ पइ देय ना। अउ हम दिदी से चोराय कइ ओके खातिर गुड़-चिनी- खुरूहुरी, अंबाबटि, जउनइ मिलइ ओका देई, पइ ऊ हमरे दिदी का बताइ देइ - देखा काकी भइया केरि करतूति ।

अइतबार के रोज छट्टी रहइ त दिदी का जटि-बउराइ कइ हमहूं पचुआ के साथ गुल्ली डंडा खेली। मुंरैला खरहा देखी, छोटि जानि कइ मनई हि,न्नी मिरगी पकड़इ धाबइ पइ ऊ त एकदार हमरे पचेन कइ निहारी फेरि बुटि दें बिजुरी घरे से खाई का लइजई पइ ऊ सब पचुआ का दई देई अउ चार, करौंदा खई पेट भर। आन-आन फर, जेका जितना खाई का होइ, खाइ। लागइ जइसइ जंगल पैदाइशी शबरी आंही। झउआ मा फर लिहे आदि शबरी, जउने का चरबाह इस्कूली गदेला जनीजाति सब रामइके नाई प्रिहु हां। पेंड़न से लपटइ केर मन होइ। घन पेंडन के ओलटे मनई लुकइ-खेलइ। लउटत मां पचुआ घरे लइ जाइ का झूरि लकडी बिनइ। बोझा भर लकडी दसइ-पन्द्रह मिनट मा जुहाइ जाइ। ओकरि देखा सिखी हमहूं हटहटाई एकात ठे मोगरी, फेरि थकि जई त गलिनि मा फेंकि देई। अतनी लकडी भरी रही पहार मा, कबउ-कबउ धुंधुरूक होइ जाइ त डेरभुतहा हम हनुमान चलीसा पढ़ी। हमार सुनि-सुनि अनपढ़ पचुआ का पूर हनुमान चालीसा घोखिगा रहा, जउने पर ओका अथाह विसुआस रहा।

अब ओंही केर किस्सा। पहर तिरे हमरे घड़उसी केरि बहुत भुंई हइ, ओह मा खूब चारा होत रहा। पचुआ ओही मा गोरू चराबइ। तब ऊ अंदाजन बारह-तेरह साल केर रहा होई। गांउ केर कुछु मनई ओका डेरबाइ कइ हुंआ से रगदइ चाहिन, के जडने ओंह भुंइयां मा ऊ पंचे चारा न चराइ सकां। ए के खातिर उ लोग फरेब रचिन। एक जने जे खूब लम्बे रहें एक रोज दिन बूड़त कइ एक ठे गदेला का कांधा पर बइठाइ कइ अउर लम्बा होइगें। ऊपर से ओंढि लिहिन पिछउरी अउ बनिगे दानो बीर मामा। अब चले पचुआ का डेरबाबइ। पहिले त उआ डेरान, पै फेरि लाग हनुमान चलीसा पढइ... संकट से हनुमान छोडावैं भूत पिसाच निकट नहीं आवैं.....।

पइ दानोवीर मामा निअरातइ गें। पचुआ केर अटल विसुआस हनुमान चालीसा पर। उठाइ कइ आपनि लाठी, आगे बढा। बोला, तूं दानो बीर मामा होबइ न करा ! जो होते तूं मामा, त अब तक बिलाय गए होते हनुमान चालीसा सुनिकइ। लगाइसि तीन-चार डंडा हरबी-हरबी निहत्थे दानो बीर मामा पर। ऊ हरबिन उतारिन कांधा से गदेला अउ धउडेंत्र पचुआ का मारइ। पचुआ चीन्हिगा ओनका, अउ नाउ लइ कइ मारिस गोहारि। भगतई बना ओन से। लतरी अउ पिछउरी छूटि गइ तउन अलग। पचुआ जब हमका ई किस्सा सुनाइस त हंसत-हंसत पेट पिराइ लाग रहा।

साल भर पचुआ के दादा भइया हरे किसनी केर काम करत रहें। ओहीं से अतना मिलि जाइ के मजे मा गुजर होइ जात रहा। वैशाख, जेठ मा महुआ के फूल अउ फर, हर्रा, बहेरा, चिरौजी, अमरा, अतना जुहबाइ लें के ओन्ना-लत्ता, तेल-नोन सबका पुजि जाइ। अतनेउ पर कम परि जाय त घाट के खाले से बांस के झिटका, बतना लइ आइ कइ बेचि लें। जे के जिउजांगर होइ त ओका पहार अतना देत रहा के जिउ अघाइ जाइ। लोगबाग संतोसी रहें, पहार का उजारिन नहीं। हरिअर पेड़े पर टांगा चलाउब अइसन मानत रहें जइसइ अपने लडिका-भाई केर मूड काटब। गांउ मा अबहिनउ आंबा का लड़िका मानि कइ बरूआ-बिआह करत हां।

पइ देखतइ देखत सब बदलिगा। पचुआ केर गोरू चराउब अबौ नही छूट। ऊ पहार से लउट कइ बताबइ के हुआं डालन मा भरि-भरि मजूर आवत हां। धंउ के बिडला आंही त ऊ पूर पहारइ ठेका मा लइ लिरिन हई। ओंइन कटाये लेत हां सगला पेड। ठीका बांसइ भरे केर रहा पइ ओंही ओठरे चार, हर्रा बहेरा, सगमनि सब कटिगें। कबउ केर घन, हरिअर पहार उजार देखाइ लाग। दूरी-दूरी तक सफाचट जइसन नसानि मेहरिया केरि सूनि मांग। पचुआ के घरे केरि ऊपर केरि कमाई बंद होइ गइ। तबउ ऊ लोग कइअक बरिस गांउ, जनमभूमि के मोहमाया मां लपटे कसिउ कइ गुजारा करत रहें। एंही बीच गांउ मा एक-दुइ जन टरेक्टर बेसाहि लिहिनि, अउ केराया लइ कइ खेत जोतइ लागें। जब पचुआ जइसे घर बालेन केर पुरि खांती धंधा टूटइ लाग, ऊ लोग हाड बिनइ, रेक्शा चलाबइ भागइ लागें आसपास के शहरन मां। पहार मा जउन पेड़- बिरछा रहिगे रहें, ओनकरि डारिन डारि कटाबइ लागें। पेड़न का देखि कइ रोबाई छूटइ लागइ। जइसइ मनइन केर हाथ-गोडत्र काटि कइ भुंइयां मा गाड़ि दीन गा होइ। तबइ आये रहें पचुआ केर दादा हमरे बबा के लगे। पचुऔ रहा साथ मां। ओकर दादा रोउनउधा होइ कइ कहिन - कका, ई पहार गांउ छंडाइ दिहिस। अब कउनउ सहारा नही रहिगा काल्है निकरि जाब गांउ से। जउन बना-नसान होइ, माफी दिहे। इआ पचुबा दादू से मिले बिना जाइ का तैयारइ नही होत रहा ऐंही से। फेरि रोबत दिखेन। ऊ पचुआ के परिवार का गइल का सीधा- रूपिया दिहिन अउ बोलें, पहार केर उजरब न जानी कतनेन का बनिमास देइ। ओंही रोज हमरे भीतर कइ गदेलई सिसिक-सिसिक के मरि गइ रही।

डॉ. चंद्रिका प्रसाद 'चंद्र'

12 फरवरी 1942, को ग्राम गौरी, हनुमना जिला रीवा म.प्र. में जन्मे डॉ. चंद्र सेवा निवृत्त शिक्षक हैं। आप बघेली के कहानी कार, एवं साहित्य के समीक्षक हैं। 'थोर का सुख' नाम का कहानी-संग्रह प्रकाशित है।

बघेली कहानी

किस्सा एक गांउ केर

इ जउन गांउ से लगा उत्तर कैत पहार देखात है पहिले उहां खूब चरि-भुंइयां रही। पहिले पूर सरकारी रही, अब कोन- कतरे, बाग-पट्टा कराइ लिहिन। पहारे मं सब रंगे क पेंड महुआ, आंबा, तेंदु, जामुनि, कठजम्ता, साजा, सरई, सगमन, छिउला, कहुआ, अ येनका सबका मिलावै वाली बैरि-बरारी केरि झांड़ि। सैकड़न पोरसा खाले कूडां। अरी के कगारे-कगारे रेंगत गोरूअन क खूब मालूम है के पथरा परी से जो थोरौ खुरि छटी त हड्डी- गोड्डी न मिली। सब छतरचून होइ जई। पै सांझि कै घरे कैत लौटत, पगुरात जब येनका डहरत देखत रहेन त आजु लागथै के भुंइयां क सरग हमरै गांउ रहा तै। पै आजु उ सब कहां चला ग।

गांउ भरे केर लडिका आपन-आपन गोरू लिहे बडे बिहन्ने, कलेबा खाइकै, बिना हाथै मुंह धोये, जुआरि ढीलै के जूना-तक खाइ खीतिर रहिला क फुटेहरा और महुआ क लाटा बांधि, हाथे मं मूंड़ बराबर लाठी लिहे, तुआ-पत्ता मं सांसि थामै क खेलु खेलत, 'जब धावत रहे, त दादा-दिदी क पुर बिसुआस होइ जात रहा के हमार लडिका गिरस्ती केर ककरहा मं पास होइगा। चरबहुनन मं कुछु जंगरचोर होबा करां, जौन नवा चरवाहन से गोरू छेंकबाबा करां । औ जो

कहौं केहू के खेत मं ऐरा परि जाबा करां, त ओही बिचारे से बहोर बउवौ करां। दुपरही मं हर ढीलै के जूना बहरा के पानी मं पथरा पर रगड़ि-रगड़ि, दूधी-भाती का उज्जर करै क होड़ि, सिलवरे के खोरिया मं पानी कै कंडा के अदहरा मं, दूधी-भाती पकामैं क मजै कुछु और रहा। सांझि कै खरकौनी मं 'गोरूअन क अगुआनी करै बाली बाति अब सपनि अस लागथि। घरे पहुचतै महतारी के कनिया मं छुपकतै पहारे केरि थाकु, एंह पारसछुअन से दूरि होइ जाइ। दोहनी के करोमन खाइ खीतिर लड़िकन क झगडब सब हेराइ ग। अब न रहिगें ऊ पहार, जहां से बिरवाही बौंड़ावइ खीतिर जामुन और तेंदु केर ढांखी आवति रही, पेड काटै का बरज नीति होइग। बांसे केर झोआ जौन घरे-घरे बनत रहें, अब ऊ सब बन्द होइग। न रहिगें गोरू, न रहें चरवैया। न रहा खरिका, न रहा फरिका। और न रहें ऊ गांउ। पहार तारन से रूंधि गें। कुछु सरकारी पेंड लगिगे। पेंडे से अधिक ओकर तकैया होइगें। गोरूअन क उहां जाब रूकिगा। पता नहीं पहिले ऊ पेड के लगाये रहा, जौन पेड़न से गांउ भरे केर निसतार होत रहा। गोरू चारै भर चरत रहें। एक-एक घरे मं कइउ मूड़ गाइ-बरदा होत रहें। केउ गोरू बेंचत नही रहें। बूढ़न केरि खूब सेवा होति रही, आजु त बूढ गोरूअन क कसाई के हांथे बेंचत मं कतनौ दुक्ख नही होत के हमरे खूंटा मं इ कतना सुक्ख दिहे रहें।

दक्खिने कैत बाबू केर बगैचा। जौने मं गांउ भरे केर आंबा। भुंइया क पट्टा त मुखिया बबा केर रहा, पै सबकेर पुरिखा, दुई-चार पेड रोपें रहें, जेनका ओनकर नाती-पनती कजानी कबसे खात रहें। आंबा के टिकोरी लगतै सब पेड़न तरी, लौका से बचै खीतिर एक ठे पियरा केर टटिया और एक गगरी पानी धरि जां। अ फेर छूना, अमुचुर, अंबहरी से लइकै अमाबटि डारै तक सगला लड़िका, सयान, बूढ, दिदी, दादा लगा रहां। तिसरे बरिख बगैचा फरबा करै, त तीन साल क अमचुर-अचार क इन्तिजाम होइ ज़ाइ। अब उहौ नही रहिग। जब से मुखियाने केर कुछु लडिका-गदेला पढि लिखि-लिहिन, कानून जानि लिहिन के जौने भुइंया क पट्टा जेखे नांउ है, ओकर पेड़उ ओके नांउ माना जई। सब पेड लम्बरबार होइगें

और गांउ बालेन क पेड़े तरी से जाइउ क छीदि दिन्हिन। गांउ भरे के गोरूअन क झरियारे मं खड़े होइ का उहै बगैचा खरकौनी रहा, उहौ रोकि दीन ग। गऊ गोहारि के सुनै। सबका अपनै-आपन पेट देखाथै। बगैचा मं एक ठे हनुमान जी क मन्दिर है। जौने क कभौ पंडित बबा बनवाये रहें। पहिले मन्दिरे मं दिया-बाती रोज सकन्ने-सॉझि होति रही, अब दिया-बाती त दूरि, मन्दिरे मं केमारउ भर नही बचा। हनुमान जी के देहें मं काई जमिगै। देहें मं सेंदुर सइदै, साल दुई साल मं एकात बेर लागत होय। पै नगपंचइया मं बादी और हुड़िया अभौं पुरनये मनई खेलत हं। ओंही हनुमान जी के सौंहे। चउमास बीतत अब उहौ नये लडिकन क किरकेट केर मैदान होइ जात है।

गांउ के पूरूब कैत मलैहिन क मउहारि। मउहारि के बीच मं एक ठे बडा भारी क पेंड, जौने मं एक के जलाहल परेत कजानी कब से डेरा डारे है। पूरूब कैत जब बिटियन क पलकी जाति है त उहै परेत दानों बीर मामा होइ जात हं, ऊ बदौना टिकौना दिहे बिना भला कौनौ बिटिया नीक-सूक धौं गमने चली जां। पच्छिउ कैत मेढुलिहा तलाउ, जौने के भीटें पर एक ठे टुटही मेंढुली। मेढुली मं देवी-दाई। कुछु करियट, गोल-गोल पथरा, जौन गांउ वालेन के बिसुआस केरि देवीं आंइ। जब कभौ गांउ मं महरानी कढ़ति हं त येंहू गोलकिये देविन क दिन लौटत है और येनहू क दहेंगरि चढति है औ येउ करियट से उज्जर होइ जाति हं। गांउ के गोंइडें मं कौनौ न कौनौ देउता जरूर रहथं, जौन गांउ केर रच्छा करथं।

येंही गांउ मं सब जाति क मनई रहथं। अतनै नही, शैदे देश मं कौनौ गांउ अइसन होई, जहां सब जाति एक संघे न रहत हों। सब अपने मं मगन। केउ केहू कै छै पाचिं न चालां। एक जने क दुक्ख सब केर दुक्ख होबा करै, जनी-जाति केर कौनौ भेद- भाउ न रहै। सब अपने-अपने धरम मं बंधा, मरजादा से रहबा करां। हमका सुधि है, के पटवारी साहब गांउ मं आइ कै बताइन तै के देश सुतंत्र होइगा।

अब सब जनता चुनि कै सरकार बनाई। लोकसभा दिल्ली खीतिर, और

विधानसभा राजिन खीतिर चुनाव होंइही। फेरि गांव मं पंचाइत बनिही। ओनहू केर चुनाउ गांव वाले करिहीं। गाड़ी-मोटर दौड़ै। बहुत जने पहिले दार मोटर दिखिन, नगीचे जाइ-जाइ छुइन। पर्चा बंटे। नेता बताइन के अब तोहरिन बनाई सरकार राजि करी, अब तूं पंचे सब राजा है। गमैंही जनता पहिले कुछु नही समझिसि के सरकार आइ का। ऊ त राजा औ गौरमिन्ट जानति रही। पेटी मं बोट परा। पता लाग के हमरे बोट से सरकार बनिगै। पांच बरिस मं एक बेर ऊ राजउ आयें, जेनका मनई बोट दिहे रहा। उज्जर-बज्जर ओन्ना पहिरे, लाल बिम्म देंह मूंड़े मं टोपी। कहिन के गांउ में बिजुरी अई, सडकि बनी, लारी चली, नहरि बनी, बांधि बधी। दैउ बरसै न बरसै, दाना बिना केउ न मरी। ये हूं बेर हमका बोट दे।

गरामौ पंचाइत क बोट परा। पंच त पहिलेउ होत रहें। ऊ जनमै बडे घरे मं लेत रहें। अब बोटे से पंच सिरपंच होइ लागें। पंच पहिले भगमान कस निआउ करत रहें, अब केर पंच 'डाढी दिखे साढ़ी मुअ दिखे बेउहार' करै लागें, जाति देखि कै पंचाइत करै लागें, इ देखै लागें के ये हमका बोट दिहिन है के नही। पहिले तीन चारि बेर पूर पंचाइत बिना चुनाव लडेन बनिगै, औ सरकार गांउ केरि साहुति देखि कै पंचाइत क इनाम दिहिस। सरपंच के नांउ रूपिया मंजूर भै। इसकूलि, बिटनरी, पंचाइत-घर बनबावै केरि मंजूरी मिली। सिरपंच से अंउठा लगवाइ लिहिन। मेहनताना कुछु ओऊ पाइगें। ओनहू के पक्का बनिगा।

आगे चुनाव मं मनइन मं खुचुरि चली के सिरपंच पैसा खात है। ओनका येंह बेर हराबा जाइ। सिरपंच सगले बारडन मं आपन मनई खडा करिन। सब जातिन मं आपन संहिया बनाइन, पै चुनाउ हारि गें, ओनकर सगला संघिउ चुनाउ हारिगें। सिरपंच त रकतचिखा बाघ होइग रहें। ओनका भला कसि कै बिना आन क खाये अंउघाई लागै। जाति-जाति, घरे-घरे मं जहर बोबै लागें। ये के खीतिर सब जातिन के नेतन क बहिरे से अपने गांउ बोलबाइन। गांउ मं जाति केर जहर फइलइ लाग, पुरिखनि से साझे केर खेत-बारी बंटिगे। परिवार-कुटुम टूटै लागें। भाई-भाई अलग होइगें। लडिका बाप से झगडि कै परदेश चलेगें। अड़ोस-पड़ोस

केर उठब-बैठब बन्द होइग। पंचाइत अब तहसीली मं होइ लागी। औ तहसीली-मजरेठी बनिगैं। गांउ वालेन केर कमाई करियट कोट पहिरे गिट-पिट बोलइ बालेन के खीसा मं जाइ लागि। पेशी करबाबै मं पैसा लागइ लाग। जौने गांउ केर साहुति में डौरि भरे मं गनी जाति रही, ऊ अइसन नसान के गांउ घर-घर फूटि गें। एक-एक बोट खीतिर परदेश से गांउ वालेन क बलावा जाइ लाग। बोट गांउ केर सुक्ख लै लिहिस, शान्ति छीनि लिहिस।

इ जौन चौतरा कस टिकुरा देखात लाग है न, इ जादौराय क चौरा आइ। इहां गांउ भरे के लड़िकन मेहरियन क दवा होति रही। पंडा केर छड़ी जेके पिठाहे मं लाग जाति रही, ओकर रोग-बियाध हमेशा खीतिर दूरि होइ जाति रही। तोहरे बापौ क लडिकई मं बहुत बोखारि आवति रही। पंडा कै छड़ी दादू के उपटि आई रही करिहां मं। अतना सब बताइकै राम पदारथ बबा लम्बी सांसि लिहिन। अपने नाती कैत बडे दुलार से दिखिन, जौन हुंकारी भरत बबा से गांउ के विकास केर कहानी जकान-कस सुनत रहा। नाती दिनेश बहुत बडा मास्टर होइग है। बहुत पढा है, नागपुर मं नोकड़ी करत है। डाकडरी केरि किताब लिखै खीतिर अपने बाबू के गांउ आबा हइ। दिनेश क बाप लडिकैन से नागपुर रहै लागें रहा, औ उहैं घर-दुआर बनबाइ लिहिन। लडिका-गदेला भयें, पढाइन-लिखाइन, नोकड़ी पाइ कै लडिका अपने गिरस्ती मं लगिगें। बाबू कभौ गांउ लौटि कै नहीं आयें। दिनेश क कहिन के तोहरे डाकडरी केर विषय गांमै हवै। चले जा बबउ से मिलि लिहे तोहार कामौ पूर होइ जई। सब जानिउ लेइहीं के पदारथ केर नाति कइसन हं। हमार त जनम भूमि देखइ केरि रोजिन नहीं भइ। तोहार भाइउ नहीं गये, कम से कम येही आड़े तुहिन चले जा।

अस्सी साल केर बबा गांउ केर कांउ देखावत विकास केर पूर किस्सा कहिगें। सगले गांउ मं कहि आयें के हमार नाती आबा है, अतना पढे है जतना केउ नहीं पढिसि। सममोध नहीं भ। मेड़ौर मं नाती क लैगें। कहथं के नाती छाती चढ़त है। बबन क हमेशै मूलधन से बियाज जादै पियारि होति है। पदारथ कै छाती

नाती से खेलाबै क कलपत रहिगै। आजु नाति क पाइ कै ऊ बौरान हं। उ येहं बाति क मानै क तयार नही आंही के इ पगलई कै दिन क है, इ सुक्ख कइ दिना क है!

दिनेश गांवन के विकास के कहानी केरि किताब लिखत लाग हं। ओन के डाकदरी केर विषै इहै आइ। गांउ के विकास केर कहानी भला राम पदारथ से जथारथ के बताइ सकत है। गांउ केर सबसे सयान मनई आजु अपने नाती केर बियास बने हं। दिनेश चउआन हॅ, इ नहीं समझि पावत लाग हं के येका विकास कही के बेनास। महाभारत केर किस्सा कही के कलजुग केर परभाउ। दिनेश सोचत लाग हं के किताब लिखि कै हम शहर चला जाब, बबा, जउन महीना भर दुलराइन, अतनी बडी पोथी लिखाइन, ओनकर का होई! गांउ केर जउन लड़िका शहर चले गयें औ केउ गांउ कैत लौउटइ क नहीं सोचिन। दिनेश के पोथी मं दसखत करै वाले मासटर भले केउ और हों पै पोथी त बिना बबा के बताये आधिन रहि जात।

देवीशरण सिंह 'ग्रामीण'

बघेली कहानी

नओ घर

जागा हो! जगा न, अबै नहीं जाग्या!! कहि के फूला अपने पति श्याम सिंह की रजइया सरकाय लेत ही। श्याम सिंह करउँटा बदल कर स्वामै का नखरा करत है। फूला बिना मरम कै मीठ-मीठ हँसी हँसत अपनी टहल-वसार मां लग जात ही। फूला आज कउनौ बड़ी तैयारी मां लगी है। व जउन आपन मनसूबा बाजार जाँय का महिनन से बाँधे आय। बाजार मां ओही अपने का दोई धोतियाँ तो अपने मन की खरीदइन का रहो। पै सब से बड़ा उराव ओखे मन मा य आय रहो कि जउन व य नओ घर करैं के पहिलेन से अपनी पड़ोसिनिन के द्यारवा-सिखी अपने करिहाँ का करघनियां चांदी कै बनवावै का संकल्प कर लीन्हिस तै। व करघनिया कै सउख यद्यपि फूला के खातिर कउनौं सरग कै तरहूयां न होय रही है- काहे से कि ओही अपनी पहिलिन ससुराल से ई सब गहना - पाँवों के पइजना, कम को करघनिया और हाथन का बहुँटा बाजूबन्द और केहुँचन का छननी, अँगुरिन का मुँदरी औ नाके का नथनी चढ़ायेन मा आई रही है। ओखे सम्बन्ध कां अब चाहे कोऊ ओखे खातिर चे ही भाग्य का खेल कहै या कि ओखी अपनी जिन्दगी कै जरूरत। जैसे कि व खाता पीता घरै ओही छवाड़ै का परो तै। हुअन सास जउन ओही मिली तो बड़ी चिरविधिहाई औ चुगुलखोर रहै औ पतिदेव जउन रहैं उइँ रहैं टी.बी. के बीमार। औ साथै-साथ बड़े शंकालू औ अपनी मर्दानी के तेजखाँ, जउन रोज डंडा लये डेहरिन ताके रहै। मजाल कि बाहर कै कउनौ हवा उनके घरै घुस जाय औ उनके घर का मंसा बाहर मुन्नाय जाय।

फूला अपनी लड़कइन से अइसी दीवालन के बीच तो पुलिन नहीं रही, व तो गाँव की खुली हवा मां खुले वातावरण के स्वच्छ शिक्षा जउन स्वरूप पाइत

तै। अपने स्वरूप स्वभाव औ मिलनुआ व्यवहार के रहतेन फूला का व छिलबिलिन्हा परिवार के घर मा बीमार पति के साथ जिन्दगी बिताउब नरकौ मां रहै से ज्यादा कठिन लग रहौ तो/ओही ऐ पहिलेन न बार हुअन महिला बाद जइसे लउट कै बाप के घरै आई फेर नहीं ससुरे गै। ऐसी दसै मां ओसे उइँ ससुराल बालेउ आपन व सब गहनौ गूँठी उतरवाय लइगे ते।

हियन श्याम सिंह के शरीर जवानी औ जात के हिसाब से तो फूला आपन ठीकै जोड़ी पायगै ती पै अबै ओखे भीतर अपने उइँ गहनन कै कमी ओही रातौ दिन खटकत रहै। ज्याखर प्रस्तापौ व श्यामसिंह से अपने खुसी के क्षणन मां करत रहो करै।

पै श्यामसिंह का करघनियां बनबामै का तो मनौ न रहैं ज्याखर कारण कुछ तो यहै रहो कि पहिलेन का लओ दओ वाखर हँथुघरा अबै नहीं पटो तै! औ जउन कर्ज सोसाइटी से लीन्हिस तै ओहू की सब किस्तै बाकिन रहैं- औ खेती करैं का जउन दोइ ठै बरदा रहैं उनहूँ मा एक बूढ़े आय। त श्याम सिंह तो अबै यहै मगै मन स्वाचत रहै- कि लेईउ पूँजी तो अपने पास कुछू नहिं आय, वहै दोइ-चार खांडी अनाज घर मा है, और यहै चार खँडुल्ली के जाघा है, त ओखेन बूते कउन परबन्ध बाँधै या न बाँधै।

पै श्यामसिंह मनै मन स्वाचै यहौ कि ई सब कारण तो गमइन मा हियन रहेन आवत हे और मनई ई अपने मूड़े पर आये सबै काम पूर करत है, चाहे तो तीरथ होय यं होम यज्ञ या कि काज विआह औ मरब जरब। चाहे कर्ज लइके होय पै होत है। ये ही तरह काजे गमनेउ मा गहनानूठी तो कुछू बनबइन का परत है पै अरचन तो ये मा सब से बड़ी ये आय है कि अपने परिवार मा जउन पुरखन से हियन चलि आओ है कि मेहँरियाँ हमारे घरन की ग्वाड़न भा छोड़ कै, अपने ऊपर वाले आंगन मा चाँदी के गहना नहीं पहिरिन, जब पहिरिन त सोनेन के।

औ मैं (श्यामसिंह) या फूला का राख कै वइसौ अपने परिवार मा अबै

अजातै आय हौं औं अगर चलौं-चलन आपन बदली जात ही तब तो फिर आपन व जातै मिटी जात ही।

यद्यपि भलै गाँव के डोकरन की नजर मा व उनके हिसाब से मोर जात ओई दिन न रहिगै रही होय कि जउने दिन से फूला मोरे घरै आई, पै मैं तो अबै अपने आचरण व्यवहारन मा अपने बाप कै जात बनायन रहो चाहत हौं।

औ फूला एक दिन अपने भँडवा बसनत कै सफाई कर के अपने व घर की टहल वसार से रीत कै श्यामसिंह का फेर गोहरावत ही- तुम अबैं नहीं जाग्या हो, तुहार गोरूआरू मझिआरूं सबै डरी हैं। केतनीदार उठिहा, कबै का करिहा। औ कबै चलिहा। सब कोऊ बजारै जाँय लाम, तमाम गाँव चलोगा औ तुम अबै बिस्तरै से नहीं उठया।

"जाँय दे! तोही गाँव के मनइन के साथ जाँय का है? कि मोरे साथ?" श्यामसिंह परेन परे कहत है।

"काहै? गाँव के मनइन के साथ हमहीं गइलौ चले मा पाप है?" फूला हँसत-हँसत उत्तर देत ही।

"अबै तोहू का कउनऊ पाप पुन्य से मतलब है कि अपनी मउज से?" श्यामसिंह अपने पुराने ख्यालात के अनुसार व मुँह आई बात बिना सोचे विचारे कहि दयात हैं।

फूला के मन मा य बात से कुछ धक्का जइसे लाग पै व सहि कै रहिगै। यद्यपि होइन यहौं ओखे ध्यान मा आओ कि अगर कउनौ पाप परिल्यापों हमारे इनके बीच मा हैं त व दोनों के साक्षात् काय। याखर ख्याल चाहे श्यामसिंह का भले न होय, काहे से कि पुराने जमाने मा से अपने का बड़े मनई मानिन ही त उनखर यहै ढंग ढर्रा रहो कि छोटे मनइन कै जिन्दागिउं चाहै उनके भेंट चढ़ जाय पै उँइ वाखर ख्यालौ भर न राखै औ बड़े मनइन के पापौ करम से जो कहूँ छोटे मनइन का भला होइ जाय त उँइ वाखर पूरा अहसान बनाय लेंय।

श्यामसिंह आपन आँखी मींजत बिस्तर से उठत है औ अपने बरदन का बाहर बाँधत है, उनही भूसा सानी दिन भर के खातिर बनावत है, औ अपने पड़ोसी से कहत है - "रामू भाई! आज हमारेउ बरदन का तुम दोपहर कै पानी सानी दै दया, आज हमही थोड़ी बाजार लौ आय जाँय का है।"

फिर श्यामसिंह फूला के ठाँय जाय कै थोड़ी मुँह बनाय के कहत है - "बड़ी बखरी की बड़ी मम्मा से नहीं पूँछ आई री? कि करघनियाँ हमही पहिरै का हात है कि नहीं?

"उँइ पन्चे नहीं पहिरती आंय त का पूंछैं का है!" फूला कुछ अनमन होइके बोली।

"त जब उँइ पन्चे नहीं पहिरती आंय, पै तै पहिरिहे काहे से कि तैं अबै जउन आहीं, वहै रही उइहे। ठीकै आय सयान किगे हैं- जे जहाँ पइदा ह्वात हैं तवन के गुन ओखे नहीं छूटैं।" श्यामसिंह य सब एकै साँस मा कहिगा। यद्यपि श्यामौ सिंह का काज अबै तक ये ही से नहीं होई पाओ रहो कि श्यामसिंह की महतारी का उनके बाप बलवान सिंह फौज की नौकरी से रिटायर भये पर होइन बाहरै से ओही साथै लै आये ते, जेखी जाति पाँति का पता हियन काहू का नहीं रहो। पै बलवान सिंह औ बाखर बेटा श्याम सिंह अपनी पुरखाती जाति का घमंड काहू से कम नहीं राखत रहे।

फूला का ई सब बातैं अइसन लग रही ती जइसन कहूँ चाउर की खरी खात मा चुनककरी काहू के दाँतन तरे पर जाय, पै मुँह से कुछ न कहि सकैं, मनै मन मसोस लेय।

जउन व सोचित तै कि य नओ घर कर कै व अपने मउज कै जिन्दगी जियी, पै य न सोच पाइतै कि जब तक समाज न बदलो त केवल घरमरे बदले मा अपनी सारी मन की मउज नहीं मिलै। हालांकि व अपने विआह का पूरा बन्धन तोड़ कै जब व नओ घर कीन्हिस त ओही यहौ जानकारी नहीं रही कि

हियन ओखे ऊपर अपने शरीर मा मन चाहे गहनौं पहिरै मा बन्धन होई जई।

यहै सब गुनत धुनत फूला रोटी भरता बनाय के श्यामसिंह के साम्हू, ल्याय के धर देत ही। औ अपना अपने अँगने मा जाय के ठाढ़ होइ जात ही।

श्यामसिंह खाना खाय के कहत हैं - "चल न! तैयार न हो, अब काहे काय देर करती हा।"

पै फूला नहीं बोलैं, वाखर दिल बइठगा, मुँह फूल आओ तै।

श्यामसिंह बेर-बेर कहत है और चाउर की दोनों उँइ गठरिया गठियाय कै उठाय कै बाहार लै आवत है, फिर फूला से आय के पूँछत है - "काय आय? का चाहत हई, काहे नहीं चलती।"

पै फूला पाछे फिर कै बइठ जात ही। आखिरकार श्यामसिंह आपन गठरिया उठाय कै बजारै चलो जात है। औ बाजार मा चाउर बेंच कै, दोइ धोतिया चौकड़िया छापन की लइकै दिनै दिन घरै लउट आवत है।

फूला बाहर से उठ कै थोड़ी देर मा अपनी खटिया पर जाय के ओढ़-बेढ़ कै पर राहत ही। श्यामसिंह उलट-पउट कै फूला से ब्वालै कै कोशिस करता हैं, पै व आपै-आप तिरिया हठ के स्वभाव से कुछ अउर गहिर मौन धारण करत जात ही।

श्यामसिंह अपने काम बूत से निपट कै, खाँय-पियँ का कहूँ ठीक-ठिकाना न देख कै ओ घर झगड़ा न बढ़ावै की ख्याल से व रोज चुप चाप बस दुबुक के सोय जात है।

दूसरे दिन बड़े सकारेन उठ कै श्याम सिंह आपन गोरूआरू बछिआरू करि कै रीत गा। पै फूला अबहूँ तक नहीं उठी, जबकि हर रोज व आँगन उठ जात रही। श्यामसिंह बिना कउनउ बाद-बिबाद बढ़ाये अपने काम मां लगो रहे। औ अपने माल मवेसिन के चारा पानी का परबन्ध कने कै बाद जब दोपहर खाना

खायँ के समय मा भीतर आवत है त फूला रजइया के नीचेन परी देखात ही। श्यामसिंह का गुस्सा कुछ तो बढ़ी पै तबहूँ कुछ सोच विचार कै, व घर के भीतरै से गुड़ ल्याय कै, वहै खाय के पानी पी ल्यात है, औ अपनी समझ से टरबा टार कै हारै खेतै चलो जात है। साँझ के लाउट के, अपने गोरूआरू चारा से फुरसत होइके, जब भीतर पहुँचत है त देखिस कि फूला अबहूँ बिस्तर नहीं छोड़िस।

मन से तो खिसयात है, काहे से कि भूँखौ लगी है पै ओही अबै एक उपाय अउर सूझत है, कि आपन भोजन तो व फूला के आवैं के पहिलेउ अपनेन हाँथे बनावत खात रहो हैं जो कहूँ आजौं आपनिन भूँख की गरज मा बनाय लेय। यहै सोच कै चटपट श्यामसिंह रोटी तरकारी तैयार करत हैं औ दोई थरियन मा परस कै फूला का गोहराय गोहराय थक जात है, पै फूला न होय कि टस की मस होय।

इतनेन मा श्यामसिंह कै गुस्सा भभक उठत ही - व बड़बडाँय लाग - "कि मँयउढ़री का राख्यौं, छाती मा पीपर आय जमाय लयौं। बड़े-बड़े घरन की मेंहरियाँ मैं देख्यौं, पे अइसन भूँभुरछान करैं बाली न देख्यौं। हमार बुढ़ऊ कक्का ठीकै आय कहत रहे कि इनके जब तक चभुअन मा न घल्योत ई साम्हू नहीं रहैं। कहाँ तक धीरज धरै, हद्द होइगै। आज कल के पढ़इया कहत है कि तुलसीदास ठीक नहीं लिखिन - "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।" यहै कहतै-कहत श्यामसिंह आपे से बाहर होइ जात है, औं आँगन मा पड़ी मोगरिया उठावै का व ओही घोर अँधियारे मा बाहर निकरत है, जइसे व घोर अँधियार अपने चारो ओर द्याखत है अचानक व अँधियारे कै ख्याल ओही आय जात ही जउने कि रात मा फूला अपने व बिआहे घर व आदमी का विश्वास छोड़ कै, अपने जीवन के खातिर सिर्फ श्यामसिंह पर विश्वास कीन्हिस तै। अइसै अँधियारे मा औ अपने बापौ महितारी का भरोसा छोड़ कै श्यामसिंह का यहै हाँथ तो पकड़िस तै जउने मा आज मोगरिया ही। य ख्यात अउतै श्यामसिंह के शरीर मा थरथरी आय जात ही- ओही तुलसीदास कै व एक ठै चौपाई नहीं सगली रामयण याद आय जात ही। व मनै मन स्वचैं लाग कि मैं य अबला पर हाँथ

चलाय कै कउन बहादुरी आय कर रहे हौं, मैं उँइ रांजा दसरथ से बड़ा पुरूषार्थ व समझदार तो नहिं आहूँ। इतनेन मा श्यामसिंह का सगला शरीर ढील पड़ जात है हाँथ कै बिना गहनन के उइँ जिन्दगी का जिन्दगिन नहीं मानै।" त गुन्नु बोलो कि कहाँ गयेन भाभी, आज कल कै सबसे बड़े व नई फैसन य आय कि पर्दन मान घुसी रहेन। पुरुषन के साथ पढ़ाई लिखाठ से लइकै जिन्दगी के हर कामन मा साथै-साथ औ आँगे रहैं का है। समझदार औरतन के खातिर तो गहनेन का जमाना अब बहुत पीछे रहिगा। घुँघटा औ ई गहना गुलामी के समय की सुन्दरता आँय। आज कल तो समान फेसन, समान काम और मनसेरून के समान अधिकारन व वेतन कै लड़ाई औरतें लड़ रही है कि गहनन कै? आजकल तो पति-पतिनन के सम्बन्ध कै सही पहिचान, उनकर आपस का प्रेमै होत है।

जउन सुनतै फला आपन दोनों हाँथ जोड़े सामनेन आयगै - औ बोली कि मुन्नु राजा! मैं माति कि हाँ कि महीं अपराधिन हाँ। औ मैं वोखे खातिर क्षमाँ माँगे लेत हौं। पै मैं इहाँ समझिउ गयेउं कि पुरुष जब स्त्री के खातिर समर्पित होई त स्त्री ओसे ज्यादा ओखे खातिर समर्पित होई। पै मैं एक सवाल अपना पंचन से करि हाँ कि आखिर य बखेड़ा खड़ा कैसे भा। मैं पूँछतेउ है कि पुरुष अगर पुराने जमानेन की अकड़ व जातियन की सामंतिन मान्यतन मा जियी त स्त्री कइसे ओखे साम्हू पुरानी मान्यताओं का छोड़ पाई, औं कैसे ओखे प्रति समर्पित होई? पुरुष औ स्त्री का उइँ पुरानी मान्यता साथै-सथ दिन से निकारै का परिहैं।" तबहिन भला है।

"भाभी, धन्य हो! धन्य हो, जो मैं कालेज में नहीं पढ़ पाया, वह आपसे पढ़ लिया।" मुन्नू ने कहा।

ग-- बघेली लोककहानी

बघेली की लोक कथायें, बघेली साहित्य, संस्कृति परम्परा, मान्यताएँ, आस्थाएँ, रीति-रिवाज, तिथि-त्यौहार, एवं बघेली उत्सवों की झॉकी प्रस्तुत करती हैं। बघेलखण्ड के अनेक ऑचलिक साहित्यकारों ने बघेली के दुर्लभ लोककथाओं का संकलन सम्पादन एवं प्रकाशन करके बघेली के भण्डार को समृद्धि श्री किया है। इस दिशा में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी, लखन प्रताप सिंह उरगेश, श्रीमती विनोद तिवारी, डॉ. सुधाकर तिवारी तथा देवीशरण सिंह ग्रामीण, आदि ने सराहनीय कार्य किया है। इधर नये प्रयोगधर्मी, बघेली के समर्पित रचनाकार अंजनी सिंह सौरभ ने मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल के दिशा निर्देशन में बघेली की 25-30 दुर्लभ लोक कथाओं का संकलन करके एक पाण्डुलिपि तैयार करके शासन स्तर से प्रकाशित होने हेतु शासन के आदेशानुसार प्रस्तुत कर चुके हैं। लोक कथाओं के उक्त संग्रह में कहानीकार सौरभ ने मात्र ऐसी कहानियों को प्रतिष्ठित किया है, जो पूर्णतः राम-सीता दशरथ-कौशिल्या, आदि के जीवन चक्रो पर केन्द्रित हैं। सारांशतः इस प्रयास को बघेली के साहित्यिक अवदान के षरिपेक्ष्य में एक महनीय कार्य माना जाना चाहिए।

इसी प्रकार डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने दक्षिण मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र नागपुर संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के निर्देशानुसार बघेली की 50 दुर्लभ लोक कथाओं का संकलन भाषा टीका सहित किया है। उक्त लोक कथायें बघेल खण्ड के दार्शनिक स्थल लोक परम्पराएँ, लोक रीतियों और लोक मान्यताओं को उजागर करती है, साथ ही बघेली लोक संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व करती है। डॉ. सरस ने बघेली लोक कथाओं का एक दस्तावेजी पाण्डुलिपि तैयार कर

महाराष्ट्र सरकार को प्रकाशन करने हेतु प्रस्तुत किया है। इस प्रकार से बघेली की बाचिक परम्परा को जीवन्त बनाये रखने के लिये तथा बघेली की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता को स्थायित्व प्रदान करने के लिये डॉ. सरस द्वारा प्रशंसनीय कार्य सम्पन्न हुआ है। इस दिशा में डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी द्वारा संकलित कहानियों में से कुछ कहानियों की वॉनगी उद्धृत है।

डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी

आय ता अधिविआही

अइसे-अइसे एक राजा रहैं। राजा केर महल सात मरातिम केर रहै। उनखे एकठे बाबी रहै। बाबी अपने गोंई के साथ फरिका चउगान मां खेला करैं। राजा के हाथी घोड़ हथ सार मां अउ तोता मइना पिजड़ा मॉ रहैं। महल केरि राजकुमारी अबै नबालिक रहै। उआ उगना-चउगान बाग-बगिया मां सतरंगी गेंद खेलबा करै। कच्ची उमर होंय के नाते बाबी का कउनौ मेर केर डेर-भव न रहै। एक दिन अइसन कुजोग आयगा कि बाबी केरि गेंदि उचिट के बगिया के नेरे कुँइया मां गिरिगै। अब का होय येसे खेल थमिगा। बाबी केरि गोंइया अनमन हो गईं। राजा केर बाबी सोचिन कि अब हमका दाव न मिली। चारिउ कइत निहारिन ता एकठे बसुहार देखान। उआ सुअरी चराबत रहै। राजा केरि बाबी बसुहार से कहिन-हमार गेंद कुँइया मॉ गिरिगै है ता अपना निकारि देई। बसुहारौ टोरइल रहै। न बाबी जनबुध न बसुहार। बसुहार कहि मारिस- गेंद ता हम निकारि देब कुँइया से पय हमरे साथ काज करै का परी, मंजूर हबै? राजकुमारी का जानैं का आय काज-विद्ध, उँइ कहि मारिस-मंजूर हबै। बसुहार कुँइया से गेदि निकारिस अउ उँइ खेल खेलै मां परि गईं। बसुहार ऑखी गड़ाये फूल कस कोमर जोंधइया कस सुन्दर राजकुमारी का देखत रहिगा। उआ देखैं मा एत्ता परिगा कि ओखर सुअरी कहॉ चलीं गईं ओखा पता तक नही लाग।

राजकुमारी कुछ दिन मां समय जोग भईं। राजा उनखे निता सुरजि कस बर खोजि दिहिन। बिआह केर मुहूरत बना। बरात दुआरे मां आई। राजकुमारी केर बिआह होंय लाग। राजा-रानी सब खुसी के मारे फूले न समात रहें। सलगे

महल मां उत्सव केर उजियार फइलगा। सलगी प्रजा खुसी के मारें नाचै-झूमैं लॉगे। भितरै भीतर बाबिउ खुस रहैं। महल बन्दनबार से सजाबा गा फूलन केर माला चारिउ कइती टँगाबा गा। दुलहा राजा सोने के गहना से सजा-धजा हॉथी मां सबार रहैं। उनही हाँथी से खाले उतारिके मड़बा के नीचे मगरोहन बेदी कलसा चउक के नेरे बिराजा गा। हॉथी घोड़ सब नाचत रहैं। मेर-मेर बाजा, डफला, नगरिया, सहनाई, बाज रहैं। बजगीरन मां उआ बसुहारौ सामिल रहै जउन कुँइया से गेद निकारिके राजकुमारी का गाइस ते अउ अपने साथ काज करामै केरि हामी बाबी से भरबाय लिहिस ते। बसुहार सहनाई बजाबै अउ सहनाई से इहै अबाज निकारै कि- "आय ता अधिबिआही पै राजा बिआहे लिहे जाय।" राजकुमारी सहनाई के धुनके गाना का समझै। मनै-मन छटपटाय, कसमसाय अउ करसी कस भितरै भितरै गुँगुआय। बाबी का रहाई न परै। काहे कि राजकुमारी केर जब-जब बसुआर से भेंट होत रही तब उआ सुधि देबाबत रहा हबै कि आपन शर्त पूरा करा। राजकुमारी सुनिके बहटिआय देय करै। होंत करत राजकुमारी केर बिआह भा, बाबी बिदा होइके ससुरे गईं। येंह कइत बसुहार उदास रहैं लाग।

एक दिन बसुहार घर गा, रॉपी लिहिस औ पता लगाबत राजकुमारी के ससुरे पहुँच गा। कूदत-फॉदत खिरकी टोरत-फोरत सतमंजिला मां जहॉ राजकुमारी केर रहाइस रहै बसुहार पहुँचिगा। राजकुमारी के महल से आबाज गीत मां अपने आप आमै लाग-

"ससुर जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

पहिल केमरिया फारे डारय बसुहार।

सासू जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

दूसर केमरिया फारे डारय बसुहार।

जेठ जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

तीसर केमरिया फारे डारय बसुहार।

जेठानी जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

चउथ केमरिया फारे डारय बसुहार।

देबर जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

पॉचउ केमरिया फारे डारय बसुहार।

देउरानी जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

छठौ केमरिया फारे डारय बसुहार।

राजा जी के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

सातॅउ केमरिया फारे डारय बसुहार।

राजकुमारी ससुर, सास, जेठ, जेठानी, देवर, देउरानी, राजा सबका एक-एक कइके जगाइस, गोहारि मारिके चिल्लान पय उनखे गोहार का कोऊ नही सुनिस। बसुहार राजा का मारि डारिस अउ रानी का अपहरन कइके चल दिहिस। गॉव मां जब रानी का बसुहार भगाये लये जाय तब रानी एक बेर फेर गोहारि मारिन

गॉव के पहरू सोउते हये कि जगते हये,

राजा का मारिके रानी भगाये लये जाय बसुहार।

बसुहार रानी का उठाय लइगा अउ एकठे रखत चिखा कूकुर के पहरा मां रानी का कइ दिहिस। ओंह कइत राजा केर चिता बरै येंह कइत रानी सॉसत मां तड़पत रहैं। एकठे माटी केर दिया लिहिन, ओमा अरसी केर तेल भर दिहिन अउ कूकुर के ऑगू धइ दिहिन। कूकुर दिया केरि तेल चाटै लाग तब रानी भागत-भागत आईं अउ राजा के चिटा मां कूँद परीं। बसुहार का जब पता चला कि रानी

ता भाग गई अउ राजा के चिटा मां कूदि परी तब बसुहारौ दउड़ा-दउड़ा आबा अउ उहौ उहै चिटका मॉ कूदि परा। सबसे खाले राजा, फेर रानी, फेर बसुहार चिटका मां कूदिके भसम होइगें।

कुछ दिन मां इया घटना का सब बिसरिगें। चिटका मां कुछ साल बाद तीनठे बिरबा जामें एकठे आमा केर, दूसर केतकी केर, तीसर बॉस केर। अगल-बगल आमा अउ बॉस अउ दूनउ के बीच मां केतकी केर पेड़। बगइचा मां जब माली पेड़ पउधा सीचैं आबै तब केतकी के बिरबा से आबाज निकरै-

ओ दाऊ जी के मलिया, अमबा का सींचा अउ केतकी का सींचा पय बॅसबा का दिहेय कटाइ।

ओंह कइत बॉस से अबाज निकरै-

ओ दाऊ जी के मलिया, केतकी का सीचें, अउ बॉस का सीचे, पय अमबा का दिहे कटाय।

माली एक दिना जायके राजा से बताइस कि जब हम बिरबन का सींचित हैन तब केतकी अउ बॉस से आबाजि आबति है। राजा एक दिन बगिया पहुँचे, ओऊँ सुनिन येसे तीनौं बिरबा कटबाय दिहिन। तब आमा से राजकुमार, केतकी के बिरबा से राजकुमारी और बॉस से बसुहार निकरा। राजा बसुहार का जमीन मां गड़बाय दिहिन अउ राजा-रानी का पालकी मां बइठाइ के महल मां लइ आइन।

कउहॅकनी

एक राजा के दुइ रानी रहैं। बड़ी रानी सयान रहैं, पय छोट रानी जबान सुंदर रहैं। छोट रानी बडी रानी से जरै-भुकरैं काहे कि ओनखे पॉच-पॉचठे राजकुमार रहैं अउ एकठे राजकुमारी/ छोटकिया रानी के भीतर हरदम लकचा कस इया बाति चुरै करै कि राज-पाट बड़ी रानी के राजकुमार पइहैं। हमरे ता अबै लडिकै नहिं ऑय जो कबहूँ होइहै ता राज पाट न पइहैं। छोट रानी रोज बड़ी रानी

अउ राजकुमार केरि खिलाफत राजा से बताबै। राजा केर मन चित्त सुनत फूटिगा। राजा खिसिआयके एक दिन पॉचउ राजकुमार अउ राजकुमारी का मरबाय डारिस अउ बड़की रानी का बगिया मां "कउहॅकनी" बनायके खदेड़ दिहिस। अब बड़की रानी जब राजमहल से निकारि दीनगै ता भिखमंगी होइगै औ छोटकिया रानी खुसी होइगै।

कुछ दिना बाद चिटका माँ आमा के पॉचठे पेड़ जामि आयें और एकठे चमेली केर फूल जाम। चमेली के फूल से चिटका का सलगा गॉव महमहॉय लाग। जब इया महक राजा के नेरे तक गइ तब राजा माली का बलबाइन औ कहिन-चमेली केर फूल टोरिके लइ आबा। जब माली फूल टोरैं बगिया मां घुसा ता पॉचौ आमा अउ चमेली केर बतकहाव सुन लिहिस। चमेली पॉचउ आमा भाई से पूछिस-

"ओ पॉचउ भइया अमबा

का कहिउ चमेली बहिनी?

दाऊ केर मलिया फूल टोरन आबा

टोरन देउ कि नाहीं?

अक्कास का जा बहिनी अक्कास का।"

भाईन केर आदेस पाइके चमेली एतना उपर होइगै कि माली फूल टोरै मां असमर्थ होइगा। माली दउड़त-दउड़त राजा के नेरे आबा अउ सब हाल राजा से बताइस। राजा सब प्रजा का लइके बगिया मां पहुँचिगा। हुआ देखिन की सुन्दर-सुन्दर आमा केर पेड़ चमेली केर फूल लगा है। राजा से रहाई नही परी अउ जइसै फूल टोरै का हॉथ बढाइन तइसै आबाजि आई-

"ओ पॉचउ भइया अमबा

दुसमन फूल टोरॅइ आबा

टोरै देउँ कि नाहीं?

अक्कास का जा बहिनी अक्कास।"

कोऊ चमेली केर फूल नही टोरि पाइन तब "कउहॅकनी" का बलाबा गा फूल टोरै खातिर। तब चमेली पूँछिस-

"ओ पॉचउ भइया अमबा

अम्मा फूल टोरै आई

फूल टोरै देई की नाहीं?

झर परा बहिनी झर परा।"

महतारी केर अँचरा फूल से भरिगा। सब देखिके चउगाय गें कि राजा फूल नहीं पाइन अउ कउहॅकनी के अचरा फूल से देखतै देखत भरिगा। राजा का सब किस्सा सुधि आइगै। राजा मनै मन खूब लजाने। पॉचउ आमा के बिरबन का कटबाबा गा ता पॉच राजकुमार निकरे। चमेली केर पेड़ कटबाइन ता राजकुमारी निकरी। राजा कउहॅकनी का महल लइगें अउ फेर रानी बनाइ लिहिन। राजकुमारन का राज-पाट सॅउप दिहिन। राजकुमारी केर राजकुमार से बिआह कइके बिदा कइ दिहिन। राजा-रानी महल मॉ रहै लागें। किस्सा गा बुताय। न सुनइया केर दोख न बतबइया केर दोख।

घ–बघेली शब्द–कोश

परम् बघेली प्रेमी एवं बघेली के मूर्द्धन्य कवि डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने **बघेली शब्द-कोश** का लेखन किया है जिसमें लगभग 10867 बघेली के शब्द संग्रहीत हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति संचालनालय से वर्ष 2009 में हुआ है। शब्द-कोश में अवर्ग से लेकर सवर्ग तक के बघेली दुर्लभ शब्दों को रखा गया है। प्रत्येक शब्दों का अर्थ एवं वोध ग्राम्य शैली में उनकी सटीक ब्याख्या प्रस्तुत की गई है। आज की भाग-दौड़ एवं पाश्चात्य संस्कृति के चकाचौधी प्रभाव से जहॉ हमारी लोक संस्कृति एवं घर आगन की बोली विलुप्त होती जा रही है वहॉ इस प्रकार के कार्य महती भूमिका का निर्वहन करते हैं।

डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने बघेली शब्द कोश रचकर आंचलिक बोली की जो सेवा की है वह साहित्येतिहास में स्मरणीय रहेगा। डॉ. सरस का यह कार्य भाषा के क्षेत्र में एक अनूठा शोध पूर्ण प्रयोग हैं। ऐसा पुष्ट अन्वेषण इतिहास के लिये एक दस्तावेजी प्रमाण हैं। बघेली शब्द कोश के वैशिष्ट्य को आरेखित करते हुये डॉ. रामप्रसाद मिश्र नई दिल्ली नें भूमिका लेखन के संदर्भ में लिखा है- **"बघेली में गहरी पैठ के कारण सरस जी ने सार सम्पन्न अर्थ दिये है। केवल शब्द पर शब्द कोश में नही ठोका है। अतः यह कोश रोचक भी बन पड़ा है। अंग हिन्दी अंग बघेली की पुष्टि से सशक्त हुई है।"**

बघेली शब्द कोश कें लेखन में रचनाकार डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने लेखन के दायित्व का निर्वहन करते हुये बघेली शब्दों के सम्मुख संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, अव्यय, स्त्रीलिंग, पुलिंग, एक बचन, बहुबचन, आदि का उल्लेख भी किया है जो मानक शब्द कोश के लिये आवश्यक होता है।

बघेली शब्द कोश की महत्ता एवं आज के परिवेश में आंचलिक शब्द कोश के औचित्य को स्पष्ट करते हुये प्रख्यात शिक्षा विद डॉ. रामप्रसाद मिश्र लिखते है- शब्द-कोश भाषा की शक्ति के श्रेष्टतम घोतक होते हैं। अक्षर तो ब्रम्ह के सदृश्य नाम से ही अक्षर होते हैं। शब्द भी "गागर में सागर" होने से एक पूरा विम्ब खड़ा करने के कारण ब्रम्ह वर्गीय ही है। अक्षर निराकार हैं तो शब्द साकार। प्रत्येक शब्द की अपनी अंस्मिता होती है, अन्य शब्द उसका स्थान नहीं ले सकता है। अतः अक्षर की आराधना और शब्द की साधना बाङ्मय तप ही है। डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने यह तप किया है जो सदा याद रखा जाने योग्य है। (बघेली शब्द कोश की भूमिका से)

डॉ. रामप्रसाद मिश्र के उपर्युक्त मत से सहज ही स्पष्ट होता है कि बघेली की शब्दाबलियों का कोश आज के परिवेश की माग ही नही अपितु आने वाली पीढी के लिये एक उपहार होगा। बास्तव में बघेली शब्द कोश आज तक नही लिखा गया। इसलिये 'सरस' का यह नया श्रम साध्य ग्रन्थ अवश्य ही हृदय ग्राह्य है। नये सिरे से नये कार्य को पूरा करना एक चुनौती होती है। लेकिन डॉ. सरस का बघेली कवि इस दुरूह कार्य के लिये संकल्परत हुआ और अनुष्ठान को ग्रन्थ के रूप में पाठको के लिये प्रस्तुत कर दिया। उनकी इस महनीय प्रस्तुति के संदर्भ में भूमिका लेखक डॉ. रामप्रसाद मिश्र भाषाविद एवं समालोचक नई दिल्ली लिखते हैं- "जैसे अवधी कोश के कारण रामाज्ञा द्विवेदी समीर, ब्रज भाषा कोश के कारण चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा के नाम हिन्दी साहित्येतिहास में अमर हैं, वैसे ही बघेली कोश के कारण डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस का भी नाम होगा, ऐसा मेरा प्रत्यय है। जिसका आधार आपके सामने है। बघेली साहित्य के विकास के साथ-साथ बघेली शब्द कोश का महत्व बढता ही जायेगा। और भविष्य में यह साहित्येतिहास का अंग बन जायेगा। (बघेली शब्द कोश की भूमिका से)

डॉ. मिश्र की इस अभिव्यक्ति में बघेली शब्द कोश के प्रति एक समालोचनात्मक दृष्टि है और वे शब्द कोश के लेखन प्रकाशन और उपादेयता

से विज्ञ-भिज्ञ हैं। सच मायने में शब्द कोश का लेखन कोई बच्चो का खेल नहीं है। इसके लिये एक जुझारू जीवन्त प्रतिभा और भाषा ब्याकरण का जानकार चाहिए। बघेली को डॉ. सरस जैसा संघर्षशील हाथ मिला और बघेली शब्द कोश का परिश्कृत एवं परिमार्जित संस्करण पाको के हाथ आ गया। सारांशतः यह डॉ. सरस का प्रदेय बघेली भाषा एवं साहित्य के लिये एक अद्वितीय माना जा सकता है।

बघेली कोशकार डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अकारादि क्रम मे कोश की मानक परिधि में शब्दो को प्रतिष्ठित करने का सफलतम प्रयास किया है। संक्षेपतः डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस द्वारा विरचित बघेली शब्द कोश एक दस्तावेजी एवम् अनूठा प्रयास है। बघेली साहित्य के विकास हेतु इस विशेष अवदान को बघेली साहित्य का इतिहास युगो-युगो तक स्मरण करेगा, और आने वाली हमारी पीढी कोशकार को आभार ज्ञापित करेगी। बघेली भाषा पर किया गया यह पुष्ट कार्य बघेली साहित्य के भण्डार को समृद्ध श्री करता है।

डॉ. सरस द्वारा विरचित बघेली हिन्दी शब्द-कोश के प्रकाशक-संचालक संस्कृति संचालनालय मध्यप्रदेश शासन भोपाल है जिसका प्रथम संस्करण वर्ष 2009 में शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय भोपाल से मुद्रित है। उक्त मानक बघेली शब्द कोश में कुल 304 पृष्ठ हैं। बघेली शब्दाबलियों की कुछ वॉनगी ब्याकरणीय मानक विन्दुओं के आधार पर यहॉ उद्धृत करना समीचीन होगा। चन्द बघेली की शब्दावलियॉ अवर्ग से उद्घाटित हैं।

अव्यय अइसन, अइसा, अउर, अजुयै, अथैय, अधबेरिया, अबहिनै, अबा, अरा, अमिस, खमिस, अरारा, असमैं, अस, आनेकइत, आनतरा, आकर-दोहर, अकरूँ।

विशेषण अँइचड़, अट्टाटोर, अटर्र, अधबाउर, आड़र, अधभेसड़, अधबिलोरा,

अमारख, अमचोहिल, अलोन, अनोय, अनसोहित, अनमिल, अनिआर, अनबॅइता, अपरोजिक।

क्रिया अइड़ाब, अॅइब, अॅउजब, अउरब, अगिलब, अनमासब, अनखाब, अनझब, अहटोटब, अरोरब, असरब, अनकब।

क्रिया विशेषण अइॅड़ब, अॅउधाउब, अघाब, अन्टागुडगुड़, अनूतर, अलथ-कलथ, अरछाउब, आबा-जाही, आयतो, उकिब, उदकब, उतुहब, अइढ़ब।

संज्ञा पुलिंग अउसर, अउसेर, अगाध, अउना, अउटा, अॅगरा, अढबइया, अदहरा, अढहरिहा, अमचुर, अमाबट, अन्तस, अलगा।

संज्ञा स्त्रीलिंग अइली, अॅइठी, अखइनी, अॅकडी, अकनइया, अॅगउही, अजिआउर, अजमाइन, अॅजुरी, अरगसनी, अमाइन, अधबाई, अमहरी, अमारी, अरई।

बघेली मुहावरा अजीरन, अभाबट, आगी के पुंज, आल गुलूगुल, अलबी-तलबी, अलहन, अगियाबइताल, उक्सुर-पुक्सुर।

सर्वनाम अपना, आपुन, आपुस मां, आपरूभ, इहै, इहैं, ईपचे, उआ, उॅइ, इनखा, इआ, उनहीं, उनखा, उनसे, उधिना।

बघेली शब्दकोश के विद्वान लेखक बघेली के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर जिन्होने अपने नये-नये अन्वेषणात्मक कार्य से बघेली भाषा एवं बघेली साहित्य को उचाइयॉ प्रदान की है तथा बघेली को सजाया एवं सवारा है, ऐसे सुप्रतिष्ठित कवि डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' ने बघेली की दुर्लभ शब्दावलियों को व्याकरणिक एवं भाषा विज्ञान के साँचे में ढ़ालकर आँचलिक भाषा बघेली की जो सेवा की है, वह अनुकरणीय ही नही अपितु अभिनन्दनीय भी है।

परिशिष्ट

क-- बघेली की प्रकाशित कृतियाँ

क्र.	रचना	रचनाकार
1.	बघेली भाषा एवं साहित्य	डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल
2.	बाघेली लोकगीत	लखन प्रताप सिंह उरगेश
3.	पुराण साक्षी : लोक साक्षी	डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी
4.	बघेली भाषा एवं साहित्य बी.ए. थर्ड	म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
5.	सोन रेवा के स्वर	संपादक - प्रो. कमला प्रसाद
6.	सेंदुर केर बोझ	श्रीमती रश्मि शुक्ला
7.	बैजू की सुक्तिया	स्व. बैद्यनाथ पाण्डेय 'बैजू'
8.	दिया बरी भा अजोर	स्व. सैफुद्दीन सैफू
9.	नेउतहरी	-"-
10.	एक दिन ऐसौ होई	-"-
11.	माटी केर महक	स्व. रामदास पयासी
12.	संझवाती	भागवत प्रसाद पाठक
13.	भारत की माटी	बाबूलाल दाहिया
14.	बघेली शब्द-कोश	डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'
15.	रसखीर (बघेली कविताएँ)	-"-
16.	अमरउती (बघेली गीत गजल)	-"-

क्र.	रचना	रचनाकार
17.	अजुरी भर अजोर	–"–
18.	बघेली भाषा एवं व्याकरण	डॉ. सूर्यभान सिंह
19.	हिमालय केर कनिया	डॉ. अमोल बटरोही
20.	बघेली साहित्य एवं संस्कृति	गोमती प्रसाद विकल
21.	रणमत सिंह (खण्डकाव्य)	–"–
22.	पुनि के होइगा मुन्ना	श्रुतिवन्त प्रसाद बृजन
23.	गोदना	–"–
24.	सगुनउती	अंजनी सिंह सौरभ
25.	पगडण्डी	दुर्योधन प्रसाद गुप्ता
26.	हम तोहोर बिरबा	डॉ. कैलाश तिवारी
27.	भिनसार	राजकुमार शर्मा 'राज'
28.	भला बताबा का करी	सुधा कान्त मिश्रा बेलाला
29.	कुइनिनि केर फूल	राजीव लोचन शर्मा राजीव
30.	हम कहे जइत हें	रामप्रसाद तिवारी कवि जी
31.	नओ घर	देवीशरण सिंह ग्रामीण
32.	सुरूजि की टोह में	चित्रेश चित्रांशी
33.	छाहुर	योगेश त्रिपाठी
34.	बघेली हायकू	प्रो. आदित्य प्रताप सिंह
35.	छाहुर	योगेश त्रिपाठी

क्र.	रचना	रचनाकार
36.	पिंजरा केर सुगनवाँ	श्रीमती विनोद तिवारी
37.	बघेली लोकोक्तियाँ	रोहिणी प्रसाद मिश्र
38.	थोर का सुख	डॉ. चन्द्रिका प्रसाद चन्द्र
39.	बघेली लोक गीतो के राम (डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस)	म.प्र. आदिवासी लोककला परिषद में प्रकाशाधीन
40.	बघेली लोक कथाएँ (डॉ. श्रीनिवास शुक्ल सरस)	महराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशनाधीन
41.	बघेली की लोक कहानियॉ (अंजनी सिंह सौरभ)	म.प्र. आदिवासी लोककला परिषद मे प्रकाशाधीन

ख– रचनाकारों के पते

बघेली के पुराकवि

क्र.	नाम	पता
1.	स्व. हरिदास	ग्राम/पोस्ट गुढ, जिला रीवा म.प्र.
2.	स्व. बैजनाथ पाण्डेय बैजू	ग्राम-सतगढ़ जिला-रीवा म.प्र.
3.	स्व. सैफुद्दीन सैफू	गढिया टोला सतना म.प्र.
4.	स्व. रामदास पयासी	देवराज नगर, जिला-सतना म.प्र.
5.	स्व. शम्भू द्विवेदी काकू	ग्राम खैरी, जिला-रीवा म.प्र.

क्र.	नाम	पता
6.	स्व. डॉ. भगवती प्र. शुक्ल	द्वारिका नगर रीवा म.प्र.
7.	स्व.गोमती प्रसाद विकल	16/726 उर्रहट रीवा म.प्र.
8.	प्रो. आदित्य प्रताप सिंह	जनार्दन का.चिरहुला रीवा म.प्र.

बघेली के प्रतिनिधि कवि

1.	कालिका प्रसाद त्रिपाठी	संयुक्त कलेक्टर टीकमगढ म.प्र.
2.	डॉ. अमोल बटरोही	दुअरा, (रघुनाथगंज) रीवा म.प्र.
3.	रामलखन शर्मा निर्मल	ग्राम खैरा, पोस्ट हनुमान गढ जिला सीधी म.प्र.
4.	डॉ. कैलाश तिवारी	ग्राम खड्डा, पोस्ट लोही जिला रीवा म.प्र.
5.	भागवत प्रसाद पाक	श्री राम ऊर्जा केन्द्र गोपालदास डैम के पास सीधी म.प्र.
6.	डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस'	बिजय फीलिंग के पीछे उत्तरी करौदिया सीधी म.प्र.
7.	बाबूलाल दाहिया	ग्राम पोस्ट पिथौराबाद जिला सतना म.प्र.
8.	हरिनारायण सिह हरीश	करौदिया उत्तर सीधी म.प्र.
9.	अंजनी सिंह सौरभ	सीधी खुर्द, सीधी म.प्र.
10.	सुदामा शरद	भरहुत नगर कालोनी सतना म.प्र.
11.	मैथिली शरण शुक्ल मैथिली	तुलसी नगर फिल्टर प्लान्ट के पीछे नौढिया

क्र.	नाम	पता
		सीधी म.प्र.
12.	रामप्रसाद तिवारी कविजी	ग्राम मौहरिया पोस्ट गंगेंव जिला रीवा म.प्र.
13.	सुदामा प्रसाद मिश्र	ग्राम भाठी, पोस्ट सगरा, जिला रीवा म.प्र.
14.	बिजय सिंह परिहार	उप्पल मोटर गैरेज के पीछे समान रीवा म.प्र.
15.	सनत सिंह बघेल	ग्राम कुठिला, पोस्ट जबा, जिला रीवा म.प्र.
16.	डॉ. शिवशंकर मिश्र सरस	ग्राम मड़रिया, जिला सीधी म.प्र.
17.	प्रमोद बत्स	द्वारा दैनिक जागरण रीवा म.प्र.

बघेली के प्रतिभागी कवि

1.	रामरक्षा द्विवेदी शिशु	ग्राम मानपुर, जिला उमरिया म.प्र.
2.	रामभद्र तिवारी भद्र	सोहागपुर जिला शहडोल म.प्र.
3.	राजकुमार शर्मा राज	रामपुर भगैया जिला रीवा म.प्र.
4.	राजीव लोचन शर्मा राजीव	गांधी नगर मोहल्ला रीवा म.प्र.
5.	ऋतिवन्त प्रसाद बिजन	ग्राम पचौर, पोस्ट बंधा जिला सिंगरौली म.प्र.
6.	रामाधार शुक्ल बिद्रोही	ग्राम तितिरा शुक्ला जिला सीधी म.प्र.
7.	डॉ. रामसिया शर्मा	अग्रवाल नर्सिंग होम के पीछे उर्रहर रीवा म.प्र.
8.	चित्रेश चित्रांशी	18/348, आकृति टाकीज मार्ग रीवा म.प्र.
9.	सुधाकान्त बेलाला	ग्राम मटियारी, तहसील त्योथर जिला रीवा

क्र.	नाम	पता
		म.प्र.
10.	डॉ. राधेश्याम ब्यथित	49/10, गायत्री नगर रीवा म.प्र.
11.	डॉ. प्रणय	प्राध्यापक, हिन्दी सुदर्शन महाविद्यालय लालगांव रीवा म.प्र.
12.	रामसखा नामदेव	आर्शिवाद कालोनी शहडोल म.प्र.
13.	रामचन्द्र सोनी विरागी	पुराना हनुमान मंदिर के पास सीधी
14.	अनूप अशेष	अतुल मेडिकल स्टोर सतना म.प्र.
15.	डॉ. रामगरीब बिकल	तुलसी नगर फिल्टर प्लान्ट के पीछे नौढिया सीधी म.प्र.
16.	देवीशरण सिह ग्रामीण	ग्राम बाऊपुर पोस्ट नागौद जिला सतना म.प्र.
17.	सम्पत्ति कुमार सिंह	ग्राम डूड़ा, जिला रीवा म.प्र.
18.	सुरेन्द्र द्विवेदी	ग्राम पोस्ट मोहनिया जिला सीधी म.प्र.
19.	डॉ. देवेन्द्र द्विवेदी देव	बार्ड क्र.12 अर्जुन नगर सीधी म.प्र.
20.	रोहिणी प्रसाद मिश्र	ग्राम मौहार, बाया कोठी जिला सतना म.प्र.
21.	शिवाकान्त त्रिपाठी	ग्राम चिल्लाखुर्द, पोस्ट अतरैला खुर्द, जिला रीवा म.प्र.
22.	प्रहलाद दास त्रिपाठी	ग्राम पोस्ट बडागांव, जिला रीवा म.प्र.
23.	धर्मेन्द्र मिश्र धर्म	ग्राम अमाव, त्योथर जिला रीवा म.प्र.
24.	रामलखन सिंह महगना	ग्राम महगना, पोस्ट मनिकवार जिला रीवा